

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176892

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H915.2**

PG
Accession No. **H 861**

KH-H
Author **कल्लिङ्कर , दत्तत्रिय बालकृष्ण**
Title **हिमालय की यात्रा . 1948**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

हिमालयकी यात्रा

लेखक

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

अनुवादक

दादा धर्माधिकारी

। चराति चरतो भगः ।



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाजी देसाजी
स्वैजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली आवृत्ति, प्रति ५०००

दो रुपये

जून, १९४८

जीवनकी ताजगी

मनुष्य स्वभावसे स्थावर है या जंगम ?

थोड़ा विचार करनेसे ज्ञात होता है कि उसमें ये दोनों वृत्तियाँ वर्तमान हैं । यदि मनुष्यको जंगली दशासे उन्नति करते करते आजकी स्थिति प्राप्त हुई है, तो असलमें मनुष्य जंगम ही होना चाहिये । जहाँ अन्न और पानी मिले, वहाँ जानेकी प्राणिमात्रकी स्वाभाविक वृत्ति है । जब तक मनुष्य शिकारीका जीवन बिताता था, तब तक उसे भटकना ही पड़ता था । महाभारतमें भी यह वर्णन मिलता है कि एक जंगलमें शिकार खतम होते ही पाण्डवों-जैसे आरण्यकोंको दूसरा जंगल खोजना पड़ा था । शिकारी जीवन त्यागकर जब मनुष्यने गड़रिये और चरवाहे (गो-पाल) का जीवन पसन्द किया, तब भी एक जंगल या बीड़की घास खतम होते ही उसे दूसरी जगह जाना पड़ता था । श्रीकृष्णके ग्वाल पूर्वज ऐसा ही करते थे । आगे चलकर मनुष्यके मनमें विचार आया कि जहाँ अन्न हो वहाँ जाकर रहनेकी बनिस्वत जहाँ रहते हैं वहीं अन्न उत्पन्न किया जा सके, तो क्या ही अच्छा हो । मनुष्यने जंगलों और बीड़ोंमें मारे मारे फिरना छोड़कर खेती करना शुरू किया, और वह आर्य* बना । खेती शुरू हुई, और मनुष्यके जीवनमें बहुत ही बड़ा परिवर्तन हो गया । संस्कृति बढ़ी और स्थावरता आयी । स्थावरताके साथ मनुष्यकी कार्यशक्ति तो बढ़ी, लेकिन उसकी वीर्यशक्ति (vitality) कुछ कम हो गयी होगी । एक दिशामें कुछ न कुछ त्याग किये बिना मनुष्य दूसरी दिशामें तरक्की कर ही नहीं सकता ।

परन्तु मनुष्य तो लोभी ठहरा । उसे दोनों स्थितियोंका लाभ चाहिये था । उसने देखा कि अगर प्रकृतिने वनस्पति सृष्टिको स्थावर बनाया है, तो उनका शादियाँ लगानेके लिये तिलियों जैसे पुरोहित भी पैदा किये हैं । अमुक बड़ा वर्ग स्थावर रहकर वैभवकी वृद्धि करे और उसे जंगमताका लाभ पहुँचानेवाला दूसरा एक वर्ग भटकता रहे, यह व्यवस्था

* अर् = खेती करना

मनुष्यके लिये अनुकूल सिद्ध हुआ। मनुष्यने गृहस्थाश्रमके साथ साथ घुमक्कड़ोंके एक-दो आश्रम कायम किये। ब्रह्मचारीने जहाँ अध्ययन पूरा किया कि वह घूमने निकलता ही था। तीर्थयात्रा पूरी होनेपर ही उसे ब्याह करनेकी भिजाइत मिलती थी। दूसरी तरफसे जहाँ गृहस्थाश्रमकी प्रवृत्ति कुछ ढीली पड़ी, स्थावरताका जंग चढ़ा कि धर्मशास्त्र कहता है—
 “अब बहुत भोग लिया, चलो, फिर वनकी तरफ।” जहाँसे आये वहाँ लौटनेमें एक तरहका आनन्द, एक तरहका विश्राम होता है। सबेरे उठकर घूमने गये हुअे लड़के शाम होते ही माँकी सुखदायी गोद खोजेंगे ही। मनुष्य जिस जंगलको छोड़कर बस्तीमें आया, और गृहस्थ एवं नागरिक बना, उसके उसी जंगलमें लौटकर परिव्राजक बननेकी तैयारी करनेमें यही आनन्द भरा हुआ है। और उसमें प्रगति भी है। प्रगति हमेशा पेंचदार कीलके पेंचों जैसी होती है। एक चक्कर पूरा करके मूल स्थानपर आनेके साथ ही हम एक सीढ़ी ऊपर चढ़ते हैं।

पुरानी व्यवस्था यह थी कि गृहस्थाश्रमी लोगोंको भी कभी-कभी यात्रापर जाना ही चाहिये, ताकि मनुष्य देशदेशांतरकी स्थिति देख सके, समझ सके, नये नये सम्बन्ध कायम कर सके और स्थावरताकी वजहसे जीवनपर चढ़े हुअे जंगको निकाल सके।

यदि समाजशास्त्रका विकास करनेवाले धर्मकारोंने ऐसी व्यवस्था न की होती, तो भी मनुष्य स्वभाव किसी न किसी रीतिसे उसे शोध ही लेता। मनुष्यमात्रमें जो प्राकृतिक या अश्वरीय प्रेरणा विद्यमान है, धर्मकार उसीको शास्त्रीय रूप देनेका काम करते हैं। निरी प्राकृतिक वृत्ति नीचे भी गिरा सकती है या ऊपर भी उठा सकती है। जो प्राकृतिक वृत्ति मनुष्यको ऊपर उठाती है, उसीको अश्वरीय प्रेरणा कहते हैं। जो अश्वरकी ओर ले जाय, वही अश्वरीय। यही कारण है कि स्वतंत्ररूपसे विकसित धर्मोंमें भी सर्वत्र लगभग एक-सी ही व्यवस्था पायी जाती है। तीर्थयात्रा करनेकी योजना जापानके शिंटो या बुशीडो धर्ममें भी पायी जाती है, और हिन्दुओंकी आश्रमव्यवस्थामें भी। हजका सवाब बतलाने वाले अस्लाममें भी उसे स्थान है, और सनके कपड़े पहनकर यरूसेलेमकी

पवित्र भूमि तक यात्रा करनेवाले आसाआ भक्तजनोंको भी यह चीज़ प्रिय है ।

यात्राको ही प्रधान धर्म माननेवाले परिवाजक तो हमारे यहाँ थे ही, परन्तु उसके सिवा हरएक वर्णके लिये भी यात्राका थोड़ा-बहुत धर्म बतलाया गया था । ब्राह्मण पहले ब्रह्मचारीके नाते विद्यायात्रा करता था, बादमें यज्ञसत्रोंमें जाता था, चौमासा छोड़कर बीच बीचमें तीर्थयात्रायें तो होती ही थीं । और अँग बुढ़ापेमें भी मरनेके लिये एक जगह बैठे रहनेके बदले, जहाँतक पैर ले जायें, वहाँतक आशान्य दिशामें चलते जानेका विधान है !

यदि क्षत्रिय आखेटके लिये हर साल न निकलें, तो खेतीकी रक्षा कैसे हो ? और खेतिहर राजको पैदावारका छठा हिस्सा कैसे दें ? यदि राजामें शक्ति हो, तो वह थोड़ा छोड़कर अश्वमेधके लिये भी प्रस्तुत होता ही था । जो राजा दिग्विजय न करे, वह कमजोर समझा जाता था ।

वैश्य यानी सौदागर । जब वे अपने काफ़िले लेकर जंगल पार करते, एक राज्यमेंसे दूसरे राज्यमें प्रवेश करते, यहाँका माल वहाँ पहुँचाते और वहाँका यहाँ ले आते, तभी सार्थवाहका उनका जीवन सार्थक माना जाता था । अपनी नयी दुलहिनको भी घर पर छोड़कर सुदूर समुद्रकी यात्रा करनेवाले वाणिज्य-वीरोंकी ढेरों कथायें हमारे साहित्यमें विद्यमान हैं ।

बौद्ध साधु अर्थात् प्रबल प्रचारक । उन्होंने समुद्रयात्राके निषेधकी परवाह न करके सुदूर देशोंतक संस्कृतिका विस्तार किया, और देश देशान्तरके लोगोंको भी वे इस देशमें ले आये । जिस तरह जंगलमें गेंडा निडर होकर अकेला घूमता है, उसी तरह श्रवणको सर्वत्र विहार करना चाहिये । बुद्ध भगवान्की यह सिखावन थी । और स्वयं उन्होंने तो इस तरह विहार कर करके एक समूचे प्रान्तको ही अपनी इस प्रवृत्तिका नाम दे दिया । बौद्ध धर्मको स्वीकार करनेके बाद सम्राट् अशोकने दिग्विजय छोड़ धर्मविजयको अपनाया और प्रतिवर्ष नयी नयी दिशामें धर्मयात्रायें शुरू कीं ।

बुद्धश्रवा अन्दरने वैदिक संस्कृतिके प्रारम्भमें ही आदेश दिया था कि जो बैठा रहता है, उसका नसीब भी बैठा रहता है । जो चलता है, उसका भाग्य

चलता है। 'चराति चरतो भगः' यह प्रेरणा लेकर गड़रिये चले, खलासी चले, भक्त चले, सैनिक चले और परित्राजक भी चले। इस संसारमें जो कुछ जीवित है वह सभी चलता है, और जब मनुष्य चलते-चलते अूब जाता है, तब स्थावर बनकर रहनेके बदले इस संसारको ही छोड़कर चल देता है।

यदि मनुष्यको यात्राकी दीक्षा किसीसे मिली है, तो वह आकाशके तारोंसे नहीं, बल्कि जीवनके अखंड प्रवाहका वहन करनेवाली नदियोंसे। उसमें भी दो प्रकारकी वृत्तियाँ पायी जाती हैं। जिस प्रकार प्राचीन कालमें कुछ लोग सूरजके अुदय स्थानका पता लगानेके लिये अुत्तरोत्तर पूर्वकी तरफ चलते जाते थे, और दूसरे कुछ लोग उसके विश्राम-स्थानकी खोजमें पश्चिमकी तरफ जाते थे, उसी तरह कुछ लोग स्वयं यह देखनेके लिये कि अिन नदियोंका यह अितना अुमड़ता हुआ पानी कहाँसे आता है, अुनके अुद्गमकी तरफ बढ़ते जाते थे, तो दूसरे कुछ इस सारे पानीका विसर्जन कहाँ होता है, किसमें होता है, हमें वहाँ क्या दीखेगा, इसका अनुभव करनेके लिये नाविक बनकर समुद्रकी तरफ जाते थे। गंगोत्रीकी तरफ जानेवाले गड़रिये और गंगासागरकी तरफ दौड़नेवाले मछ्राह दोनों भायी भायी ही हैं। नदी मुखसे ही समुद्रमें प्रवेश करनेकी सिफारिश करनेवाले कविके वंशजोंने कितनी समुद्रयात्रा की है, इसकी जाँच करने पर केवल निराशा ही पल्ले पड़ेगी। आज यह बतलाना कठिन है कि वेदकालके तुष और भुज्यु जो जलयात्रा करते थे, वह नदीकी थी या समुद्रकी। जातक कथामें जिन वणिकोंका वर्णन आता है, वे अेक तरफ जावा, बाली, और इयाम-चीन तक जाते होंगे, और दूसरी तरफ अफ्रीकाका सारा पूर्व किनारा छानते होंगे। लेकिन अुनमेंसे अेकने भी प्लीनीकी तरह पूर्व या पश्चिम सागरका 'पेरीप्लस' नहीं लिखा है। जावा पहुँचनेके बाद जिन्होंने लौटनेकी आशा ही छोड़ दी, अुनके वंशज समुद्रयात्राका निषेध करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? और यह निषेध किस लिये? तो कहते हैं कि वहाँ खाने-पीनेमें पवित्रता-अपवित्रताका ध्यान नहीं रहता। आचार धर्मका ठीक-ठीक पालन नहीं हो सकता। इस संकटसे बचनेका यह अेक अुनूठा अुपाय खोजा गया। अेक आदमीको धूपमें जानेसे पित्त-

प्रकोप होता था । उसने वैद्यसे अिलाज पूछा । सयाने वैद्यने सनातनी बुद्धिमानीसे कहा — “ भले मानस, धूपमें जाना ही गलत है । छायामें ही बैठे रहो न, फिर देखें पित्तप्रकोप कैसे होता है ? ” असि डरसे कि कहीं किसीकी बुरी निगाह मेरी स्त्रीपर न पड़ जाय, बुरे आदमीको सुधारनेके बदले अपनी स्त्रीको ही सिरसे पैर तक परदेमें ‘दैक’ कर देनेकी बात जिन लोगोंको सूझी और जिन्होंने स्त्रियोंको अन्तःपुरमें ही दूर देना पसन्द किया, यदि उन लोगोंने समुद्रयात्राका निषेध करके अपनेको अपने ही देशमें दूर रखनेका फैसला किया, तो वह यथायोग्य ही हुआ । अरे, असि डरपोक व्यवस्थाकारोंने वैराग्यधन संन्यासियोंको भी यह आदेश दिया कि जहाँ खानेको अच्छा न मिलता हो, लोग श्रद्धा-भक्तिसे खिलते न हों, घमसान मारपीट हर घड़ी चलती रहती हो, उस देशमें जाना ही न चाहिये । उन्होंने यह भी लिख रखा है कि जिस मनुष्यको यात्राका शौक हो, उसके साथ अपनी बेटीका ब्याह नहीं करना चाहिये ! उनके निकट सुरक्षितता ही प्रथम धर्म है !

अतना करनेपर भी, और जीवनका अच्छे-से-अच्छा सख सुखा डालनेपर भी जिसकी रक्षा हम करना चाहते थे, क्या उसकी रक्षा कर सके ? जिनके संसर्गसे बचनेके लिये हमने समुद्रयात्रा छोड़ी, वे सब मधु-मक्खियोंके छत्तेकी तरह हमपर टूट पड़े और उन्होंने हमारे राज, हमारे व्यापार, हमारी शिक्षा और हमारे भाग्य — सभीपर कब्जा कर लिया और यहाँ अपना डेरा जमा लिया । ‘जो बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठा ही रहेगा ।’

२

सच तो यह है कि जब जीवनका अस्थान ढीला पड़ जाता है, तो मनुष्यके हृदयमें अज्ञातका डर घुस जाता है । यदि जीवनमें यौवनपूर्ण प्राण हो, तो उसी अज्ञातका आमंत्रण टाले नहीं टलता । अज्ञातका पीछा करना, उसका अनुभव करना, उसपर विजय पाकर उसे शांत बनाना ही जीवनका बड़े-से-बड़ा आनन्द और अच्छे-से-अच्छा पौष्टिक अन्न है । वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा अज्ञातपर अक प्रकारकी विजय प्राप्त की जा सकती है, और यात्रा द्वारा दूसरे प्रकारकी ।

जब मनुष्य घोड़ेपर चढ़ता है, तो उसका हृदय इस तरह फूलता है, मानो घोड़ेकी शक्तिका भी उसमें संचार हो गया हो। और शक्तिके इस साक्षात्कारके कारण मनुष्यका व्यक्तित्व भी उस हृद तक परिपुष्ट होता है। अस्सी मीलकी रफ्तारसे दौड़नेवाली मोटरका अकुशचक्र हाथमें आनेपर मनुष्यको लगता है कि यह सारा वेग मेरा ही है। किसी संस्था या राज्यके संचालनका फल — उसका व्यक्तिगत आनन्द — इसीमें है कि उसके कारण अमुक लोगोंके साथ मेरा तादात्म्य हो जाता है, अमुक शक्तिका मैं अमुक मात्रामें उपयोग कर सकता हूँ, और अमुक व्यक्तियोंको अिकट्टा करके अेक विराट् शक्ति पैदा कर सकता हूँ। व्यक्तित्वका विकास, शक्तिका संचय और भावीका नियंत्रण ही मनुष्यके लिये बड़े-से-बड़े आनन्दका विषय है। यात्रामें मनुष्य जितने भूमिभागको आँखों द्वारा अपना कर लेता है, जितना अन्तर पादाक्रान्त करता है, जितना अनुभव जुटा सकता है, उतने दरजे तक उसका जीवन समृद्ध होता है। कोठार-भण्डारमें भरा हुआ धन बाहरी होनेसे भाररूप होता है। अनुभवके द्वारा संचित ज्ञान, अर्जित संस्कार और विकसित शक्ति भीतरी होनेसे उनका भार नहीं लगता, अल्टे उनके आ मिलनेसे जीवनमें दूसरा बहुत-सा बोझ अुठानेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। जो मनुष्य यात्राके लिये निकलता है, उसे बहुत-सी वस्तुओंके परिग्रहका त्याग करना ही होता है। जो हलका नहीं हो सकता, वह यात्रा कर ही नहीं सकता, चाहे वह बादल हो या आदमी। और यात्रा द्वारा प्राप्त ज्ञान, संस्कार या कौशल अितना आत्मसात् हो जाता है कि उसका परिग्रह या भार मालूम ही नहीं होता।

यात्रा द्वारा प्राप्त किये ज्ञानमें और आजकी शिक्षा-संस्थाओंमें प्रचलित प्रणाली द्वारा प्राप्त किये ज्ञानमें बड़े-से-बड़ा फर्क यही है। आज-कलकी शिक्षा प्रणाली द्वारा प्राप्त किया ज्ञान भाररूप होता है, क्योंकि वह व्यवहारमें लाया हुआ या हजम किया हुआ नहीं होता। इसलिये छोटे बालकोंको पाठशालाकी शिक्षा देनेके बदले यदि यात्राकी शिक्षा दी जाय, तो आखिरकार वह कम खर्चीली और अधिक फलदायी होगी।

यात्री ज्यों ज्यों यात्रा करता जाता है, त्यों त्यों वह अपने चातुर्यका विकास करता है, धीरज और अदरताका विकास करता है और अन्तमें अच्छे-से-अच्छा समाजशास्त्री बनता है। यात्रा अर्थात् कष्ट सहनेका बादशाही तरीका। यात्राकी असुविधाओंसे मनुष्यको यह नहीं लगता कि वे उसके दारिद्र्यकी प्रतीक हैं, बल्कि वह सोचता है कि अपनी सूक्ष्म-बुद्धिको बढ़ानेका एक अच्छा मौका उसे मिला है। एक दृष्टिसे यात्रा व्यक्तित्वके विकासका साधन है, जब कि दूसरी दृष्टिसे देखा जाय तो वह अनुभवसे ओतप्रोत देशभक्तिका ही एक प्रकार है। हम अपने देशको जितना देख चुकते हैं, उसके जितने भागका निरीक्षण कर चुकते हैं, और जितनेको अपना लेते हैं, उतने देशके प्रति हमारी एक विशेष धारणा बनती है, उससे आत्मोत्थताका सम्बन्ध जुड़ जाता है, उसके लिये अभिमान अथवा भक्ति पैदा होती है, और हम उसके भक्त बन जाते हैं। किसी भी प्रान्तकी यात्रा कर चुकनेके बाद अखबारोंमें उस प्रान्तके समाचार पढ़ते समय हमारे दिलमें उसके लिये कितनी दिलचस्पी होती है ?

लेकिन ऐसी यात्राके मूलमें दुनियाको लूटनेकी वृत्ति नहीं होनी चाहिये। जहाँ दुनियाका सत्त्व चूस लेनेकी, उससे अधिकसे अधिक फायदा उठानेकी वृत्ति रहती है, वहाँ ऊपर कहे गये अर्च्च लाभोंमेंसे बहुत ही थोड़े लाभ हाथ आने हैं। स्वार्थी प्रवृत्तिसे प्राप्त होनेवाले लाभोंकी बहुत बड़ी मर्यादा होती है। जब कोअी भक्त या सेवक यात्राके लिये निकलता है, तो अन्तर्बाह्य सारी शक्तियाँ अपना संघ लेकर उसके साथ हो लेती हैं। दुनियाको चूसनेवाला मनुष्य आखिर अिन्द्रियपरायण ही होगा। और चूँकि अिन्द्रियानुभव एक हद तक ही आवश्यक होते हैं, असलिये जैसे-जैसे उनकी मात्रा बढ़ती है, वैसे-वैसे वे अधिकाधिक स्वादहीन होते जाते हैं और अन्तमें उनका लिल्लापन प्रकट हो जाता है। अिन्द्रियानुभवसे मिलनेवाला आनन्द परिमित होता है। मानवजाति उसका अन्त देख चुकी है।

किन्तु मनुष्यने आज भी अिन्द्रियानुभवसे होनेवाले विकासका अन्त नहीं देखा है। उसकी विविधता अभी नष्ट नहीं हुई है। मनुष्य जितना अधिक निःस्पृह, निराग्रही और निस्स्वार्थ होता है, यात्रा द्वारा वह

अतनी ही अधिक संस्कारिता प्राप्त कर सकता है। जब भक्त या सेवक यात्राको निकलता है, तो उसमें आत्मानुभव, आत्मविकास और आत्मैक्य तीनोंकी मात्रा बढ़ती जाती है। प्रतिदिन विकसित होनेवाले विश्वको देखकर भोगैश्वर्यके पीछे पड़े हुए मनुष्यके जीमें आता है कि “यह विश्व मेरा हो, मेरे अधीन हो !” उसके विपरीत भक्तसेवक चाहता है कि मैं ही इसका सेवक बनूँ, इसका अंश बनूँ, और अपनेमें अभेदका विकास करके यही बन जाऊँ। जीवनका यही यथार्थ और परम उत्कर्ष है।

३

कोआ मुझसे पूछे कि यात्रा करनेसे क्या-क्या लाभ है, तो मैं उसका जवाब आसानीसे दे सकूँगा। लेकिन लोग मुझसे पूछते हैं कि तुम किस अद्देश्यसे यात्रा करने निकले थे ? यह प्रश्न ही विलकुल दूसरा है। और इसका जवाब देना सहज नहीं है। खाना, सोना, शादी करना, सन्तान उत्पन्न करना, आदि विश्वजनीन क्रियायें मनुष्य किस अद्देश्यसे करता है, सो बतलाना सहल नहीं है। प्रायः मनुष्य यही कहेगा कि मुझसे रहा नहीं जाता, इसीलिअे मैं अनि सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमें भाग लेता हूँ। अनसे जितने लाभ प्राप्त होते हैं, वे सब हमारे अिच्छित लाभ तो हैं, परन्तु किस लाभके लोभसे प्रेरित होकर हम प्रवृत्त हुअे हैं, सो हम ठीकसे नहीं कह सकेंगे। भीतरकी अेक अदभ्य प्रेरणा बेचैन कर डालती है, इसलिअे चुपचाप उसके अधीन होना ही पड़ता है। प्रवृत्तिकी अपनी यह रचना है, योजना है कि जो चीज़ जीवनके लिअे नितान्त उपयोगी है, उसके लाभालाभका अधिक विचार करके उसे पसन्द करना मनुष्यके लिअे ज़रूरी होता ही नहीं। ‘नहाना या न नहाना’ मनुष्यकी अपनी अिच्छाका विषय हो सकता है, लेकिन ‘सोने या न सोने’ के विषयमें प्रकृति मनुष्यकी अिच्छाके लिअे कोआ गुँजाअिश नहीं रखती। नींदका आमंत्रण होते ही मनुष्य विवश भावसे उसके अधीन हो जाता है।

जिस मनुष्यकी वृत्तियाँ विकृत नहीं होतीं, उसके लिअे यात्राकी प्रेरणा भी अतनी ही स्वाभाविक होती है। जिस प्रकार बारिशके शुरू

होते ही साँड़ अपने सींगोंसे ज़मीन खोदकर उस सूघन लगता ह, उसी तरह यात्राका अवसर प्राप्त होते ही अपनेआप मनुष्यके पैर बिना पृष्ठे चलने लगते हैं । यदि कोअी उससे पृष्ठे कि 'कहाँ चले' तो वह कहेगा — "मुझे कोअी पता नहीं । जहाँ जा सकूँगा, चला जाऊँगा । जाना, चलना, स्थानान्तर करना, अेक जगह बैठे न रहना, नये नये अनुभव करना — बस यही मैं जानता हूँ । आँखें प्यासी हैं, सारा शरीर क्षुधित है, असलिअे पैर चलते हैं । अससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता । "

शायद पहाड़के रहनेवालोंमें चलनेकी आदत अधिक होती है, परन्तु मैदानके निवासी भी कुछ कम घुमक्कड़ नहीं होते । काशीके गंगाजलको रामेश्वर ले जाकर, रामेश्वरके सेतुकी बालू काशी या हरिद्वार तक पहुँचानेवाले सभी मनुष्य पहाड़ी नहीं होते ।

मेरे छुटपनके बहुतेसे संस्मरण यात्रासे सम्बन्ध रखते हैं । शाहपुरसे हम वेलगुंदी जाते और वहाँ विही, अमरूद, आम या करौदे खाया करते थे । सतारासे जरंडाके पार भी जाकर वहाँ रामदास स्वामीका मठ या हनुमानजीका मन्दिर देखते थे । वेलगाँवसे तिनअीघाट अुतरकर गोआकी अप्रतिम वनश्रीका अवलोकन करते, या फिर आँवोलीघाट पार करके सावंतवाड़ीके मोती तालाबके किनारे होनेवाले लकड़ीके रंगीन कामका निरीक्षण करते थे । जहाज़में बैठकर कारवार जाते, वहाँके समुद्र तटपर बालूके महल बनाते, पूना जाकर संगम, पर्वती या चतुःश्रृंगीके दर्शन करते, मिर्ज, जत, रामदुर्ग, मुधोळ, साँगली और सावनूर जैसे देशी राज्योके मेहमान बनकर मध्ययुगीन भारतवर्षकी झाँकी देखते और कृष्णाके तीरपर नाचते और कूदते हुआ हाथीसे बैल गाय देखकर आनंदित होते थे । यही मेरे छुटपनके संस्कार हैं । गाड़ीमें घास और गदेला बिछा हो, अुसे खींचनेवाले बैलोंके गलेमें बँधी घण्टियोंकी आवाज़ रातकी शान्तिको भेदती हो, कहींसे चोर न आ जायें, अस डरसे जागते रहनेका कर्त्तव्य स्वीकारनेपर भी आँखें बीच-बीचमें झपकती हों, और हड़बड़ाकर फिर खुलते ही, 'देखो, हम सारी रात किस तरह जागते रहते हैं', यों कहनेवाले तारे माथेपर चमकते हों — यह सारा दृश्य मेरे बचपनके जीवनके साथ गुँथा

हुआ है । यात्राके लिये मुझे किसी अद्देश्य या प्रयोजनकी आवश्यकता ही नहीं होती । गांधीजीके साथ विलायत जानेका सुयोग होते हुअे भी मैं क्यों न गया ? हिमालयकी यात्रा करनेपर भी मैं उस पार कैलाश क्यों नहीं गया ? अफ़ग़ानिस्तानके रास्ते रूस जानेका संकल्प अैन वक़्त पर क्यों तोड़ दिया ? या जावा, बाली, श्याम और सुमात्रा मैं कब जाऊँगा ? मॉरिशियससे आये हुअे निमंत्रण मैं कब स्वीकार करूँगा ? यदि कोअी अैसे सवाल मुझसे पूछे, तो वह स्वाभाविक है । न जानेका कुछ कारण हो सकता है, पर जानेके लिये कारणका क्या जरूरत ? कभी नदीसे किसीने पूछा है कि तू क्यों बहती है ? जब उसका बहना रुक जाता है, तभी सबको अचरज होता है ।

हिमालयकी यात्राके लिये मैं किस प्रकार गया और उससे क्या-क्या पाया, अिसका कुछ कुछ वर्णन तो अिस यात्रा-वृत्तान्तमें शुरूसे आखिर तक जगह जगह आया ही है । हिमालय जानेकी वृत्ति हिन्दू मात्रमें स्वाभाविक रूपसे होती है । सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्रा और अुनकी सग्वियाँ सभी हिमालयकी पुत्रियाँ हैं । अिसलिये हरअेक नदी-भक्तको कभी न कभी अपने ननिहालमें मौज करने जाना ही है । हिमालयका वैभव संसारके सभी सम्राटोंके समस्त वैभवसे भी बढ़कर है । हिमालय ही हमारा महादेव है । अग्निल विश्वकी समृद्धिको समृद्ध करता हुआ भी वह अलित, विरक्त, शान्त और ध्यानस्थ है । हिमालयमें जाकर, अुसीको हृदयमें धारणकर लेनेकी शक्ति जिसमें है, अुसीने जीवनपर विजय पाअी है । अैसे विजयीको अनन्त प्रणाम ।

पूना, २७-५-१३८

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

अतिहास

असलमें यह लेखमाला छपानेके अिरादेसे लिखी ही न गयी थी । आश्रमके साथियों और विद्यार्थियोंके सन्तोषके लिअे आश्रमके अेक हस्त-लिखित मासिकपत्रमें अिसे शुरू किया था । अिसमें जिस यात्राका वर्णन है, अुसमें हम तीन जन थे : स्वामी आनन्द, मैं और हम दोनोंके आत्मीय मित्र अनन्तबुवा मरडेकर । हमारी अिस त्रिपुटिने हिमालयकी यात्रामें जे आनन्द और अनुभव प्राप्त किया, अुसके वर्णनका पार नहीं आ सकता ।

*

*

*

दिल्ली दरबारके बाद जे दमनचक्र शुरू हुआ, अुसके कारण राष्ट्रीय शिक्षाकी प्रिय प्रवृत्ति असम्भव हो गयी । अिसलिअे मुझे यात्रा करनेकी सूझी । १९१२ के शुरूमें मैंने घर छोड़ा । मुझे अैसा स्मरण है कि जिस दिन मैंने बड़ौदा छोड़कर प्रयाग यानी अिलाहाबादका रास्ता लिया, वह दिन अखातीजका दिन था । प्रयाग, काशी और गया, अिन तीन तीर्थोंकी यात्राको त्रिस्थलीकी यात्रा कहते हैं । वह पूरी करके मुझे पितृ-ऋणसे मुक्त होना था । अुसके बाद मुझे बेलुड़मठ देखने और ‘श्रो रामकृष्ण कथामृत’ लिखनेवाले श्री महेन्द्रनाथ गुप्तके दर्शन करनेका अपना संकल्प पूरा करना था । सीभाग्यसे हम बेलुड़मठमें वैशाख पूर्णिमाको पहुँचे । अिसलिअे मठाधिपति स्वामी प्रेमानन्द और दूसरे मठवासियोंके साथ वहाँ बुद्ध भगवान्की पूजा कर सके । अुसी दिन खरडह नामके गाँवमें हम चैतन्य संकीर्तन सुनने गये थे । भगिनी निवेदिताने अपने अेक लेखमें अिस स्थानका माहात्म्य बतलाया है । मेरे मित्र बाबा मरडेकर वंश परंपरासे रामदासी सम्प्रदायके थे । अुनका अयोध्याजीके दर्शन करनेका संकल्प था । अुसे पूराकर हम स्वामी आनन्दसे मिलने अलमोड़ा गये । वैशाखका महीना हमने वहीं बिताया । वहाँसे स्वामी आनन्दको लेकर हम लौटे, और हरिद्वारसे बाक्रायदा यात्रा शुरू कर दी । वे गंगा-दशहरेके दिन थे । ज्यों ज्यों हम अपनी यात्रामें आगे बढ़ते गये, त्यों त्यों यात्राका संकल्प भी बढ़ने लगा । और अन्तमें हम अुत्तराखण्डके चारों घामोंकी, जमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और

बद्रीनाथकी यात्रा पूरी करके वापस अलमोड़ा पहुँचे । इसी यात्राका वर्णन यहाँ दिया गया है ।

संसारमें प्रायः ऐसा माना जाता है कि पैदल यात्रा करना मुश्किल है । मैं समझता हूँ कि यात्रा करनेकी अपेक्षा उसका वर्णन लिखनेके लिये समय निकालना ज्यादा मुश्किल है । यहाँ हिमालयकी जिस यात्राका वृत्तान्त दिया गया है, वह चालीस दिनमें समाप्त हुई थी । सन् १९१९में, अर्थात् यात्राके सात वर्ष बाद उसका वर्णन लिखना शुरू किया । पुराने संस्मरण सभी समान रूपसे ताज़े नहीं रह सकते, और जो संस्मरण ताज़े न हों, उनका वर्णन करनेमें कभी मज़ा नहीं आता ।

कभी तरहकी परिस्थितियोंके कारण थोड़ी-थोड़ी करके मेरी यह लेखमाला पन्द्रह साल तक लिखी जाती रही । फिर इसमें अेकरूपता कहाँसे आ पाती ? अगर पाठक उसे ध्यानसे देखेंगे, तो उन्हें इसमें जीवनरसकी बदलती हुई वृत्तियाँ दिवायी देंगी । अन्तिम पाँच-सात अध्याय जल्दी जल्दीमें लिखे गये थे, इसलिये उनमें वर्णनोंका विस्तार कम दिखायी देगा । एक तो ये संस्मरण बहुत कुछ पुछ गये थे, और दूसरे, यात्राका अन्तिम भाग भी कुछ थकावटमें ही पूरा हुआ था । अतः उस थकावटका असर भी अिन अन्तिम अध्यायोंपर पड़ा है । पाठकोंन जो अपेक्षा रखी थी, और जिस अपेक्षाके लिये मैं जवाबदेह हूँ, वह अगर यहाँ पूरी न हुई हो तो, आशा है वे आदर हृदयसे मुझे क्षमा करेंगे ।

अिन पन्द्रह वर्षोंमें गुजरातके नवयुवकोंने कभी यात्रायें की हैं । मैं आशा करता हूँ कि गुजरात और सारे भारतके युवक यात्राका महत्त्व उत्तरोत्तर अधिक समझेंगे; चारों दिशाओंमें घूमकर देश तथा देशबन्धुओंका अवलोकन करेंगे; और भारत-भक्तिसे लबालब अनेक यात्रा-वर्णन लिखकर स्वभाषाको सुशोभित करेंगे । मातृभूमिका और उसके असंख्य बालकोंका अनेक प्रकारसे दर्शन कर उनका वर्णन करना भी एक प्रकारकी पूजा ही है । इस पूजाके प्रथम पुष्पके नाते इस लेखमालाका स्मरण थोड़े दिन तक भी रहा, तो यह सार्थक मानी जायगी ।

इत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

विनय

हिमालयका यह प्रवास सन् १९१२ के अरसेमें किया था । पँच-छह बरसके बाद उस प्रवासका वर्णन साबरमतीके सत्याग्रह आश्रममें बैठकर लिखना शुरू किया; और खण्डशः उसे सन् १९३० के करीब पूरा किया । जब कभी समय मिला और किसी स्नेहीने प्रेरणा दी, अक-दो प्रकरण लिख दिये । इस ढंगसे यह किताब लिखी गयी है । गुजरातके जनसमुदायमें मैं अतना घुलमिल गया था और गांधीजीके नवजीवनके द्वारा लोगोंके अितने संपर्कमें आया था कि लोगोंने इस प्रवासवर्णनको बड़े चावसे पढ़ा । गुजरातीमें इस किताबकी छह आवृत्तियाँ हो चुकी हैं । बादमें इसका मराठी अनुवाद हुआ । महाराष्ट्री होनेके कारण वहाँके लोगोंने भी एक परिचित व्यक्तिके प्रवासवर्णनके तौरपर इसका स्वागत किया ।

अब यही प्रवासवर्णन हिन्दीमें प्रकाशित होने जा रहा है । मुझे पता नहीं हिन्दीभाषी जनता इसका कैसा स्वागत करेगी । हिन्दी जनता मुझे राष्ट्रभाषा प्रचारककी हैसियतसे ही पहचानती है । जबसे महात्माजीने नागरी और अर्द्ध दोनों लिपिके स्वीकारपर जोर दिया और मैंने उसका प्रचार शुरू किया, तबसे हिन्दीभाषी जनता कुछ अप्रसन्न-सी हुयी है । मेरे सनातनी संस्कारोंसे वह परिचित नहीं है । परिचित होती तो शायद चन्द लोग मेरे अर्द्ध लिपिके स्वीकारपर अधिक नाराज हो जाते !

जब मेरे मित्र दादा धर्माधिकारीजीने बड़े प्रेमसे हिमालयके प्रवासका हिन्दी अनुवाद करना स्वीकार किया, तब हिन्दुस्तानी प्रचारका प्रारम्भ हुआ था । मैंने उनसे कहा कि इस पुस्तकका सारा वायुमण्डल केवल हिन्दू समाजके सामाजिक-धार्मिक जीवनसे सम्बन्ध रखता है । इसके पाठकगण भी अपनी ढंगके होंगे । इसलिये इसे हिन्दुस्तानी शैलीमें अतारनेका प्रयत्न न करें । जैसी मेरी शैली गुजरातीमें है वैसी ही हिन्दीमें प्रतिबिम्बित हो जाय, यही इस किताबके लिये अिष्ट है ।

दादा धर्माधिकारीजी हिन्दीके सिद्धहस्त लेखक तो हैं ही, शब्दरसिक भी पूरे पूरे हैं । असलिअे खुनके अनुवादपर मेरा पूरा भरोसा है । श्री काशिनाथजी त्रिवेदीने भी यत्रतत्र अपनी कलम असिमें चलाई है ।

धार्मिक जीवनके आदर्शके बारेमें मेरे ही नहीं, देशके बहुतसे चिन्तकोंके विचार वेगसे बदल रहे हैं । यहाँ जिस विचारप्रणालीका पुरस्कार किया है, वह सनातनी धार्मिक दृष्टिके प्रति सहानुभूति और आदर रखते हुअे भी मौलिक सुधार चाहती है । तो भी स्वधर्मनिष्ठाका विकास करके सर्वधर्मनिष्ठा तक वह असिमें नहीं गयी है । लेकिन पाठकोंके लिअे यह बात सोचना आवश्यक नहीं है । हिमालय स्वयं पार्वती-जैसी भारत-भूमिका पिता है । वह 'नत नयने अनिमेषे' अपनी पुत्रीका कल्याण चिन्तन करता रहता है । खुसका दर्शन करना हरअेक भारतवासीका कर्त्तव्य है । खुस दर्शनके प्रति आकर्षित करनेवाला यह शब्ददर्शन पाठकोंको प्रिय हो !

कराडी

अक्षय तृतीया, ११-६-१४८

काका कालेलकर

प्रिय सुहृद
ब्रह्मचारी अनन्तबुवा मरढेकरकी
पवित्र स्मृतिमें

अनुक्रमणिका

प्रास्ताविक :

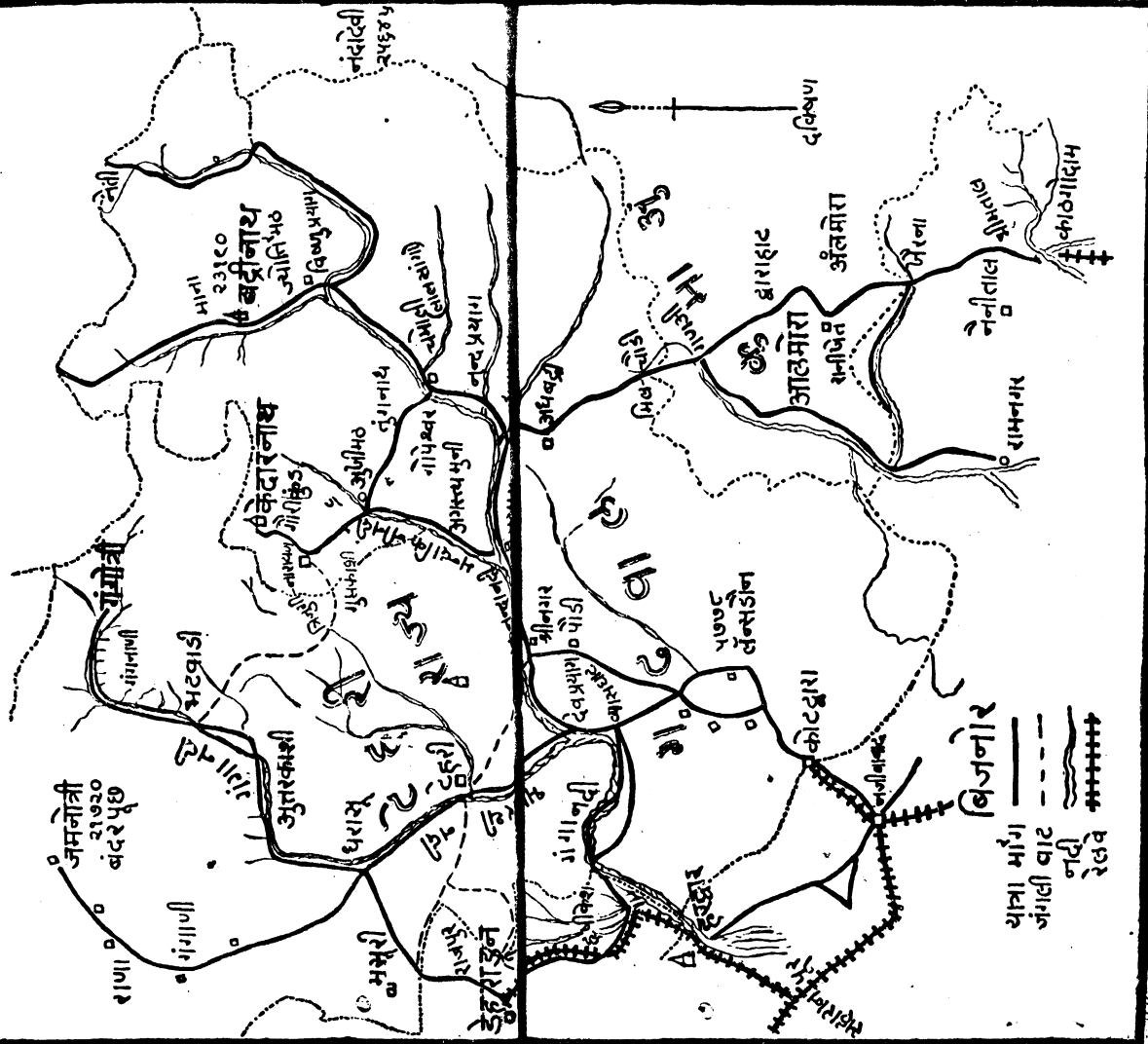
जीवनकी ताज़गी	३
अितिहास	१३
विनय	१५

यात्रा :

१. संकल्प	३
२. प्रयागराज	४
३. अमरपुरी वाराणसी	९
४. गयाका श्राद्ध	१६
४अ गयाकी ख्याति	२०
५. बोधिगया	२६
६. बेलुड़मठ	२९
७. भक्तिके धाममें	३७
८. रामकी राजधानी	४१
९. अलमोड़ाकी ओर	४६
१०. नगाधिराज	५२
११. भीमताल	५६
१२. हिमालयकी पहली सिखावन	६०
१३. अलमोड़ा	६८
१४. खाकीबाबा	७४
१५. पदमवोरी	८३
१६. गोइत्या	८९
१७. धर्मशालामें ऋषिकुल	९३
१८. रामकृष्ण-सेवाश्रम	९८
१९. तैयारी	१०२

२०. गंगाद्वार	१०४
२१. प्रस्थान	१०९
२२. हृषीकेशके रास्ते पर	१११
२३. साधुओंका पीहर	११४
२४. नये-नये अनुभव	१२२
२५. देवप्रयाग	१२९
२६. श्रीनगर नहीं गया	१३४
२७. श्रद्धा-भक्तिका स्पर्श	१३६
२८. टेहरी	१३९
२९. बादरूका गाँव	१४४
३०. राढ़ीकी सीमापर	१४९
३१. यामुन ऋषि	१५३
३२. राणागाँव	१५७
३३. जमनोत्री	१६१
३४. अूपरीकोटकी चढ़ाई	१६३
३५. उत्तर काशी	१७०
३६. गंगोत्री	१७६
३७. बुड्ढा केदार	१८०
३८. भोटचट्टी	१८६
३९. पवाली और त्रिजुगीनारायण	१८९
४०. केदारनाथ	१९२
४१. अखीमठ और तुंगनाथ	१९६
४२. बदरी धाम	२००
४३. वापसीमें	२०७
४४. 'द्वाराहाट'	२१०
४५. फलश्रुति	२१३

ॐ
स
र
जं
५
ॐ
स
र
जं
५
ॐ



हिमालयकी यात्रा

?

संकल्प

गच्छति पुरः शरीरं

धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।

हिमालय जानेकी मेरी बड़ी अच्छा थी; मैं हमेशा हिमालय जानेकी बात तो सोचा करता था; लेकिन कैसे जा सकूँगा, इसकी कोअी कल्पना भी मेरे दिमागमें नहीं थी । आखिर अक दिन अनसोचे ढंगसे मेरे लिये हिमालय जानेका रास्ता खुल गया ।

परिवारके लोगोंको घर पहुँचानेके लिये मैं बेलगाम गया । वहाँसे कहाँ जानेवाला हूँ, इसकी कोअी खबर किसीको न देते हुअे ही मैं काशी-यात्राके बहाने खाना हुआ । अनन्त बुवा मेरे साथ थे ।

हम चले, रेलगाडीके वेगसे चले । लेकिन हमारी कल्पनाअें तो पवनवेगसे — पवनवेग ही क्यों, मनोवेगसे — दौड़ती थीं । मेरे दिलमें विचार आया, मैं महाराष्ट्र छोड़कर जा रहा हूँ । शायद लौट भी न सकूँ । अब मराठीकी मीठी बातें फिर कहाँ सुननेको मिलेंगी ? अक तरफ़ हिमालय खींच रहा था । दूसरी तरफ़ महाराष्ट्रका मोह छूटता नहीं था । हृदय आगे दौड़ता था, लेकिन पैर अुठते ही न थे । आखिर विचार किया कि गोआकी रमणीय निसर्गश्रीका निरीक्षण करनेमें आठ-दस दिन बिताये बगैर तो हरगिज्ञ न जाऊँगा । चैत्र प्रतिपदासे रामनवमी तक गोआमें रहा, और अुदास अन्तःकरणसे गोआसे खाना हुआ ।

समुद्रके रास्ते हम बम्बयी आये । बम्बयीमें मुझे कोअी खास काम तो नहीं था, लेकिन मुझसे किसी तरह बम्बयी छोड़ी नहीं जाती थी । बम्बयी महाराष्ट्रका अन्तिम दर्शन था । मुझे महाराष्ट्रसे अितना अनुराग होगा, मराठी भाषा मुझे अितनी प्यारी होगी, इसकी कल्पना भी अितने दिनोंतक मुझे नहीं थी । मैं महाराष्ट्रीय हूँ, यह भावना भी

जब मैंने बम्बई छोड़ी, तभी यथार्थमें जाग्रत हुई। बम्बईसे मैं बड़ीदा आया। भूत बननेपर जीवात्मा जिस प्रकार अपनी मृत देहको अनेक मिश्रित भावोंसे देखता है, उसी प्रकार, वैसे ही मिश्रित भावोंसे, गंगनाथ-विद्यालयका मकान आदि सब कुछ मैंने अन्तिम बार देख लिया। गुरुजनोंसे आशीर्वाद लिया और शिव-जयन्तीके दिन (?) सीमोल्लंघन किया।

२

प्रयागराज

वैसाखका महीना था। गरमी सख्त पड़ रही थी। हमारी गाड़ी मध्य हिन्दुस्तानके विस्तीर्ण प्रदेशमेंसे दौड़ने लगी। डिब्बे अितने गरम हो गये थे, मानो डबल रोटीकी भट्टियाँ हों। हरअेक स्टेशनपर पानी पीने पर भी गला सूखा जाता था। जी बेचैन रहता था। फिर भी, अेक चीजके कारण कलेजेको ठण्डक पहुँचती रहती थी। हरअेक स्टेशनपर मराठी भाषा सुनायी देती थी, और पुण्डलीकके धामके रास्ते जाते हुअे जिस तरह दोनों तरफ बबूलके पेड़ नज़र आते हैं, उसी तरह यहाँ भी नज़र आ रहे थे। मराठी भाषा और बबूलके पेड़ जहाँतक थे, वहाँतक मैं महाराष्ट्रमें ही हूँ, इस विचारसे चित्तको शान्ति मिलती थी। लगभग जवलपुरतक यही सिलसिला रहा।

जवलपुरमें मेरे अेक मित्र रहते थे। उन्हें खोजकर मैं उनसे मिला, और उनके यहाँ भोजन किया। मेरे दिलमें विचार आया कि यही मेरा आखिरी महाराष्ट्रीय भोजन है। विचित्रता यह रही कि मुझे यह भोजन भी गुप्तवेशमें ही करना पड़ा। कभी वर्ष पहले मेरे ये मित्र अेल्ल-अेल्ल० बी० की तैयारी कर रहे थे; उस वक़्त मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की थी कि वकालतका धन्धा गन्दा है, उसकी अपेक्षा राष्ट्रीय शिक्षक होना कहीं अच्छा है। मैं अपने इस षड्यंत्रमें सफल हुआ, इसलिये मेरे मित्रके सभी आत्मीय और सगे-सम्बन्धी मारे क्रोधके मुझसे जलते थे। उन्होंने मुझे देखा तो

न था, लेकिन नाम सुना था । मुझे देखकर मेरे मित्रने मुझसे अग्रेज़ीमें कहा — “भाभी, अगर मेरी माँको यह पता चल जाय कि तुम कौन हो, तो तुमपर तुरन्त फूल बरसने लगेंगे । तुम्हें आध घण्टेमें लौटना है । अतनी-सी देरके लिअे व्यर्थका बखेड़ा क्यों मोल लिया जाय ? ” मैंने भी उनकी बात मान ली, और चोरकी तरह चुपचाप नहा-धोकर भोजन कर लिया । नाम और रूपका संयोग नहीं हुआ था, असलिअे बेचारी मैंने बड़े प्रेमसे रसोअी पकाकर मुझे गरमागरम महाराष्ट्रीय भोजन खिलाया । विदा होते समय मैंने उसके सामने अपना माथा नमाया, और प्रेमल माताके सारे शुभ आशीर्वाद पाकर मैं खाना हुआ ।

हमारी यात्राका पहला धाम था प्रयागराज । अतिहास-पुराणोंमें प्रसिद्ध गंगा-यमुनाका रमणीय संगम यहीं है । अक तरफसे दोनों किनारोंकी सफ़ेद बालू उछालती हुअी स्वर्धुनी दौड़ती आती है । दूसरी तरफसे यमराजकी बहन अपना महत्व और प्रतिष्ठा सफ़ालती हुअी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है । संगमसे दूरतक अन दो नदियोंके धवल और श्याम प्रवाह अस प्रकार बहते हैं, मानो वे अलग-अलग ही हों । प्राचीनकालसे हमारे कवियोंने अस संगमके काव्यमय स्थानपर अपनी सरस्वती बहायी है । हमारी धर्मनिष्ठ जनताने अति प्राचीनकालसे असाधारण अुत्साहके साथ अस त्रिवेणी-संगमकी पूजा की है । गंगाका नाम लेते ही हरद्वार और ब्रह्मावर्त्त याद आते हैं । और यमुनाका नाम सुनते ही कभी तो कुंजबिहारीका मथुरा-वृन्दावन याद आता है, और कभी शाहजहाँकी दिल्ली और आगरेका स्मरण होता है । हिन्दू और मुसलमान संस्कृतिकी अकताकी थोड़ी झाँकीभर करनेवाले सम्राट् अकबरने अस संगमपर अवस्थित सनातन अक्षयवटके आसपास अक मज़बूत क़िला बनवाया है ।

हम क़िला देखने गये । क़िलेमें गोरोंकी फ़ौज रहती है । क़िलेके संगमकी तरफ़वाले दरवाजेपर जब यात्रियोंकी बहुत भीड़ हो जाती है, तो अन्दरसे अक सिपाही आकर सबको भीतर ले जाता है, और अक्षयवटका दर्शन कराकर दूसरे दरवाजेसे बाहर निकाल देता है । अक्षयवट तो अक तहखाने-जैसी गुफ़ामें है । वट तो क्या, अक ज़बरदस्त तना-भर है । श्रद्धालु लोग कहते हैं कि वृक्षकी पीड़ यहाँ है, और उसकी डालियाँ

बुद्धगयामें हैं। इसका अर्थ क्या है, सो समझना मुश्किल है। क्या इसका यह मतलब लिया जाय कि किसी समय बौद्ध धर्म बुद्धगयासे अिलाहाबादतक फैला हुआ था ? ऐसा कहा जाता है कि हिमालयमें भी महादेवके महालिङ्गका एक छोर केदारनाथमें है, और दूसरा नेपालमें पशुपतिनाथके रूपमें है। लेकिन उसका अर्थ क्या ? अरे, हिन्दू तो यह भी कहते नहीं हिचकते कि गदाधर श्री विष्णुका एक पैर गयामें है, और दूसरा मक्केमें ! कल्पनाके साम्राज्यमें संयमसे क्या मतलब ? अक्षयवटकी गुफा काफ़ी लम्बी-चौड़ी है, और उसमें अनेक मूर्तियाँ हैं। किसी समय गंगा-यमुनाका प्रवाह अक्षयवटसे क़रीब-क़रीब लगा हुआ ही था। उस ज़मानेमें कभी हिन्दू इस अक्षयवटसे प्रवाहमें कूदकर देहत्याग करते थे। ऐसा माना जाता था कि इस प्रकार अक्षयवटसे कूदकर आत्महत्या करना पाप नहीं है, बल्कि उसमें मुक्ति है। मानो लोगोंकी इस अघोर साधनासे तंग आकर ही संगमने अपना स्थान बदल दिया, और अकबरने बरगदके आसपास क़िला बनवाकर इस आत्महत्याकी सम्भावनाको सदाके लिये मिटा दिया। सैनिक दृष्टिसे तो क़िलेका महत्त्व है ही।

अस क़िलेमें बौद्धधर्मीय सम्राट् अशोकका एक शिला-स्तम्भ है। उसपर अशोककी धर्म-लिपि खुदी हुई है। समुद्रगुप्तके राजकवि हरिषेणके लिखे हुअे कुछ श्लोक भी इसी स्तम्भपर खुदे हुअे हैं। अतिहासवेत्ता इन दोनों आलेखोंको बहुत महत्त्वका मानते हैं।

साथके सिपाहीकी थोड़ी खुशामद करके मैंने अशोकके इस शिला-स्तम्भके पास जानेकी अिजाज़त पायी। सिपाही बेचारा पंजाबी था। कहने लगा — 'वहाँ दर्शनके लायक़ कोअी चीज़ नहीं है। दर्शन तो उस गुफ़ामें है।' बेचारा भोला पंजाबी ! वह क्या जाने कि मेरे लिये दर्शन क्या है ? इस पत्थरके गोल खम्भेपर दिग्विजय और धर्मविजयके दो स्वतंत्र और अमर लेख हैं, इसका बोध उसे कब होगा ? क्या जब हिन्दुस्तानमें शिक्षा अनिवार्य और सार्वत्रिक होगी तब ? राष्ट्रीयताकी अुमंग घर-घर पहुँचेगी तब ? या कोअी लोक-कवि जनताकी विभिन्न बोलियोंमें उसकी महिमा गायेगा तब ?

क्रिलेके सामने ही संगमके पास अेक विस्तीर्ण रेतीला मैदान है। अुसमें प्रयागके पण्डे अपने-अपने डेरे लगाकर बैठे होते हैं। तम्बुओंकी अिस घनी बस्तीमें यात्री अपने पण्डेका तम्बू पहचान सके, अिसके लिअे हरअेक तम्बूपर विशिष्ट चिह्नांकित ध्वजा होती है। कोअी कपिध्वज, कोअी मकरध्वज, तो कोअी नौकाध्वज। नये ज़मानेकी सूचक 'हवाअी-गाड़ियाँ' (मोटर्) और रेलगाड़ियाँ भी ध्वजापर दिखाअी देती हैं।

हर बारहवें साल यहाँ प्रख्यात कुंभ-मेला लगता है। हर साल माघ-मेला तो लगता ही है। अिन मेलोंमें प्रान्त-प्रान्तके साधु, सन्यासी, तपस्वी और सन्त-महन्त आते हैं। धर्म-चर्चा होती है, तत्त्वज्ञानके दंगल होते हैं, नअी-नअी दलीलोंका लेन-देन होता है। आतुर शिष्योंको गुरु मिलते हैं, और शिष्योंके दीवाने गुरुओंको चेलोंकी प्राप्ति होती है। हरअेक वाद-विवादमें कितने प्रमाण मानने चाहियें, अिसकी चर्चा तो घण्टों चलती रहती होगी। कोअी प्रत्यक्ष तथा अनुमान को ही मानते हैं। बहुतेरे अपमान और शब्द-प्रमाणको भी मानते हैं। नंगे साधुओंमें जब शास्त्रार्थ होते हैं, तो न्यायशास्त्रमें बताये हुअे प्रमाणोंके अलावा लाठी और गालीके दो अतिरिक्त प्रमाणोंका प्रयोग होता है। ये लोग मौतसे नहीं डरते, लेकिन पुलिससे बहुत डरते हैं। क्योंकि अगर पुलिस अिन्हें पकड़कर हिरासतमें ले ले, तो वहाँ ये अपने धर्मका पालन नहीं कर सकेंगे ! अगर डण्डेबाज़ीमें पाँच-दस साधु खप जायँ, तो पुलिसके आनेसे पहले अुनके मुर्दोंको रेतमें पूरकर, और रेतकी सतह बराबर करके वे अुसपर बैठ जायँगे। चाहे वहाँ हज़ारों बाबा क्यों न खड़े हों, पुलिसको अेक भी गवाह न मिलेगा। अपराधियोंको सज़ा देनेसे समाजमें अपराध कम नहीं हुअे हैं, और अैसे साधुओंको सज़ा न होनेसे अुनमें अपराध बड़े नहीं हैं, यह बात विचार करने योग्य है।

मुझे प्रयागराजमें पिताजीके फूलों (अस्थि) का त्रिवेणी-संगममें विसर्जन करना था। वह काम पूरा करके मैंने श्राद्ध किया। नदी किनारे मूँछें मुँडवाये हुअे लोग बहुत देखनेमें आते थे, अिस कारण अैसा लगता था, मानो मद्रासी लोगोंने अुत्तर हिन्दुस्तानमें अपनी अेक बस्ती ही बसा ली है। आम तौरपर जब हम सिन्धियोंको देखते हैं, तो वे नीम-अंग्रेज़ और नीम-

पारसी जैसे लगते हैं; लेकिन तीर्थक्षेत्रमें अत्यन्त श्रद्धाशीलता दिखानेवाले और भक्तिसे गद्गद होनेवाले यात्रियोंमें सिन्धका नम्बर पहला आयेगा। महाराष्ट्रीय थोड़े खर्च और थोड़े समयमें अधिक-से-अधिक कैसे देखा जाय, और पुण्यका संचय कैसे हो, इसीपर ज्यादा ध्यान देते हैं। गुजराती हमेशा खाने-पीनेकी सुविधाकी फिकरमें घूमते हुअे नज़र आते हैं। और बंगाली इस बातकी अधिक चिन्ता रखते हुअे दिखायी देते हैं कि उनकी भक्तिके भावावेशको सारी दुनिया अच्छी तरह देख सके। मद्रासी चेहरेपरसे तो होशियार मालूम होते हैं, लेकिन हिन्दी न जानने के कारण, और अपने विचित्र रिवाज और पोशाकके कारण रोझों (जंगली घोड़ा) के समान यहाँ-वहाँ भटकते दिखायी देते हैं। मज़दूरों और गाड़ीवालोंसे तो उनकी कभी बनती ही नहीं।

युक्तप्रान्तके लोगोंके लिये प्रयाग कोअी परदेश नहीं है। वे तो बाक़ायदा रूअीकी मिरजअी पहने, सिरपर कुछ तिरछी टोपी लगाये, मुँहमें पान दबाये, सजे हुअे साँड़ोंके समान घूमते-फिरते हैं। उन्हें देखकर हर कोअी कह सकता है — ‘आत्मन्येव च संतुष्टः अस्य कार्यं न विद्यते।’ अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा आदमी चाहे किसी प्रान्तका क्यों न हो, उसकी अक़ अलग ज़ात बन ही जाती है। जैसे तीर्थस्थानमें आनेसे मेरी शिक्षापर कोअी धब्बा तो नहीं लग गया है, ऐसी मुखमुद्रा बनाकर वह सबसे दूर, अलग-थलग घूमता है। और अनि सबके चित्र-विचित्र स्वभावों, पोशाकों, और रिवाजोंकी तरफ़से बिल्कुल अदासीन रहकर गंगा और यमुनाका सनातन प्रवाह अमरपुरी वाराणसीकी ओर अखण्ड, अविरत बहता ही रहता है।

अमरपुरी वाराणसी

मैं पहले भी एक बार काशीजी गया था। तो भी परिचयसे उत्पन्न होनेवाली अवज्ञा मुझमें पैदा नहीं हुई थी। जब रेलमें बैठकर मैं गंगाजीके पुलपरसे जा रहा था, तब काशीका वह अद्भुत दृश्य देखकर मैं गद्गद हो उठा था। काशीमें दूरसे ही हमेशा एक ऐसी आवाज़ सुनायी देती है, मानो शहदके छत्तेपर बैठी हुई मधुमक्खियाँ गुनगुना रही हों। 'वारणा' नदीसे 'असी' नदीतकके दृश्यमें सबसे अधिक ध्यान तो औरंगजेबकी मसजिदकी गगनस्पर्शी दो मीनारों ही आकृष्ट करती हैं। उन मीनारोंको देखकर एक विचार-परम्परा मनमें जाग्रत हुई। मैंने मन ही मन कहा —

“अन दो मीनारोंके पीछे हिन्दुस्तानके अतिहासका परम रहस्य — चरम रहस्य — छिपा हुआ है। औरंगजेबने धर्मान्धताके जोशमें आकर, काशीके केन्द्र, हिन्दू धर्मके तिलक, विश्वेश्वरनाथके मन्दिरको तुड़वा डाला और उसकी जगह एक मसजिद बनवायी। आज भी इस मसजिदके पिछले हिस्सेमें मूल मन्दिरका अवशेष दीख पड़ता है। औरंगजेबकी मृत्यु हुई। मुगल साम्राज्यका पतन हुआ। हिन्दू-पदपादशाहीकी स्थापनाकी अिच्छा करनेवाले मराठोंकी धाक दिल्लीपर जम गयी। मराठा सरदार हरिद्वारके पण्डोंको भूमिदान देने लगे। फिर भी, अन हिन्दुओंको काशी-जैसे पवित्र धर्म-क्षेत्रमें अिस्लामकी पताकाके समान विराजती हुई औरंगजेबकी मसजिद तोड़ डालनेके विचारने स्पर्शतक नहीं किया। आज यह मसजिद अिस्लामके विजयकी पताका नहीं रही है। लेकिन जब हिन्दुओंका साम्राज्य लगभग सारे देशमें फैल गया था, उस समय प्रकट की हुई उनकी सहिष्णुताकी ध्वजा है। हिन्दू जातिके इस प्रेम-मन्त्रको अंग्रेज़ समझ ही नहीं सकते, फिर वे इसे ग्रहण तो कैसे करते? अिसीलिअे कानपुरके कुअेंपर लिखे हुअे अपने द्वेष-लेखकी हिफ़ाज़तके लिअे सरकारने वहाँ गोरोंका पहरा बैठा दिया है, और दिल्ली शहरेके सामने तलवार उठाकर खड़े हुअे सेनापतिका पुतला खड़ा करनेमें बड़ा पुरुषार्थ माना है।”

अिन विचारोंके प्रवाहमें मैं जाने कहाँ बहता चला जाता; लेकिन पुलके नीचे बहते गंगाजीके शान्त प्रवाहने मुझे भी शान्त कर दिया । पर यह शान्ति देरतक टिकने नहीं पायी । स्टेशनके पास आते ही मेरी छाती धड़कने लगी । पण्डोंका झुण्ड मेरे पीछे पड़ेगा, अिस खयालसे मेरे गात्र ढीले पड़ गये । रूसके जंगलका कोअी मुसाफिर भेड़ियोंके झुण्डको अपना पीछा करते देखकर भी अितना घबराया न होगा । डरते-डरते मैं ट्रेनसे अुतरा, और अेक गाड़ीवानके पास जाकर अुससे कहा — “भाअी, जितना किराया लेना हो, ले लो, लेकिन मुझे फ़ौरन यहाँसे दुर्गाघाटकी तरफ़ ले चलो ।” गाड़ीवानने गाड़ी तो हाँकी, लेकिन फिर भी दो पण्डे अपने-अपने पोथे बग़लमें दबाकर मेरे पीछे दौड़े । मैं अुनके चंगुलसे ज्यों-त्यों छुटकारा पाकर अनन्त भटके घर जा पहुँचा ।

अनन्त भट्ट बड़े भले आदमी थे । अपना कर्मकाण्ड भलीभाँति निवाहते थे । यजमानोंकी आव-भगत अपने कुलकी प्रतिष्ठाके अनुरूप करते और अपनी आय बढ़ाते थे । साहूकारीका धन्धा भी करते थे । सोनेसे पहले मुझे पण्डोंका खयाल आया । मैंने सोचा, अनन्त भट्ट भी तो अेक तरहके पण्डे ही हैं । अगर ये यहाँ न होते, तो मेरी यात्रा सुचारु रूपसे न हो पाती । विलायतके हर बड़े शहरमें होटल होते हैं । ‘हाअुस अेजण्ट्स’ होते हैं । टॉमस कुक-जैसी कम्पनियाँ होती हैं । हर बन्दरगाहपर शिपिंग अेजण्ट्स भी मिलते हैं । क्या ये पण्डे वही काम हमारे जीवनके अनुरूप ढंगसे नहीं करते ? पण्डेको चिट्ठी लिखते ही वह हमें लेनेके लिअे स्टेशनपर आता है । घर ले जाकर रहनेका प्रवन्ध करता है । दर्शनीय मन्दिर और स्थान दिखाता है, अुन सबका माहात्म्य भी बताता है, हमारे साथ बाज़ारमें भी आता है, और अिस सबके लिअे लेता क्या है ? जो कुछ हम दे दें । अितनी सस्ती और सादी व्यवस्था दुनियामें और कहीं न मिलेगी ।

तब हमें अिन पण्डोंसे घबराहट क्यों होती है ? अिसका कारण यही है कि पण्डोंको अबतक अिस बातका पूरा भान नहीं हुआ है कि वे अब गुरु या पुरोहित न रहकर ‘हाअुस अेजण्ट’ या ‘हॉटेल कीपर’ ही रह गये हैं । दो आदर्श सभालनेकी कोशिशमें अुनकी यह दशा हो गयी है । सच पूछिये, तो

ये पण्डे यात्रियोंके गुरु कहलाते हैं । अपनी भल्यमनसाहत और आतिथ्य-धर्मके अनुसार शुरू-शुरूमें अन्होंने अपने यजमानोंकी खातिरदारी की होगी । बादमें धनवान यात्रियोंको देखकर ब्राह्मणोंका हृदय लोभसे विचलित हो अुठा होगा । ब्राह्मण कहते हैं कि पण्डोंका लोभ सीताजीका शाप है । धन्य है अिन ब्राह्मणोंको, जो अपने भदे-से-भदे दोषके लिअे भी व्यास या शौनक ऋषिके नामसे पौराणिक प्रमाण अुत्पन्न कर सकते हैं । अिन गंगापुत्रोंमेंसे कुछ आधुनिक पद्धति स्वीकार कर 'हाउस-अेजण्ट' और 'ट्राव्हलर्स गाअिड' बन जायँ, और अिस तरह अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करें, तां भी वे खूब कमायेंगे और यात्रियोंके आशीर्वाद भी पायेंगे ।

दूसरे दिन हम मणिकर्णिका घाटपर नहाने गये । वहाँ गंगाजीका ही पानी लेकर गंगाजीका अभिषेक किया । फिर चक्रपुष्करिणी तीर्थपर पहुँचे । पास खड़े हुअे अेक गंगापुत्रने कहा — “आअिये महाराज, स्नान कीजिये ।” मैंने अुसे मना कर दिया । बाबा चौंक गये । अुन्होंने पूछा — “क्यों अिस तीर्थका ज़्यादा माहात्म्य नहीं है ?” मैंने जवाब दिया — “क्यों नहीं ? अगर आदमी अिसमें अेक बार नहा ले, तो फिर अुसे नरकमें जानेकी ज़रूरत न रह जाय ।” बाबा समझ गये । फिर भी, अुनका कुतूहल तृप्त करनेके लिअे हम तीर्थके पास गये । तीर्थपर अेक संगमरमरका पत्थर था । अुसपर अंग्रेज़ीमें विक्टोरिया रानीका नाम और दूसरी कुछ बातें लिखी थीं । और तीर्थमें ? पाँच फुट चौड़ा और पचीस-तीस फुट लम्बा अेक गड्ढा । पानीका रंग हम देख न सके । क्योंकि अुस कुण्डमें रोज़ नहानेवाले हज़ारों यात्रियोंके पसीनेकी मोटी पर्त पानीपर जम गअी थी । तो भी सैकड़ों यात्री मृत्युके वादके नरकसे बचनेके लिअे अिस नरकमें बड़े शीक़से गोते लगा रहे थे । मुझे लगा, अीश्वर मारे शर्मके अिन लोगोंको नरकवाससे मुक्त कर देता होगा । क्योंकि अिस कुण्डमें स्नान करनेवाले भी जिसे देखकर धिनायें, वैसा कुण्ड अीश्वर नरकमें भी कहाँसे लायेगा ?

हम स्मशानघाट की तरफ़ चले । वहाँ कटी हुअी लकड़ियोंका ढेर रचकर रक्खा था । मैंने सोचा, कहीं मेरे लिअे ही तो यह ढेर नहीं

रचाया गया है ? जो मनुष्य काशीमें मरता है, उसके कानमें स्वयं महादेव तार स्वरसे मन्त्र पढ़ जाते हैं, और काशी-विश्वेश्वर हमेशा अपने शरीरमें उसकी चिता-भस्मका लेप करते हैं ।

आगे चलकर हमने विन्दुमाधवका दर्शन किया । सिन्धिया-होलकरके अन्नसत्र देखे । पुण्यश्लोका अहल्यावागीका स्मरण हुआ । उनकी व्यवस्थाके अनुसार रोज़ काशीसे रामेश्वर जानेवाली बहंगीका चित्र दृष्टिके सामने आया । हमने विश्वनाथजीके दर्शन किये । वहाँकी वह भीड़, वह कीचड़, और सड़े हुए दिल्पत्रोंकी वह गन्ध, ये सब कैसे ही क्यों न हों, तो भी काव्यमय प्रतीत होते थे, और भक्तिभावमें वृद्धि ही करते थे । विश्वेश्वरके दरबारमें कोई भेदभाव नहीं है । सब समान हैं । दर्शनोंके लिये चाहे जो जाय, चाहे जय जाय, 'मत जाओ' का नाम न मिलेगा । मन्दिरके गर्भगृहकी दीवारमें एक तिरछा छेद बनाया गया है । इस छेदको बनानेका कारण मेरी समझमें नहीं आया । लेकिन मन्दिरकी पश्चिमा करते वक़्त मैंने देखा कि दुनियाकी यात्रा करनेवाले ग़रे 'ग्लोब ट्रेडर्स' (तुरगयात्रियों) के लिये विश्वेश्वरके दर्शनोंका प्रबन्ध करनेके विचारसे ही यह छिद्र बनाया गया है । जिस वक़्त हम गये, उस वक़्त वहाँ टॉमस कुकका एक अजण्ट दो तीन मेंनोंको मन्दिरके विषयमें जानकारी दे रहा था । किसीने मुझसे कहा कि मन्दिरके गुम्बदपर मढ़ी हुआ सोनेकी चदर पंजाब-कैसरी रणजीतसिंहकी श्रद्धाका एक चिह्न है । पास ही औरंगज़ेबकी मसजिद है, और बीचमें ज्ञानवापी है । कहते हैं कि जब यवन पुराने मन्दिरको भ्रष्ट करने आये, तब कलियुगकी महिमा जानकर विश्वेश्वरकी मूर्ति इस कुओंमें कूद पड़ी थी । यह कुआँ ठेठ पाताल तक गया है !

वहाँसे हम वह मठ देखने गये, जिसमें बैठकर अकनाथ महाराजने अपना 'नाथ भागवत' नामक ग्रंथ पूरा किया था । इसी स्थानपर यह सिद्ध हुआ था कि संस्कृत भाषाका सामर्थ्य और पावित्र्य मेरी मराठीमें भी है । इस विचारके आते ही हृदयमें भक्ति अमड़ आयी । मैंने उस स्थानको दण्डवत् प्रणाम किया, अकनाथ स्वामीका स्मरण किया, और हम त्रिलिंग स्वामीकी मूर्तिके दर्शन करने गये । त्रिलिंग स्वामी एक

सुविख्यात दक्षिणी संन्यासी थे । उन्होंने काशीजीमें अनेक मन्दिरों और मकानोंका जीर्णोद्धार कराया था । लेकिन वे अेक भी नया मन्दिर या नया मकान बनवानेको तैयार न होते थे । इसका कारण स्पष्ट है । काशीजीके छोटे-पोटे मन्दिरों और मूर्तियोंकी गिनती की जाय, तो उनकी संख्या अितनी निकले कि वह काशीकी जन-संख्यासे बहुत कम तो न हो । वहाँ और नये मन्दिर बनवानेकी जरूरत ही क्या है ?

हिन्दुस्तानमें अनेक साम्राज्य हो गये । अनेक राजधानियाँ हो गयीं । आज वे राजधानियाँ या तो नामशेष हो गयी हैं, या छोटे-छोटे गाँवोंमें रूपान्तरित हो गयी हैं । लेकिन यह देवनगरी अनेक साम्राज्योंके अभ्युत्थान और पतनकी साक्षी होकर भी आजतक ज्यों-की-त्यों बनी है । यदि भूतकालको सजीव देखना हो, तो काशीजीमें देख सकते हैं । गंगाजी अपने घाट-रूपी बन्धनोंको बार-बार तोड़ती ही रहती हैं, और जिस तरह अपनी माँकी लात खाकर भी बछड़ा दूध पीने दौड़ता ही है, उसी तरह लंग भी फिर-फिर नये-नये घाट बनवाते ही जाते हैं ।

वाराणसीमें आज भी पूर्व मीमांसावादी कर्म-काण्डियोंके यज्ञ-याग चलते रहते हैं; वेदान्ती द्रवैत-अद्रवैतका झगड़ा करके श्रोताओंको खण्डन-खण्ड-लाद्य देते हैं; वैयाकरणों अेक-अेक शब्दकी खाल निकालते हैं; बंगाली और दक्षिणी नैयायिक 'गदाधारी'का अर्थ करनेकी कोशिश करते हैं; आीसाजी और आर्यसमाजी वाग्युद्धकी धूम मचाते हैं । वेदाभ्यासी दश-ग्रंथोंका घोष करते हैं; कारीगर टाँकी चला-चलाकर पत्थरको देवता बनाने हैं, और कभी भूदेव अन्नक्षेत्रमें खाकर निठल्ले बैठे-बैठे जीवित पत्थर बन जाते हैं ।

अिसी नगरीमें अग्रजों और अन्त्यजोंने विश्वामित्रके ऋणसे मुक्त होनेमें सत्यमन्ध हरिश्चन्द्रकी मदद की थी । अिसी नगरीमें तुलसीदासने रामकथाका गान किया था, और यहीं कबीरजीने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियोंको अेक सूत्रमें पिरोया था ।

कुछ लोग बनारसको The city of the dead and the dying — मृतकों और मरणान्मुखोंकी नगरी कहते हैं । परन्तु जैसा कि

ऊपर कहा जा चुका है, हिन्दुस्तानकी अनेक नगरियाँ नामशेष हुईं; पर वाराणसी आज भी अमरपुरी ही है, क्योंकि काशीजीमें सनातनधर्मका निवास है।

एक दिन हम दशाश्वमेध घाटसे पुलतक नावमें धूमने गये। गंगाजीके स्पर्शके कारण शीतल और पावन पवन मन्द-मन्द बह रहा था। नाना प्रकारके मन्दिर 'मुझे देखो, मुझे देखो', कहते हुआँखके सामने खड़े होते जाते थे। मैं सबको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता था। जिस प्रकार चकमक पत्थरके टेढ़े-मेढ़े पहलू सुहावने लगते हैं, उसी प्रकार काशीके मकानोंकी विशृंखल शोभा दृष्टिको आकर्षित करती है। साँझ-सबेरे असंख्य स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध गंगामैयाकी गोदमें खेलते हुआँ नज़र आते हैं।

दशाश्वमेध घाटपर एक परमहंस रहते थे। वे नम्र रहा करते थे। जब मैं पहली बार बनारस गया था, तो मैंने उनका फोटो लेनेका प्रयास किया था। परन्तु वह निष्फल हुआ। मैं जिधर मुड़ता था, अधर ही वे अपनी पीठ फेरते जाते थे। उस दिन मैं बहुत खिन्न रहा, लेकिन बादमें मुझे यह विचार आया कि अैसे परमहंसका फोटो लेना जंगलीपन है। अबकी बार मैं फिर उनके दर्शन करने गया, तो देखा कि वे वहाँ नहीं थे। किसीने कहा, कुछ दिन पहले गंगाजीमें बाढ़ आयी थी, उसीमें वे बह गये। कुछ लोगोंने उन्हें बचानेका प्रयत्न भी किया, लेकिन उन्होंने लौटनेसे साफ़ अनिकार कर दिया, और गंगाजीमें जल-समाधि ले ली।

काशीमें जिस प्रकार अनेक धर्म और अनेक सम्प्रदाय हैं, उसी प्रकार वहाँ स्थापत्य और शिल्पकलाके भी अनेक प्रकार हैं। दूसरे दिन हम उन्हें देखने निकले। सब देख-दाखकर शामके वक्त्रत थिऑसॉफिस्ट लोगोंके सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेजमें पहुँचे। वहाँ सरस्वतीका एक छोटा-सा मन्दिर देखा। एक-दो बंगाली विद्यार्थी चढ़र ओढ़कर नंगे सिर घूम रहे थे। पास ही थिऑसॉफिकल लाजमें श्रीमती बेसण्टका व्याख्यान था। 'भविष्यका मनुष्य प्राणी कैसा होगा?' अिस विषयपर विवेचन हो रहा था। व्याख्यानके बाद हम लोग रामकृष्ण-सेवाश्रम पहुँचे। वहाँ

ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर नामक अेक साधु थे । अुन्होंने हमारुा स्वागत किया । कअी ब्रह्मचारी संस्कृत पढ़ते थे । पासवालें रूग्णालयमें चारुबाबू रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते थे । सेवाश्रमका प्रबन्ध देखकर मैं खुश हुआ । अितनेमें दो-तीन बंगाली शहरसे तम्बूरा और तबला लेकर आये । अुन्होंने तम्बूरे और तबलेके साथ गाना शुरू कर दिया । सन्त कवि रामप्रसादका गीत था । गायक अद्भुत थे । शामको जब घर लौटे, तो अुसी गायनका स्वर कानोंमें गूँज रहा था ।

आखिरी दिन हम कालभैरवके मन्दिरमें गये । वहाँ हमने अपने हाथमें और गलेमें रेशमका काला धागा बाँधा । मन्दिरमें जाकर

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्त दहनोपम ।

भैरवाय नमस्तुभ्यं, अनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

कहकर काशीजीके अस कोतवालसे आज्ञा ली, और त्रिस्थलीकी यात्रा पूरी करनेके अुद्देश्यसे गयाजीके लिअे रवाना हुआ । मैं जानता था कि गया के पण्डे यात्रियोंको बहुत तंग करते हैं, असलिअे गयाकी सारी विधियोंकी दक्षिणा और खर्चका पैसा अनन्त भट्टजीको देकर हमने अुनसे रसीद ले ली थी । असमें अुतनी ही सुविधा थी, जितनी टॉमस कुक कम्पनीको प्रवासका सारा खर्च देकर कूपनबुक लेनेमें होती है ।

हरअेक हिन्दुस्तानीको जीवनमें अेकवार वाराणसीके दर्शन अवश्य करने चाहियें ।

गयाका श्राद्ध

दुनियाकी हरअक वस्तु मरती है, मरता नहीं अकेला अक भूतकाल । भूतकाल चिरंजीव है । महासागरमें भाटा आता है, चन्द्रका क्षय होता है, कुबेर निर्धन होता है, पर्वत घुल जाते हैं, साम्राज्य स्मृति-पटलसे मिट जाते हैं, लेकिन लोकक्षयकृत् भूतकालका क्षय नहीं होता । भूतकाल दिन-दिन समृद्ध ही होता जाता है । लेकिन आप उसका संग्रह नहीं कर सकते, क्योंकि आप तो वर्त्तमानमें ही रहते हैं । यदि भूतकालका वृक्ष आपको अपने आँगनमें रखना हो, तो आपके पास उसे सींचनेके लिये अमित स्मृति-जल होना चाहिये ।

हरअक मनुष्यकी यह अच्छा होती है कि उसकी जड़ें भी भूत-कालमें हों । अपनी सन्ततिके द्वारा वह भविष्यमें तो पैर पसार सकता है, लेकिन भूतकालमें प्रवेश करनेके लिये पैर, भूतोंके समान, अलटे होने चाहियें । लेकिन मनुष्यने अक हिकमत खोज ली है । वह सालमें अक बार भूतकालमें बसनेवाले अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका स्मरण कर उन्हें श्रद्धाजलि अर्पण करता है, और भूतकालपर अपनी विरासतका अधिकार साबित करता है ।

यों तो भूतकाल सर्वत्र रहता है; परन्तु जिस प्रकार विष्णु वैकुण्ठमें रहते हैं, अथवा महादेव कैलाशमें रहते हैं, उसी प्रकार भूतकाल गयाजीमें रहता है । आज अितने वर्षों बाद भूतकालमें आसानीसे प्रवेश करनेके विचारसे ही मैं फिर गयामें प्रवेश कर रहा हूँ । हरअक हिन्दू गयाजी जाकर अपने पूर्वजोंका श्राद्ध करता है । पर आज मेरा जी गयाका ही श्राद्ध करना चाहता है ।

हम रातको गया पहुँचे । मैं पहले अक बार वहाँ हो आया था, इसलिये वहाँ पहुँचनेपर किसी तरहकी असुविधाका कोअी डर न था । गया तीर्थस्थान है, इसलिये वहाँ हज़ारों या लाखों मनुष्य भी अक साथ आ जावें, तो भी असुविधाकी कोअी आशंका नहीं रहती । हरअक घरमें

कितने मनुष्य रह सकते हैं, अिसका हिसाब म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे कर लिया गया है। हमारे लोगोंको ज़्यादा सुविधाओंकी ज़रूरत नहीं होती। अिसलिअे अगर दक्षिणाके विषयमें किसी प्रकारकी चख-चख न हो, तो यात्रा सुखसे हो सकती है। स्टेशनपर पहुँचते ही गयावाले पण्डोंके आदितिये आपके सामने हाज़िर हो जाते हैं, और आप कहँके हैं? कहाँसे आये हैं? वयैरा सवाल हिन्दुस्तानकी हरअेक भाषामें पूछ लेते हैं। आप जिस भाषामें जवाब देते हैं, उसी भाषामें वे सम्भाषण शुरू कर देते हैं। ये आदितिये हिन्दुस्तानके किसी भी विश्वविद्यालयके स्नातक नहीं होते, फिर भी वे हिन्दुस्तानकी सभी भाषायें जानते हैं, और यदि आपको अुनके व्याकरण-ज्ञानपर आपत्ति न हो, तो वे सभी भाषाओंमें अस्खलित बोल भी लेते हैं।

मुझे याद नहीं पड़ता कि मेरे हिस्से कौन पण्डा आया था। मैं समझता हूँ कि मैंने उसका दर्शन भी नहीं किया। अुसके मुनीमके मुनीमका मुनीम मुझे स्टेशनपर मिला, और वहाँसे अेक अुतारेपर ले गया। अिस डरसे कि कहीं मैं अुसकी वाचालताका शिकार न हो जाऊँ, मैंने पहले ही अुससे कह दिया — “देखो भाअी, मैं पहले अेक बार यहाँ आ चुका हूँ। यात्राके लिअे आवश्यक सारा पैसा मैंने अनन्त भट्टको बनारसमें ही दे दिया है। अुनसे तुम्हें मिल जायगा। अब यहाँ मुझे अिन-अिन सुविधाओंकी ज़रूरत है। अुनके लिअे ये पैसे लो। मुझे कल श्राद्ध करना है; लेकिन वह मैं कर्नाटकके नृसिंहाचार्यसे ही करवाऊँगा। अुन्हें कल सबेरे आठ बजेसे पहले यहाँ भेज देना। दोपहरमें श्राद्ध खतम होनेके बाद तुम अपनी बही ले आना। मैं अुसमें दस्तखत कर दूँगा। अब अधिक कुछ कहनेकी ज़रूरत नहीं है। जाओ, जो काम मैंने बतलाये हैं, सो करो और मुझे आराम करने दो।” मेरा यह मिजाज़ देखकर वह बेचारा चकरा गया, और बिना अेक शब्द बोले मेरे कहे अनुसार अिन्तज़ाम करने चला गया। अगर मैं अुसे अपना यह अुग्ररूप न दिखाता, तो वह भलामानस अपनी आशाभरी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें मेरा कम-से-कम आध घण्टा तो ज़रूर ही बरबाद करता !

दूसरे दिन मैं फल्गु नदीके किनारे श्राद्ध करने गया। फल्गु नदी ज़मीनके नीचे बहती है। अुसे सीताजीका शाप है। रेत खोदनेपर

पानी मिलता है। नदीमें हमेशा यात्रियोंकी भीड़ रहती है, और उस भीड़में दृष्टपुष्ट और रूपवान पण्डे साँझोंकी तरह दक्षिणाकी आशासे घूमते-फिरते दिखायी देते हैं। मैंने नदीमें स्नान किया। उपले लाया। अनुपर चक्र तैयार किया। नृसिंहाचार्य आये। वे सब मंत्र जानते थे, उनके उच्चारण भी अच्छे थे, इसीलिये मैंने उन्हें पसन्द किया था।

नदीके पाटमें बैठकर करने योग्य सारी क्रियायें समाप्त करके, मैं पिण्डके साथ गदाधरके मन्दिरमें गया। वहाँ सैकड़ों यात्री जगह-जगह कभी कतारोंमें बैठे हुए थे, और श्राद्धकी कवायद कर रहे थे। श्राद्ध-सदृश अत्यंत पवित्र भावनावाली धार्मिक क्रियाका जैसा यांत्रिक स्वरूप यहाँ देखनेको मिला, वह मुझे बहुत बुरा लगा। पग-पगपर दक्षिणाके लिये लड़नेवाले और अगर कोअी गरीब, अज्ञानी यात्री मुँहमाँगी दक्षिणा न दे पाये, तो उसके मरे हुए पुरखोंको गालियाँ देनेवाले गयावालोंको देखकर यदि किसीको हिन्दूधर्मकी तरफसे निराशा हो जाय, तो उसे ज़्यादा दोष नहीं दिया जा सकता। हम पिण्डदानके लिये धर्मशिलाले पास जा बैठे। धर्मशिलापर श्री विष्णुका पदचिह्न है। इस विष्णुपदपर लोग पिण्ड चढ़ाते जाते हैं, और गायें आकर उन्हें खाती जाती हैं। यह सिलसिला बराबर जारी रहता है। पिण्ड-प्रदानकी क्रिया समाप्त होनेपर गयापुत्रोंसे यात्राका सुफल प्राप्त करना बाक़ी रह जाता है। इस वक़्त गयापुत्र मनमानी दक्षिणा अँठ सकते हैं। हम उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं, और वे फूलोंकी मालासे हमारे हाथ बाँध देते हैं; फिर जबतक उन्हें मनचाही दक्षिणा न मिले, तबतक हाथोंका बन्धन छोड़नेसे अिनकार करते हैं। जब गरम हो जानेपर माला तोड़ डालते हैं, और हमारी पीठ थपथपाकर यात्राकी सफलता घोषित करते हैं, और हमें विश्वास दिलते हैं कि हमारे सभी पूर्वज सीधे स्वर्गको पहुँच गये!

मैं बनारसमें ही सारी दक्षिणा दे चुका था, इसलिये यहाँ साफ़ बच गया। हमारे मुनीम अ़ेक गयापुत्रको ले आये, और उसे मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया। गयापुत्र कोअी बीस सालका रहा होगा। वह पीताम्बर पहने था। बदनपर रेशमी कमीज़ और जाक़ट थी। बाल अ़िग्लिश तर्ज़के थे, और पोमेड लगाकर बाक़ायदा चमकदार बनाये गये थे। मैंने बहुत यत्नपूर्वक अपनी

सारी श्रद्धा अकत्र की, उसके सामने दोनों हाथ जोड़े और अन्हें मालासे धँधने दिया। गयापुत्र रूठनेकी तैयारीमें ही था कि अितनेमें मुनीमने कहा — “दक्षिणाके पैसे जमा करा दिये गये हैं।” गयापुत्रने माला तोड़ दी और वह चलता बना। वह गयापुत्र तो शायद मुझे भूल गया होगा, लेकिन मैं उसे अभीतक भूल नहीं हूँ।

हमारे अुपाध्यायने कहा — “गयामें आकर श्राद्ध करना मनुष्यके गृहस्थ जीवनका अन्तिम कर्त्तव्य है। वह कर्त्तव्य सम्पन्न हुआ है। अब तुम्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अिन षड्रिपुओंका त्याग करना चाहिये। लेकिन अस कलियुगमें यह बात किसीसे होती नहीं। असलिये उसके बदले किसी अेक वस्तुका त्याग करना चाहिये।” मैंने पूछा — “शकर छोड़ दूँ तो ?” आस-पास खड़े हुअे दस-पन्द्रह आदमी यह सुनकर चकित रह गये। अुन्होंने कहा — “शकर क्यों छोड़ी जाय ?” मैंने कहा — “आज पाँच साल से मैं शकर खाता ही नहीं हूँ।” अुपाध्याय महाराजने सुझाया — “करेला या कद्-जैसी कोअी चीज़ छोड़ दो।” मैंने कहा — “धर्मके साथ अैसा कपट मैं नहीं करूँगा। मैं तो क्रोधका ही त्याग करनेका प्रयत्न करूँगा।” और, मन ही मन असमें अेक बात और जोड़ते हुआ कहा — “और अन्धश्रद्धाका भी।”

गदाधरका मन्दिर सुन्दर है। नदीके पाटसे बहुत अँचाअीपर हानेके कारण असकी शोभा और भी बढ़ गअी है। दोपहरमें हमने नृसिंहाचार्यके घर भोजन किया। गया-माहात्म्यका श्रवण किया, और तुरन्त ही बोधिगया जानेका निश्चय किया। गया-माहात्म्य हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें अेक अद्भुत प्रकरण है। निष्काम भावसे परोपकार करनेवाले गयासुरके तेजसे डरकर देवोंने षड्यंत्र रचा और असमें साक्षात् श्री विष्णुने भाग लेकर अत्यन्त निर्दयतासे — और दगाबाज़ीसे भी कह सकते हैं — असका खून किया। अस आशयकी अेक कथा अस माहात्म्यमें है।

तो अब वह कथा सुनिये।

गयाकी ख्याति

लोकपितामह ब्रह्मदेवने असुरवृत्तिसे असुर उत्पन्न किये, और सद्भावसे देव उत्पन्न किये। अिन असुरोंमें गयासुर महा बलवान और पराक्रमी था। उसका शरीर बहुत ही स्थूल था। असुरका नाम लेते ही किसी महापापी, क्रूर, सबको सतानेवाले, अिन्द्रपर धाक जमानेवाले, अप्सराओंको अुठा ले जानेवाले किसी मायावी और कपटी राक्षसका ही खयाल दिलमें आता है। लेकिन सभी असुर ऐसे नहीं होते। दानशूर बलिराजा भी असुर था। गयासुर भी अिसी कोटिका असुर था। हमें यही देखना है कि उसके सामने देव कैसे दिखायी देते थे।

गयासुरको पवित्रताकी लगन लगी, और उसने कोलाहल पर्वतपर दारुण तप शुरू किया। हजारों वर्षोंतक साँस थामकर तप करता रहा। अिससे देव हमेशाकी तरह बहुत ही घबराये। अपनी परिपाटीके अनुसार सारे देव ब्रह्मदेवके पास गये। ब्रह्मदेव शंकरके पास, और शंकर विष्णुके पास। देवोंने अपने सनातन रिवाजके अनुसार विष्णुकी स्तुति की। विष्णुने उनकी घबराहटका कारण पूछा।

अुन्होंने दुहायी देते हुअे कहा — “गयासुरके संकटसे हमारी रक्षा करो।”

“तुम चलो, मैं अभी आकर गयासुरको वरदान देता हूँ, और उसके तपका अन्त करता हूँ।” विष्णुने वचन दिया।

सबने मिलकर गयासुरसे वरदान माँगनेको कहा। गयासुरने माँगा — ‘मैं देव, ब्राह्मण, यज्ञ, तीर्थ, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, सबसे बढ़कर पवित्र होऊँ।’

देवोंने खुशीसे ‘तथास्तु’ कहकर वरदान दिया, और सब अपने-अपने घर गये।

लेकिन वहाँ तो ‘लिखत सुधाकर लिखिगा राहु’वाली कहावत चरितार्थ हुअी। गयासुरका पवित्र दर्शन करके, उसका स्पर्श करके, सभी

वैकुण्ठधामको जाने लगे । तीनों लोक खाली हो गये । यमपुरी अजड़ हो गयी । असलिअे यम, अिन्द्र आदि अधिकारी ब्रह्मदेवके पास जाकर शिकायत करने लगे — “ यह लीजिअे, हमारा त्यागपत्र ! आप अपना दिया हुआ अधिकार लौटा लीजिअे । अब हमारा कोअी काम नहीं रहा । ”

देवोंका समुदाय फिर विष्णुकी सेवामें पहुँचा । विष्णु गयासुरको सनद दे चुके थे, असलिअे अन्होंने देवोंको अेक युक्ति सुझाअी — “ गयासुरके पास जाकर असकी पवित्र देह यज्ञके लिअे माँग लो, और अस देहपर ही यज्ञ करो । ” (!)

ब्रह्मदेवको अपना अगुआ बनाकर सब देव गयासुरके पास गये । गयासुरने अुनकी आवभगत करके अुनके कुछ कहनेसे पहले ही अुनका काम करनेका वचन दे दिया । ब्रह्मदेवने कहा — “ यात्राके निमित्त मैं काफ़ी ध्रमा हूँ, लेकिन तुम्हारे शरीरसे अधिक पवित्र स्थान मैंने कहीं नहीं देखा । मुझे यज्ञ करना है । तुम अपना शरीर दो । ”

गयासुर कृत-कृत्य हो अुठा । असने ब्रह्मदेवसे कहा — “ मेरे माता-पिताके दोनों वंश आज धन्य हो गये । तुम्हींने यह देह अुत्पन्न की है, और तुम्हींने अिसे पवित्र बनाया है । असमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा यज्ञ सबके अुपकारके लिअे होगा । ‘ सर्वेषामुपकाराय यागोऽवश्यं भविष्यति ’ । ”

अैसे निर्मलभावसे प्रेरित होनेपर गयासुर देह देनेमें क्यों देर करने लगा ? वह आड़ा लेट गया । सृष्टिके रचयिता ब्रह्मदेवने यज्ञकी सामग्री और यज्ञके ऋषि वहीँके वहीँ अुत्पन्न किये । अितने अधिक ऋषि अुत्पन्न किये कि अुनकी नामावलियोंका पार न रहा ! गयासुरके शरीरपर बड़ा भारी यज्ञ हुआ । ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी गअी । यह समझकर कि गयासुर मर चुका, सवने अुठाकर असे अेक बड़े सरोवरमें डाल दिया । वहाँ वह हिलने लगा । हे भगवन् ! अब क्या करें ? विस्मित ब्रह्मदेवने चिह्नाकर धर्मराज यमसे कहा — “ तुम्हारे घरमें वह बड़ी भारी धर्मशिला पड़ी है । असे लाकर फ़ौरन अिसके सिरपर पटक दो । मेरी आज्ञा है । अब पाप-पुण्यका विचार न करो । ” (!)

यों माथेपर पत्थर रखे जानेपर भी असुर हिलने लगा । तब सब देवोंने असे अपने पैरोंसे अच्छी तरह रौंदा । तो भी असुर ठण्डा न हुआ ।

अब ब्रह्मा व्याकुल हो अुठे । विष्णु क्षीरसागरमें सो रहे थे । वे वहीं जा पहुँचे । द्वारपालने विष्णुको खबर दी । श्री विष्णुने ब्रह्माको अन्दर बुलाकर आनेका कारण पूछा । ब्रह्माने कहा — “ हमने यज्ञ किया, देवरूपिणी धर्मशिला उसके ऊपर पटक दी, रुद्र वगैरा सब देव उसपर बैठे, तो भी वह निश्चल नहीं होता । अब आप ही हमपर दया कर सकते हैं । ”

विष्णुने अपने शरीरसे मूर्ति निकालकर ब्रह्मदेवको दी । उसका बोझ काफ़ी न हुआ । आखिर क्षीरसागरसे विष्णु खुद आये और शिलापर खड़े हो गये । अुनके हाथमें पुराणप्रसिद्ध गंदा थी । विष्णुके साथ गायत्री, सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, सीता, यक्ष, गन्धर्व, अिन्द्र, बृहस्पति आदि सब देवी-देवता आकर गयासुरके शरीरपर खड़े हो गये । तब कहीं वह असुर स्थिर हुआ !

जिसने ‘सर्वेषामुपकाराय’ अपनी देह सहित सर्वस्व दे दिया था, अुसके हृदयको अिस कपटसे आघात पहुँचा । आन्तरिक वेदनाके साथ अुसने देवोंसे पूछा — “ तुमने मुझे अैसा धोखा किस लिअे दिया ? मैंने अपना निर्मल शरीर ब्रह्मदेवको यज्ञके लिअे अर्पण किया था । क्या विष्णुके वचन-मात्रसे ही मैं निश्चल न हो जाता, जो तुमने और विष्णुने अपनी गदासे मुझे अितनी पीड़ा पहुँचायी ! खैर, मुझे पीड़ा पहुँचानेका ही तुमने निश्चय कर लिया हो, तो वही सही । मेरी यही अिच्छा है कि अुससे तुम सबको सदा सन्तोष हो । ”

अूचे गयासुरो देवान् किमर्थं वंचितो ह्यहम् ?

यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरममलं मया ॥

विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ?

यत्सुरैः पीडितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा

पीड्यश्च यद्यहं देवाः प्रसन्नाः सन्तु सर्वदा ॥

देव लज्जित हुअे या नहीं, अिस सम्बन्धमें माहात्म्य चुप है । लेकिन अुन्होंने गयासुरसे कहा — “ हम तुझपर प्रसन्न हैं । वरदान माँग । ” गयासुरने यह वरदान माँगा — “ जबतक यह पृथ्वी, ये पर्वत, ये चन्द्र, सूर्य और तारे हैं, तबतक ब्रह्मा, विष्णु, महेश और दूसरे सारे देव, त्रिलोकके सारे तीर्थ, गंगादि समस्त नदियाँ, सब मेरे मस्तकपर रखी

हुआ इस शिलापर रहें, और मेरे लिये लोगोंका कल्याण करें। यहाँ जो लोग स्नान, तर्पण और श्राद्ध करें, उनकी हज़ार पीढ़ियोंका सुद्वार हो। उनके सब पाप धुल जायँ। सभी तीर्थ लोगोंके लिये कल्याणकारी हों। इससे अधिक मैं और क्या माँगूँ ? तुममेंसे एक भी देव यहाँसे कहीं न जाय ! यह वचन अवश्य निबाहना। ‘समयः प्रतिपाल्यताम्।’

देवोंने ‘तथास्तु’ कहा। दैत्य हर्षित हुआ, और सदाके लिये निश्चल हो गया।

*

*

*

इस महत्कृत्यके बाद ब्रह्मदेवने देवोंकी उपस्थितिमें वह सारी भूमि और पाँच-पाँच गाँव ब्राह्मणोंको दे दिये। उनके लिये सब प्रकारके साज-सामानसे सजे हुए घर बनवा दिये। कामधेनु दी, कल्प-वृक्ष, पारिजातक आदि वृक्ष दिये, दूधकी नदियाँ दीं, धीके तालाब दिये। शहदके कुअें दिये, दहीके सरोवर दिये, अन्नके पर्वत दिये, भक्ष्य-भोज्य फलोंकी सुविधा कर दी, और ब्राह्मणोंसे कहा — “अब तुम किसीसे कुछ न माँगना।” गदाधरको प्रणाम कर ब्रह्मदेव ब्रह्मलोकको सिधारे।

लेकिन ब्राह्मणोंसे रहा न गया। उन्होंने धन लेकर यज्ञ करना शुरू किया। यज्ञका धुआँ स्वर्गतक पहुँचा, तब ब्रह्माने आकर उनसे सब कुछ छीन लिया।

‘तुम हमेशा लोभी ही रहोगे,’ यह कहकर ब्रह्माने उन्हें शाप दिया। ब्राह्मण रोने लगे — “हमारी गुज़रबसरका कुछ प्रबन्ध कीजिये।” ब्रह्माने दयाभावसे कहा — “अब तो तुम भीख माँगोगे, तभी मिलेगा। हमेशाके लिये तुम्हारे भाग्यमें तीर्थका पौरोहित्य ही रहेगा। तुम्हारी पूजाके द्वारा ही लोग मेरी पूजा करेंगे।” ऐसे उन ब्राह्मणोंके वंशज हैं, हमारे ये गयावाले पण्डे !

*

*

*

और संकटके अवसरपर ब्रह्मदेवको जिस धर्मशिलाका स्मरण हुआ, उसका माहात्म्य क्या है, सो भी सुन लीजिये।

एक पवित्र साधुके धर्मव्रता नामकी एक कन्या थी। वह सर्व लक्षण सम्पन्ना थी। गुणोंमें लक्ष्मीसे भी बड़ी-चड़ी थी। ब्रह्मदेवके परम

तपस्वी पुत्र मरीचिसे वह न्याही गयी थी। बुढ़ापेमें एक दिन मरीचि जंगलमें फल-फूल लाने गया। वहाँसे वह थककर आया। धर्मव्रताने अपने थके हुअे पतिके पैरोंमें घीकी मालिश शुरू की। थकावट जैसे-जैसे उतरती गयी, वैसे-वैसे ऋषिको नींद आने लगी। अितनेमें वहाँ ब्रह्मदेव आ गये। अपने ससुरको देख सती अउठ खड़ी हुअी; क्योंकि वे गुरुके गुरु थे। अुन्हें पाँव धोनेके लिअे पानी देकर बहूने ससुरकी पूजा की, और एक सुन्दर विस्तर अुनके लिअे लगा दिया। अितनेमें मरीचि जागे। स्त्रीको पास न देख वे गुरुसेमें अपनी पत्नीको शाप दे बैठे — “मुझसे बिना पूछे तू मेरे पैर दबाना छोड़कर चली गयी, असलिअे जा, तू पत्थर बन जा !” सतीको सहज ही बात बुरी लगी। वह बोली — “घरमें पिताके आनेपर अुनकी सेवा-पूजा करना आपका कर्त्तव्य था। आपकी धर्म-पत्नीके नाते मैंने वह किया। असमें मेरा क्या दोष ?” मरीचि मुनिके ध्यानमें अपनी भूल आ गयी। दोनों मिलकर हरिकी शरणमें गये, और अुनसे प्रार्थना की कि हमारी रक्षा करो। अितनेमें ब्रह्मदेव भी निद्रासे जागे। सबने सतीके तपकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की; लेकिन साथ ही यह भी कहा — “तेरे पतिके शापका निवारण करनेकी शक्ति हममेंसे किसीमें नहीं है। अतः तू ऐसा कोअी दूसरा वरदान माँग ले, जिससे धर्मकी रक्षा हो।” सतीने वरदान माँगते हुअे कहा — “यदि मेरे पतिके शापका निराकरण करनेकी शक्ति आपमें नहीं है, तो मुझे यह वरदान दीजिये कि नदी, नद, सरोवर, तीर्थ, देव, ऋषि, मुनि, मुख्य-मुख्य देवता, और सभी यज्ञक्षेत्र मुझमें आकर बसैं। सारे ब्रह्माण्डकी पावनी शिला मैं बन जाऊँ। मुझे देखते ही सब लोग पातकों और अुप-पातकोंसे मुक्त हो जायँ। शिलापर जो लोग श्राद्ध करें, अुन्हें और अुनके कुलको विष्णु-लोक मिले। और जबतक यह ब्रह्माण्ड रहे, तबतक यह शिला भी रहे।” देवोंने यह वर दे दिया। परन्तु वे फिर पछताये। क्योंकि सभी लोग अुस शिलाको छू-छूकर वैकुण्ठ जाने लगे। यमराज घबराये। अुन्होंने अपना अधिकार और अपना यमदण्ड ब्रह्मदेवको सौंपते हुअे कहा — “अब मेरा कोअी काम रहा ही नहीं।” ब्रह्माने यमराजसे कहा — “अुस शिलाको अुठाकर अपने घरमें रख लो, और निश्चिन्त हो जाओ।” तब यमराज

फिरसे लोगोंका शासन करने लगे, और धर्मशिलाकी केवल कीर्ति ही रह गयी ।

गयासुरके शरीरपर यज्ञ करनेके पश्चात् भी जब गयासुर हिलता रहा, तो ब्रह्मदेवने यमराजसे यही शिला माँगी थी । उस शिलामें सारे तीर्थोंकी अवस्थिति हानेके कारण वह अत्यन्त भारी और अत्यन्त पवित्र हो गयी थी ।

*

*

*

विष्णु जिस गदाको हाथमें लेकर गयासुरकी देहपर खड़े हुअे थे, उस गदाकी भी एक कथा है । वज्रसे भी दृढ़ और मज्जबूत गद नामक असुरसे ब्रह्मदेवने उसकी हड्डियाँ माँग ली थीं, और विश्वकर्मासे उन हड्डियोंकी एक वज्रगदा बनवायी थी । यह गदा हेति नामक एक महा बलवान राक्षसको मारनेके लिये श्रीहरिको दी गयी थी । क्योंकि देवोंके अस्त्रास्त्रोंसे उसका वध नहीं हो सकेगा, ऐसा वरदान उसे स्वयं ब्रह्मदेवने ही दिया था ।

*

*

*

अैसे-अैसे पुण्य प्रसंगोंके लिये प्रसिद्ध भूमि पर —

लोकानां रक्षणार्थाय जगतां मुक्ति हेतवे ।

श्री आदि गदाधर लक्ष्मीके साथ खड़े हैं । वहाँ जो कोअी यात्राके लिये जाते हैं, उनकी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं । लेकिन शास्त्रोंमें लिखा है कि वहाँ जानेवालेको ब्रह्मचारी और संयमी रहना चाहिये; शुद्ध और संतुष्ट रहना चाहिये; दान न लेना चाहिये, अहंकारसे निवृत्त रहना चाहिये; जितेंद्रिय और दानशील होना चाहिये; तभी उसे तीर्थफल मिलेगा ।

कामं क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा यः सत्यवाक् शुचिः ।

सर्वभूतहितैस्तः स तीर्थफलमश्नुते ॥

तीर्थान्यनुसरन्धीरः पाखण्डं पूर्वतस्त्यजेत् ।

पाखण्डं तच्च विज्ञेयं यद्भवेत्कर्म कामतः ॥

धर्मव्रताको शाप देनेवाले मरीचिको महादेवने यह शाप दिया कि —
‘जा, तू दुःखी हो ।’ लेकिन उसका पश्चात्ताप देखकर उसे यह अुःशाप दिया कि ‘गयामें तेरी मुक्ति होगी ।’ मरीचिने शिलाके पास बैठकर दुःखर तप आरम्भ किया । अैसा तप बहुतेरे पश्चात्ताप-दग्ध पतियोंको नसीब

होता होगा ! महादेवके शापसे जो मरीचि काल पड़ गया था, तप द्वारा वह शुक्ल हो गया, और हरिके वरदानकी बदौलत स्वर्गलोकको गया ।

‘अतिश्री वायुपुराणे श्वेतवाराहकल्पे गयामाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।’

जां कोअी यह पुण्य गयाख्यान विचार और मननपूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा, उसे अच्छी गति मिलेगी ।

५

बोधिगया

बोधिगया कोअी ऐसा-वैसा तीर्थ नहीं है । बोधिगयाका नाम सुनते ही माथा भक्तिसे झुक जाता है । पुराने ज़मानेमें इस स्थानको ‘अरुवेला’ कहते थे । आजसे ढाअी हजार वर्ष पहले नेरंजरा नदीके तीरपर इस वनमें एक पीपलके पेड़के नीचे एक युवक बैठा था । उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया था । दोनों आँगुयें दो आलोंके समान गहरी हो गयी थीं । परन्तु उनसे दया, तप और तेजका अमृत टपकता था । छातीकी एक-एक पसली गिनी जा सकती थी । दाढ़ी, मूँछ और बाल बड़े हुअे थे । लम्बे-लम्बे नख दीर्घ अपवासके कारण सफ़ेद पड़ गये थे । बाहरसे वह युवक बिलकुल शान्त दिखायी देता था । परन्तु उसके अभ्यन्तरमें महायुद्ध चल रहा था । भारतीय युद्ध तो दिन दूबते ही बन्द हो जाता था, पर इसका युद्ध अहोरात्र चलता था । भारतीय युद्ध अठारह दिनमें समाप्त हो गया । इसका युद्ध तो अठारह दिन बाद रंग लाया । यह युद्ध किसी व्यक्तिके विरुद्ध नहीं, मनुष्यके सनातन शत्रु मार (काम)के विरुद्ध था । इस युद्धमें मनुष्य-जातिके हितके लिअे लड़नेवाला वह अेकाकी वीर दृढ़ निश्चय करके बैठा था । “मनुष्य-जातिका दुःख अब मुझसे देखा नहीं जाता । क्या मनुष्य अनन्त कालतक अिन्न तरह दुःख सहनेके लिअे ही पैदा किया गया है ? इस दुःखकी दवा कहीं न कहीं तो होनी ही चाहिये । अगर हो, तो इस जीवनकी इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है, कि यह अस औषधिकी शोधमें बिताया जाये ?

और, अगर उस औषधिका मिलना ही असम्भव हो, तो फिर इस जीनेमें ही क्या धरा है ?”

वहाँ वह नौजवान ही नहीं बैठा था, बल्कि भारतकी सनातन श्रद्धा सजीव होकर बैठी थी। नवयुवकोंके कुलगुरु, आस्तिकताके सागर, निर्भयताकी मूर्ति, भगवान् नचिकेताका वह अवतार था। अक्षय्य धाम माँगनेवाले राजपुत्र ध्रुवकी परम्पराका वह अनुयायी था; कारण उसकी निष्ठा भी अतनी ही ध्रुव थी। युवकने यह प्रण कर लिया था कि चाहे इसी आसनपर शरीर सूखकर काठ हो जाय, हाड, मांस और चमड़ी हवामें मिल जायँ, परन्तु जबतक इस भवरोगकी पीड़ाका नाशक बहुकल्प-दुर्लभ बोधि (ज्ञान) नहीं मिलेगा, तबतक यह शरीर यहाँसे टस-से-मस न होगा।

आजतक ऐसा एक भी अुदाहरण देखनेमें नहीं आया, जिसमें सत्य संकल्प विफल हुआ हो। युवककी सन्तोष हुआ। सिद्धार्थका नाम सार्थक हुआ। राजपुत्र गौतम, गौतमके बदले अब बुद्ध हो गया। उसी क्षण एक श्रद्धावान साध्वी थालीमें पायस (खीर) लेकर वहाँ आयी, और उसने वह वरान्न उस वनदेवको अर्पण किया।

यही स्थान बोधिगया है। जिस पुरातन अश्वत्थ वृक्षके नीचे भगवान् बुद्धने यह अन्तिम साधना की, उसके सामने आज एक भव्य मन्दिर खड़ा है। बगलमें चक्रमण*का स्थान है। आसपास प्राचीन ऋषियोंके समान बड़े-बड़े वृक्ष हैं। अिन वृक्षोंने कितनी ऋतुओं सही होंगी, कितने प्राणियोंकी सहायता की होगी, और कितने साधकोंकी श्रद्धा-भक्तिके ये साक्षी रहे होंगे !

हम पहले एक पेड़के नीचे बैठे। कुओंसे पानी निकालकर हाथ-पैर धोये। पानी पिया। फिर प्रसन्न अन्तःकरणसे मन्दिरमें दर्शन करने गये। मन्दिरके भीतर बुद्ध भगवान्की भव्य मूर्ति थी। उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर हम मन्दिरपर चढ़े और गुम्बदके आस-पास घूमे। कारीगरीमें भव्यता है, लेकिन मार्दव या नवीनता नहीं। नीचे अुतरकर मन्दिरकी

* चक्रमण=धर्मचिन्तन करते हुए चक्कर लगाना।

परिक्रमा की। ज्यों ज्यों मैं परिक्रमा करता था, त्यों त्यों मेरा भाव बदलता था। सारा जीवन दृष्टिके सामने खड़ा हो गया। और तुरन्त दृष्टि शून्य हो गई। पानीमें तैरनेवाला तैराक डुबकी लगाकर जब गहरा और गहरा पैठता जाता है, तब जिस प्रकार निर्भय होते हुअे भी वह भयभीत-सा हो जाता है, कुछ वैसी ही इस क्षण मेरी स्थिति हुई। जीवनके पृष्ठभाग (सतह) पर तो मैंने खूब विचरण किया था। खूब तैरा था। परन्तु इस बार मैं गहरा-भीमें अतुरा। ऐसी स्थिति पहले अक ही बार ध्यानमें हुई थी। परन्तु इसकी तुलनामें वह स्पर्शमात्र थी। मेरी परिक्रमायें पूरी होनेपर मैं पिछवाड़ेके अश्वत्थको वन्दन करने गया। घरका त्यागकर मैं हिमालयकी ओर जा रहा था। भविष्य मेरे सामने अज्ञात था। मैंने अपनी नावकी सारी रस्सियाँ काट डाली थीं। सारी पतवारें चढ़ा दी थीं। मेरी नौका फिरसे अपने पुराने बन्दरगाहमें लौटेगी, यह धारणा उस समय नहीं थी। उस समयकी मनोवृत्तिका वर्णन कैसे हो सकता है? मैं बाहरसे शान्त था। लेकिन भीतर मनोज्वालामुखी धधक रहा था। मुझे यह भान था कि मैं कोअी त्याग कर रहा हूँ। मैं जानता था कि यह भान आध्यात्मिक अन्नक्तिमें बाधक होता है। परन्तु फिर भी, वह मिटता नहीं था। अतनेमें अन्दरसे अक आवाज़ आअी— “त्याग करना सहज है। लेकिन किये हुअे त्यागके योग्य बननेमें ही पुरुषार्थ है।” अहंकारके लिअे अतनी फटकार बस थी। मैं अुठा और पासवाले तालाबके किनारे जा बैठा।

तालाबमें असंख्य कमल खिले थे। लेकिन अउनकी तरफ़ मेरा चित्त—हमेशाका कला-रसिक चित्त—आकर्षित नहीं हुआ। वहाँसे अुठकर पासकी अक गढ़ी को देखने चल गया। उसमें कअी साधु रहते थे। वह किसी महन्तके अखाड़े-जैसी दीख पड़ी। लेकिन उसके विषयमें पूछ-ताछ करनेका मन न हुआ। मैं खूब घूमा, हिमालयमें रहकर साधना की, और समाधान प्राप्त किया; परन्तु बोधिगयाका उस दिनका अनुभव कुछ और ही था।

बेलुड़ मठ

बोधिगयासे हम बंगालको चले । बंगालमें हम पहले-पहल जा रहे थे । रेलमें रात बिताकर सबेरे जागते ही 'सुजला सुफला मलयज-शीतला' बंगभूमिका दर्शन हुआ । बंगाल, यानी छोटे-बड़े तालाबोंकी भूमि । वहाँके लोग अन्हें पुकुर कहते हैं । पुकुर यानी पुष्कर । बंगालका मेरा प्रथम परिचय बहुत आनन्ददायक सिद्ध न हुआ । रातको सोते समय दिलमें यही विचार आते थे कि रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी बंगभूमि देखनेका मौका मिलेगा । विपिन पाल और अरविन्द घोषकी पुण्यभूमिके दर्शन होंगे । खुदीराम बोस और कन्हैयालाल दत्तका 'बांगाल' में सबेरे उठकर देखूँगा । 'आनन्द मठ' और 'देवी चौधरानी' में वर्णित भूमिका साक्षात्कार होगा ।

अस तरहके मधुर विचारोंमें डूबा हुआ मैं सो गया । बैसाखका महीना था, असलिअे बाबाजीने अपने कपड़े अतारकर डिब्बेके अूपर टाँग दिये, और वे भी सो गये । सबेरे अठकर देखते हैं, तो कपड़े गायब ! बंगालके दारिद्र्यपर दया आअी । दिलमें यह विचार आया कि कपड़े ले जानेवाले व्यक्तिको मैं अुसी वक्त देख पाता, तो अपने कपड़े भी अतारकर अुसे दे देता । मैंने कलकत्ते जाकर कपड़े अुतारे और हरिद्वार पहुँचकर वहाँके रामकृष्ण सेवाश्रमको अपने सारे कपड़े दे डाले; लेकिन अुसका कारण दूसरा था ।

ट्रेन लिलुआ स्टेशनपर ठहरी । हम अुतरे । वहाँ जाकर हमने विवेकानन्दके बेलुड़ मठकी पूछ-ताछ की । लेकिन किसीको बेलुड़ मठका पता न था । चारों खण्डोंमें विख्यात विवेकानन्दके मठका पता लिलुआ स्टेशनपर कोअी भी न जानता था ! कितने अफ़सोसकी बात है ? भटकते-भटकते हम बेलुड़ गाँवमें जा पहुँचे । वहाँ अेक वृद्ध 'भद्र पुरुष' मिले । अुन्होंने सज्जनतापूर्वक कहा — "चलिअे, मैं आपको बेलुड़ मठतक पहुँचा दूँ ।" सबेरेसे अबतक मिले जवाबोंके बाद मैंने किसीसे अितनी

सज्जनताकी आशा नहीं की थी। हम उनके पीछे-पीछे चले। लेकिन बाहरे दुर्दैव ! वृद्ध महाशयका वेग चींटीके वेगसे अधिक बढ़ता ही न था। समय नष्ट होनेके दुःखकी अपेक्षा हमारे लिये इस वृद्ध मनुष्यको अितनी तकलीफ़ अठानी पड़ रही है, इसीका मुझे ज्यादा दुःख हुआ। मैंने कहा — “महाशय, मैं अपना रास्ता खोज लूँगा। आपको तकलीफ़ नहीं देना चाहता।” उन्होंने कहा — “नहीं, नहीं; मुझे भी मठमें ही जाना है।” फिर क्या था ? अब तो हमें भी चींटीकी चालसे रेंगनेके सिवा चारा ही न था।

बेलुङ मठमें रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी समाधियाँ हैं। मठ ठीक गंगानदीके तटपर है। एक छोरपर दीपस्तम्भकी तरह लाल दीया भी है। हमने जाकर मठपति स्वामी प्रेमानन्दजीको प्रणाम किया। ‘आओ बैठो’, कहकर वे अपने काममें मशगूल हो गये। अितनेमें एक दो ब्रह्मचारी हमारे पास आये। उनमेंसे एकने मुझे पूछा — “आप वापस कब जायेंगे ? यहाँ कितने दिन रहना चाहते हैं ?” मैं कबूल करता हूँ कि इस प्रकारके स्वागतके लिये मैं तैयार न था। मुझे अँसा मालूम हुआ मानो मैं एक अनचाहा पाहुना हूँ ! मैंने कहा — “भाजी, मैं तो कल ही जानेवाला हूँ।” अितना अभयदान देनेके बाद मैं समझा कि अब बात करनेमें हर्ज़ नहीं है। एक सज्जनसे मैंने पूछा — “स्वामी विवेकानन्दकी समाधि कहाँ है ?” उन्होंने कहा — “समाधि अभी बन रही है। स्वामीजी महाराजकी संगमरमरकी मूर्ति तैयार है, जो अभी समाधिके कमरेमें रक्खी है। वह मैं आपको दिखा सकता हूँ।”

मैं काशी और गयाकी त्रिस्थलीकी यात्रा करके आया था। किन्तु जिनके धर्मग्रंथोंके कारण मुझमें फिरसे धर्मश्रद्धा स्थापित हुअी, उन स्वामी विवेकानन्दकी समाधिका दर्शन मेरी दृष्टिमें एक महायात्रा थी। पग-पगपर मेरे हृदयमें श्रद्धा और भक्तिकी अुमंगें अुठने लगीं। बस, चालीस-पचास कदम चलनेके बाद ही मेरे वपोंके चिरसंचित मनोरथ पूर्ण होंगे, यात्राका सुफल मिलेगा, संशयवादकी सुषुप्तिमें गाफ़िल पड़े हुअे भारतवर्षको अमेरिकाकी सर्वधर्मपरिषद्के व्यासपीठपरसे जगानेवाले स्वामी विवेकानन्दके, प्रस्तर मूर्तिके रूपमें ही क्यों न हों, दर्शन होंगे, यह मेरे अधीर और व्याकुल

हृदयके लिये कम महत्वकी बात न थी। हम समाधिवाले कमरेमें पहुँचे। मैंने अत्यन्त भक्तिभावसे साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, और एक क्षणके लिये बेसुधा-सा हो गया।

मैं वापस लौटा। नदीके घाट पर नहाया। घाटके पास पानीकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ एक क़तारमें रखी हुई थीं। उस तरफ़ ध्यान जानेपर मैंने वहाँके एक ब्रह्मचारीसे उनका प्रयोजन पूछा। उन्होंने कहा — “गंगा यहाँ समुद्रसे बहुत दूर नहीं है; इसलिये जब समुद्रमें ज्वार आता है, तब नदीका पानी खारा हो जाता है। और जब भाटा आता है, तो पानी मीठा रहता है। इस कारण भाटेके वक़्त हम पीनेका पानी इन कोठियोंमें भरकर रखते हैं।”

नहा-धोकर मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ अपूरकी मंज़िलमें रामकृष्ण परमहंसकी अस्थियाँ तँबेके एक डिब्बेमें रखी हुई हैं, और उस डिब्बे-पर रामकृष्ण परमहंसका एक छोटा-सा फोटो रख दिया गया है। उसकी पूजा होती है। पीछेकी तरफ़ ध्यानके लिये छोटी-सी कोठरी है। यह व्यवस्था मुझे खूब पसन्द आयी। ध्यानकी कोठरीमें हमेशा शान्ति रहती है। चाहे जितने लोग ध्यान करें, तो भी एकके कारण दूसरेके ध्यानमें बाधा नहीं पड़ती। लोग बिना आवाज़ किये अन्दर आकर बैठते हैं; और उसी तरह चुपचाप बाहर चले जाते हैं।

आम तौरपर बंगाली इस बातका खास ध्यान रखते हैं कि सभामें उनके आने-जानेसे दूसरोंको तकलीफ़ न हो। अगर बहुतसे लोग बैठे हों, और उनके बीचसे जाना पड़े, तो नीचे झुककर, जिस दिशामें जाना है, उसकी सूचनाके लिये हाथ बढ़ाये, हरएकसे माफ़ी चाहनेका-सा भाव धारण किये, मनुष्य उस भीड़मेंसे निकलकर जाता है।

ध्यान-मन्दिरमें बैठकर हमने ध्यान किया। परमहंसकी समाधिके सामने बैठकर गीता और उपनिषदोंका पाठ किया। मैंने देखा कि मेरे इस स्वाध्याय और संस्कृतके शुद्ध उच्चारणके कारण वहाँके ब्रह्मचारियोंमें मेरी प्रतिष्ठा कुछ बढ़ी।

मन्दिरसे वापस मठमें गये। वहाँ दुतल्लेपर स्वामीजी महाराजका कमरा था। इस कमरेकी जो स्थिति स्वामी विवेकानन्दके वक़्त थी,

वही ज्यों की त्यों आजतक क्रायम रखी गयी है। स्वामीजी महाराजके सोनेकी गद्दी, उनका साफ़ा, 'अलखल्ला' (अँगारखेकी-सी कफ़नी) और कनटोपी तथा उनका बड़ा भारी कमण्डलु, हुक्का वगैरा सारी चीज़ें बड़े जतनसे अकेल रखी गयी हैं। मेरे-जैसे प्रेक्षकोंको कमरेके अन्दर जानेकी अिजाज़त नहीं मिल सकती। दरवाज़ेमें ही आड़ा 'खटका' लगा हुआ था; वहाँसे मैंने झाँक-पाँककर देखा और हम लौटे। जब अेक अज्ञात भिखारीकी तरह वे सारे देशमें घूम-घूमकर हिन्दूधर्म और हिन्दू समाजकी आधुनिक स्थितिका निरीक्षण करते थे, उस वक़्त उनके साथ जो बड़ा कमण्डलु भी घूमता था, उसीने मेरा ध्यान अधिक खींचा। मैं विचार करने लगा कि इस कमण्डलुके पेटमें कितने क्रीमती अनुभव समाये हुअे होंगे ?

दोपहरमें भोजनका समय हुआ। मैं जानता था कि बंगाली लोग मछली खाते हैं। इसलिये मैंने मठपतिको खास तौरसे सूचित कर दिया कि मैं शाकाहारी हूँ। उन्होंने कहा — “तुम डरो मत। तुम्हें यहाँ शाकाहार ही मिलेगा।” हम भोजन करने बैठे। बंगाली भोजन चखनेका यह मेरा पहला ही मौक़ा था। बंगालियोंका मुख्य आहार भात और शाक ही है। खाते समय शाक अितने प्रकारके और अितने विपुल देखे कि मेरे मनमें सहज ही यह शंका अुठी कि शाकके लिये भात है या भातके लिये शाक ! अेक वर्षसे मैंने मिर्च-मसाले छोड़ दिये थे, और यहाँ तो शाकमें मिर्चका अुपयोग अुदारतासे किया गया था। हरअेक निवालेके साथ मुझे पानी पीना पड़ता था। अितनेमें मैंने देखा कि मेरी पत्तलपर, यानी केलके पत्तेपर, धीके जैसा कुछ जमा है। मैं समझा, अब मिर्चकी दवा मिल गयी। परन्तु दुर्भाग्यसे वह भी भूने हुअे आलुओंका कचूर निकला, जिसमें हरी मिर्चें पड़ी थीं।

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ।

भोजनके बाद मैं बगीचेमें हाथ धोने लगा। मैंने सोचा, हाथ धोनेका पानी चाहे जहाँ डाल देनेके बदले फलवाले पेड़ोंको मिले, तो अच्छा हो। ज्योंही मैंने हाथ धोना शुरू किया, दो तीन ब्रह्मचारियोंने हाहाकार मचा दिया। वे मुझे अंग्रेज़ीमें ठीक-ठीक समझा न सकते थे, और

मैं उनकी बँगला समझ नहीं सकता था। निदान मुझे यह पता चला कि इस पेड़के फूल ठाकुरजीको चढ़ाये जाते हैं, इसलिये उन्हें जूठा पानी नहीं देना चाहिये।

मैं अनजान आदमी था, और मेरा यह पहला ही अपराध था, इसलिये एक भाजीने मुझे क्षमा कर देनेका प्रस्ताव पेश किया। और, मैंने देखा कि उनमेंसे कुछने तो आदरतासे, और दूसरोंने सज़ा करनेका कोअी उपाय न सूझनेके कारण प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दक्षिणी स्वच्छताका मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया। सच ही तो है कि पूजाके फूलके पौधोंको जूठा पानी कैसे दिया जा सकता है? कर्नाटकमें लिंगायत लोग अपनी जातिके लोगोंके हाथोंका ही पानी पीते हैं। यही नहीं, बल्कि चुस्त लिंगायत जिस गायका दूध पीता है, उस गायके लिंघे घास और पानी भी लिंगायतका ही लाया हुआ होना चाहिये ! शास्त्रमें लिखा जो है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः !

दोपहरमें ब्रह्मचारियोंको फुरसत थी। इसलिये उनके साथ बातचीत करनेमें समय बिताया। ब्रह्मचारियोंमें एक मुसलमान था। वह भी कालिकाका उपासक बन गया था, और परमहंसके उपदेशका अनुवाद करनेमें समय व्यतीत करता था। उसने मुझसे पूछा — ‘तुमने गुरुमहाराजका उपदेश पढ़ा है?’ मैंने कहा — ‘जी हाँ।’ मेरी परीक्षा लेनेके लिंघे उसने एक सवाल पूछा — ‘बतलाओ, कालीका वर्ण श्याम क्यों है?’ मैंने कहा — ‘श्यामवर्ण आकाशका है, आकाश अनन्त है, काली भी अनन्त है, इसलिये काली भी श्याम है।’ उसने कहा — ‘ठीक।’ चूँकि मैं पास हुआ था, इसलिये उनके वाद-विवादमें शरीक होनेके लायक माना गया। उनसे प्रतिप्रश्न पूछनेकी मुझे अच्छा हुआ। मैंने कहा — ‘स्वामी विवेकानन्दकी ‘काली द मदर’ (काली माता) नामक कविताका रहस्य मुझे समझाअिये।’ उन्होंने कहा — ‘चलो, स्वामी प्रज्ञानन्दके पास चले; वे समझायेंगे।’ मेरी बाज़ी थिगड़ गयी। देरतक परिहास करनेकी मेरी वृत्ति नहीं थी। परन्तु स्वामी प्रज्ञानन्दके पास जानेपर मुझे गम्भीर मुँह बनाकर जिज्ञासु

बनना ही पड़ा। उन्होंने मुझे कहा — ‘तुम खुद उस कविताका क्या रहस्य समझे हो?’ मैंने संक्षेपमें कह दिया। उन्होंने कहा — ‘ठीक है।’ अिस तरह मैंने छुटकारा पाया।

ये स्वामी प्रज्ञानन्द जानने योग्य व्यक्ति थे। उनका असली नाम था, देवव्रत बोस। वे एक प्रसिद्ध ब्राह्मो थे। उनके मित्रोंमें उनकी बहुत ख्याति थी। वे अलीपुर-ब्रमकेसमें पकड़े गये थे, परन्तु अन्तमें छोड़ दिये गये। उनका मुकद्दमा कभी दिनोंतक चलता रहा। अुतने समयके लिये उन्हें जेलमें रहना पड़ा था। कभी लोगोंको जेल ही में पहली बार अेकान्त मिलता है, और वहाँ आत्म-परीक्षण करके वे अपने जीवनका सारा प्रवाह ही बदल डालते हैं। देवव्रत बोसके साथ ऐसा ही हुआ। वे ब्राह्मोसे वेदान्ती हो गये, और संन्यासकी दीक्षा लेकर प्रज्ञानन्द बन गये। बेलुङ मठमें आनेके बाद उन्होंने ‘अुद्बोधन’ नामक बंगाला मासिक पत्रिकामें ‘भारतेर साधना’ शीर्षक अेक सुन्दर लेखमाला लिखी थी, जिसमें अिस बातकी बहुत सुन्दर चर्चा की गयी थी कि हिन्दुस्तानके लिये अीश्वरने कौनसा काम नियोजित किया है। कुछ दिनों बाद ये स्वामी हिमालयमें मायावती मठके मठपति थे, और ‘प्रबुद्ध भारत’ मासिक पत्रिकाका संचालन करते थे। कुछ वर्षोंतक यह काम करनेके बाद वे समाधिस्थ हुअे।

मुझे ‘गॉस्पेल ऑव् श्री रामकृष्ण’ (श्रीरामकृष्ण-कथामृत)के लेखक श्री ‘अेम्’से मिलना था। और हो सके तो रामकृष्ण परमहंसकी धर्मपत्नी और शिष्या श्री शारदा माताका भी दर्शन करना था। ‘अेम्’को यहाँ सब लोग मास्टर महाशय कहते थे। मैंने मठपति स्वामी प्रेमानन्दकी अिजाजत ली। उन्होंने मेरे साथ अेक ब्रह्मचारी दिया। हम अेक छोटेसे ङोंगेमें बैठकर उस पार गये, और वहाँसे अेक छोटी अगनबोटमें बैठकर कलकत्ते पहुँचे। रास्तेमें ब्रह्मचारीसे खूब बातचीत हुअी। वे बहुत मिलन-सार थे। बंगालके अनेक युवकोंकी तरह वे भी पहले आतंकवादी पक्षमें थे। बादमें धार्मिक वृत्ति बढ़नेपर राजनीतिमें रुचि कम होती गयी, और वे रामकृष्ण मिशनमें शामिल हुअे। मैंने उनसे पूछा — ‘आपका आदर्श क्या है?’ उन्होंने जवाब दिया — ‘हमें जो दीक्षा मिली है, वह यह

है कि 'आत्मनो हिताय' और 'जगतः सुखाय' जीवन बिताना चाहिये। स्वामी महाराजने मठके ब्रह्मचारियोंको यह उपदेश दिया है कि तुम्हारी ज़िन्दगी सिपाहीके समान कठिन होनी चाहिये। तुम्हारी बुद्धि अितनी तीव्र और तेजस्वी होनी चाहिये कि तुम तत्त्वज्ञानके कूट-से-कूट प्रश्नोंकी चर्चा कर सको। तुममें अितनी सादगी होनी चाहिये कि दिनभर खेतमें काम करके शामको शाकभाजी लेकर तुम बाज़ारमें बेच सको। तुममें परिश्रमशीलता और व्यवहार-कुशलता होनी चाहिये।' अिस ब्रह्मचारीने दो ही दिनमें खूब ममता दिखायी। बंगाली भावनाप्रधान होते हैं, अिस कथनकी जो कल्पना अिस ब्रह्मचारीने मुझे दी, उसे मैं भुला नहीं सकता।

हम मास्टर महाशय — महेन्द्रनाथ गुप्त — के मकानपर पहुँचे। वे पूजामें बैठे थे, अिसलिअे ज़रा अिन्तज़ार करना पड़ा। मैं राह जोहता बैठा था, अितनेमें अुनकी भव्य मूर्ति बाहर आयी। वे श्वेत वस्त्र धारण किये हुआे थे। लम्बी दाढ़ी छातीको सुशोभित कर रही थी। गम्भीरता और नम्रता अुनकी मुखाकृतिकी विशेषता थी। वे ज़मीनपर ही बैठे। मेरे मित्र गुणाजीने 'गॉस्पेल ऑव् श्री रामकृष्ण'का भाषान्तर मराठीमें किया था। अुसमें मेरा हाथ था। अिसलिअे अुसीके विषयमें बातें शुरू हुआँ। मेरा परिचय पानेके बाद सन्तोष दर्शाते हुआे अुन्होंने कहा — 'तो गॉस्पेलका भाषान्तर करनेवाले शुष्क पंडित ही नहीं, साधु भी हैं।'

मास्टर महाशयके साथ अधिक बातचीत नहीं हुआी। हम 'अुद्-बोधन' कार्यालयमें श्री श्रीमाका दर्शन करने गये। श्री श्रीमासे मतलब है, श्री शारदा मातासे। कार्यालयमें दरवाज़ेके सामने ही अेक कमरा था। अुसमें स्वामी शारदानन्द बैठे थे। स्वामी शारदानन्द सारे रामकृष्ण मिशनके सञ्चालक हैं। सारी दुनियामें जहाँ-जहाँ रामकृष्ण मिशनकी संस्थायें चलती हैं, अुन सबपर अुनकी देखभाल है। अिसलिअे अुनके अूपर कर्मका भारी बोझ है। वे अपने आसनपर पाँव पसारे बैठे रहते हैं, और सारे दिन काम करते हैं। अुनके शरीरपर कोअी वस्त्र न था, और पेट बहुत ही बड़ा था। हमेशा अेक ही जगह बैठकर काम करने और सदा बंगाली आहारके सेवक़ा यह अेक परिणाम था। 'साधु चलता भला,' अिस कहावतका रहस्य यहाँ मैंने अेक नये अर्थमें समझा।

‘नमो नारायण’ कहकर मैंने अन्हें वन्दन किया। ‘नारायण’ कहकर अन्होंने आशीर्वाद दिया। यह हमारी पुरातन प्रथा है। संन्यासीको अन्हिं शब्दोंमें वन्दन किया जाता है। वन्दन करके हम भीतर गये। थोड़ी देर अन्तर्जार करनेपर दर्शनकी आज्ञा मिली। रामकृष्ण परमहंसके अनुयायी शारदामाताको दुर्गाका अवतार मानते हैं। वे महस्वका कोअी भी कार्य अुनसे पृष्ठे बिना नहीं करते। मैंने शारदामाताका दर्शन अत्यन्त भक्तिपूर्वक किया। पतिको ही गुरु मानकर अीश्वरके समान आजीवन अुनकी शुद्ध सेवा करनेवाली और अुनके समाधिस्थ होनेपर चौबीसों घण्टे रामकृष्ण परमहंसके ध्यान-पूजनमें जीवन व्यतीत करनेवाली अस तपरिवनी, ब्रह्मचारिणी, और आदर्श पत्नीका दर्शन मैं अपने जीवनका अेक अद्वितीय अहोभाग्य मानता हूँ। मैंने साष्टांग प्रणाम किया। दोनोंके लिये सामान्य भाषाके अभावमें बातचीत होना तो संभव न था। मैंने भक्ति और आर्जवपूर्वक अुनके चरणोंपर दृष्टिपात किया। अुन्होंने मातृवात्सल्यसे आशीर्वाद दिया, और हम लौटे।

दूसरे दिन वैशाखी पूर्णिमा थी। मठमें बोधि-अुत्सव था, और गंगा नदीके तटपर ‘खरडह’ नामक अेक गाँवमें चैतन्यका अुत्सव था। अुसमें अुपस्थित होनेके लिये मठको निमंत्रण था। स्वामी प्रेमानन्दने अुस निमंत्रणमें मुझे भी शामिल कर लिया। दूसरे दिन हम वहाँ गये।

भक्तिके धाममें

‘खरडह’का नाम बंगालके धार्मिक इतिहासमें प्रसिद्ध है। गौरांग प्रभु श्री चैतन्यके कृपा-प्रसादसे नेड़ानेड़ी लोग अिसी स्थानमें शुद्ध हुअे थे। ये नेड़ानेड़ी लोग असलमें कौन थे, वे अशुद्ध क्यों माने गये, यह कौन कह सकता है? कोअी मानते हैं कि वे मुसलमान थे, और कोअी कहते हैं कि मलिक काफूरने जिन बौद्ध लोगोंका नाश किया था, उनमेंसे बचे हुअे ये लोग थे। मुसाफिर इतिहास और दन्तकथायें सुनते हैं, लेकिन वे उनकी चर्चा करते नहीं बैठते। हाँ, फुरसत मिलनेपर वे कल्पना-तरंगसे काम ले सकते हैं। जिस वक्त्र नेड़ानेड़ी लोग शुद्ध किये गये थे, उस वक्त्र उन्हें पता न था कि वे कौन हैं। उन्हें अिसका भान न था कि वे क्यों बहिष्कृत किये गये थे? वे अितना ही जानते थे कि समाजको उनका सहवास प्रिय नहीं है। यदि वे तिरस्कारका कारण जानते, तो समयपर सुधरनेका प्रयत्न भी करते। जो उनका तिरस्कार करते थे, उन्हें भी तिरस्कारके कारणका पता कहाँ था? परम्परा चली आअी है, अिस लिअे तिरस्कार करना चाहिअे। यदि न करेंगे, तो अधर्म होगा। हमारे ऋषि-मुनियोंने यह सारी परिपाटी बना दी है। वे सर्वज्ञ थे। हम अल्पज्ञ हैं, और अल्पज्ञ ही रहनेवाले हैं। कारणकी छान-बीन करनेमें धृष्टता है, नास्तिकता है, अिसलिअे जो चलता आया है, वही चलाना चाहिअे। यह वृत्ति समाजकी है। और नेड़ानेड़ी लोग? वे तो यही मानते थे कि अीश्वरने उन्हें अस्पृश्य ही अुत्पन्न किया है। हमारे पूर्वकर्म बुरे होंगे, अिसलिअे हम अिस जातिमें जन्मे हैं। अुच्च वर्णोंने पुण्य किया है, अिसलिअे उन्हें हमारा तिरस्कार करनेका, तुच्छ समझकर हमें गालियाँ देनेका, अधिकार है।

दोनोंको यह सन्तोष था कि अिस स्थितिमें कोअी अन्याय नहीं है। अिसी समय बंगालमें चैतन्य महाप्रभुकी भक्ति जाग्रत हुअी। उन्हें यह स्थिति अच्छी न लगी। भक्तिने नेड़ानेड़ी लोगोंसे कहा—‘परमात्माके

यहाँ नमीवका राज नहीं है। ओश्वरका नाम लो। तुम पवित्र हो। नेझनेड़ी पावन हुआ और वैष्णव बन गये।

यह शुद्धि बिना विरोधके तो होने नहीं पाओ होगी। सनातनधर्मक अभिमान धारण करनेवाले धर्म-संरक्षकोंने इस अधर्मको रोकनेकी चेष्ट करनेमें कुछ भी झुठा न रक्खा होगा। लेकिन उनके नाम भी अब हम नहीं जानते। सनातन हिन्दूधर्ममें अपने अन्धभक्तोंके शिकंजोंसे बचनेक शक्ति है, इसीलिसे वह आजतक जीवित रह सका है।

नावमें बैठकर नदीके प्रवाहमें यात्रा करनेके समान काव्यका अनुभव और शायद ही कहीं होता है। हम दोपहरको भोजनके बाद खाना हुआ और कांओ तीन बजे खरडह पहुँचे। वैशाख पूर्णिमाका दिन था, इस लिसे कड़ी धूप पड़ रही थी। परन्तु गंगामैयाके शीतल स्रोतपरसे बहनेवाले हवा धूपकी सखतीको भी कुछ नरम किये डालती थी। अँटि ओ चूनेके बने हुआ इस तरफके घाट दर्शनीय होते हैं। देहातकी स्त्रिय जब पानी भरने आती हैं, तो उन्हें देखकर दया अमड़े बिना नहीं रहती। उनकी साड़ी बहुत ओछी और इसीलिसे तंग होती है। मालू होता है, उन्हें साड़ी पहनकर अधर-अधर घूमने-फिरनेमें बड़ी अमुविध होती होगी। लेकिन उनके मुँहपर दुःखका ज़रा-सा भी चिह्न दिखाओ नहीं देता। खरडहमें मुख्य मन्दिरके प्रांगणमें कओ लोग भजन कर रहे थे। झाँझ, मजीरे, करताल, मृदंग, आदि वाद्य बज रहे थे। और हरअक भक्त भक्तिरसमें अितना मतवाला हो गया था, मानो हरअकको काँअ ज़बरदस्त भूत लग गया हो !

महाराष्ट्रमें पंढरपुरमें मैंने लोगोंको भजनमत्त होते देखा है। लेकिन उसमें कुछ सौम्यता होती है। यहाँ तो ऐसा दीख पड़ता था, मानो लोग भक्तिकी मस्तीमें अक-दूसरेसे प्रतिस्पर्धा कर रहे हों। अनेक वाद्योंके स्वर सम्मिलनसे और बेहोशीके-से हावभाव व्यक्त करनेसे अक तरहका भक्तिरस तो अवश्य पैदा होता है, परन्तु मुझे नहीं लगता कि उससे स्वाभाविक भक्तिको पुष्टि मिलती होगी। उसे तो अक तरहका नशा ही समझना चाहिये।

असके बाद हम बेलुङ मठके संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंको निमंत्रित करनेवाले अपने मेज़वानके पास गये। उन्होंने फलाहारका आग्रह किया

मैं शकर नहीं खाता था, और दिनमें अेक बार ही अन्न ग्रहण करनेका मेरा नियम था, असलिये मैंने लाल तरबूज खाना ही पसन्द किया । खानेके आग्रहकी तो कोअी कमी नहीं थी । जब हमारे साथके संन्यासी अधिक लेनेसे अनकार करते, तो हमारे मेज़बान कहते — ‘अगर आपको न भाये, तो थालीमें रहने दीजिये । हमें अुतना ज़यादा प्रसाद मिलेगा ।’ मैंने शिष्टाचारका विचार छोड़कर कहा — ‘मेरे विचारमें दूसरेका अुच्छिष्ट खानेमें धर्मकी हानि है । मैं स्वीकार करता हूँ कि अुच्छिष्ट खानेमें प्रेमकी अेकता है, परन्तु न खानेमें धार्मिक संयम है ।’ जिस समय मैं यह आलोचना कर रहा था, अुसी समय बायें हाथमें प्याला लेकर पानी भी पी रहा था । यह देख अेक बंगाली युवकने कहा — ‘यह क्या ? आप बायें हाथसे पानी पीते हैं ?’ मैंने जवाब दिया — ‘दाहिना हाथ जूठा है । जूटे हाथसे बरतन क्यों बिगाड़ा जाय ?’ वह हँसा । अुसके हँसनेमें तिरस्कार था । वह सोच रहा था कि अस जंगली मनुष्यको शिष्टाचारका बोध कैसे हो ? दाहिने-बायें हाथका भेद यह क्योंकर समझे ? बायाँ हाथ तो सबेरे शरीर शुद्धिके लिये काममें लाया जाता है; अुस हाथसे पानी कैसे पिया जाय ? मैं सोचता था कि जब दोनों हाथोंसे आटा गूँधना पड़ता है, तब अन लोगोंकी बायें हाथकी घृणा कहाँ हवा हो जाती है ?

हिन्दुस्तानमें स्वच्छता, पवित्रता, लज्जा, सिद्ध और निषिद्ध, स्वच्छ और अुच्छिष्ट, आदिके विषयमें हरअेक जगहकी कल्पना निश्चित हो गयी है । परन्तु दो प्रान्त अथवा दो जातियोंकी कल्पनामें कोअी मेल नहीं है । काश्मीरमें हाथको जूठा होनेसे बचानेके लिये कुरतेकी लम्बी आस्तीनमें रोटी पकड़कर खानेवाले लोग मुझे बूट पहनते समय हाथका अुपयोग करते देख हँसते थे, और खुद कसाओकी दुकानसे फल खरीदकर बिना धोये खा लेते थे ! अगर हमारे देशके धर्मध्वजी लोग दूसरे प्रान्तोंमें जाकर दो-दो महीने वहाँवालोंका आतिथ्य स्वीकारनेका व्रत लें, तो मैं समझता हूँ कि हमारी धर्म-विषयक कल्पनायें बहुत-कुछ सुधर जायँ ।

फलाहारके बाद संगीत शुरू हुआ । मैंने रविबाबूका ‘अयि भुवन मनमोहिनी’ सुनानेका अनुरोध किया । वहाँ बहुतसे नवयुवक अेकत्र हुअे थे, लेकिन अुनमें कोअी ‘मनमोहिनी’ गानेको तैयार न दीख पड़ा । अेकने

कहा — ‘हम यहाँ सिर्फ धार्मिक गीत गाते हैं।’ आखिर दूसरे अेक नवयुवकने आतिथ्यधर्म निवाहनेके लिये ‘मनमोहिनी’ गाकर सुनाया, और सबने उसे सहन किया। मुझे शंका है कि युवकोंके उस समुदायमें कभी क्रान्तिवादी भी अवश्य रहे होंगे। अेकने मुझसे पूछा — ‘बंगालियोंके स्वास्थ्यके विषयमें आपकी क्या राय है?’ मैंने कहा — ‘आम तौरपर वे निर्बल दीख पड़ते हैं।’ वह मेरे शरीरपर दृष्टि डालकर तिरस्कारसे हँसा। मैं समझ गया, और मैंने जवाब दिया — ‘आप मुझे महाराष्ट्रका प्रतिनिधि तो नहीं न समझते हैं?’ हम दोनों हँस पड़े। उसने कहा — ‘हमें अपनी खुराकमें फेरफार करना चाहिये। गेहूँके बिना शक्ति न बढ़ेगी।’

बंगालका ग्रामीणजीवन सादा और सुन्दर है। बंगाली झोंपड़ियोंके छप्पर सुडौल और सुन्दर होते हैं। उनकी दीवारें अुम्दा मिट्टीसे पुती होती हैं। जहाँ जाअिये, गायन-वादन सुनायी देता है। लेकिन मेरा यह खयाल है कि जातिभेदकी सख्तीके कारण गाँवमें अेकताका विकास सुचारु रूपसे नहीं हो सकता। खरडह-जैसे छोटेसे देहातमें भी बड़े-बड़े पण्डित रहते हैं, और बिना प्रतिष्ठाकी अिच्छा किये विद्याकी अुपासना करते हैं।

लौटते समय सूर्यास्त होनेको था। अब नदीके प्रवाहके साथ जाना था। हम नदीके प्रवाहमें बहने लगे। हमारे साथके ब्रह्मचारी रामप्रसादके भजन गा रहे थे।

रामकी राजधानी

मेरे साथ मरठेकर बाबा थे। वे रामदासी सम्प्रदायके थे। जबसे शंकराचार्यने संन्यासियोंके दस नाम यानी प्रकार निश्चित किये, चार मठ स्थापित किये, और ब्रह्मचारियोंके भी चार प्रकार निश्चित किये, तबसे हिन्दुस्तानके साधुओंके जीवनमें एक तरहकी सुव्यवस्था आ गयी। धर्म-क्षेत्रमें शंकराचार्य, समुद्रगुप्त या नेपोलियनकी टक्करके विजेता थे; राजा टोडरमल या शिवाजीकी जोड़के व्यवस्थापक थे; तुलसीदास सद्गुरु कवि थे; बुद्ध भगवान्-जैसे आत्मविश्वासी थे और ज्ञानेश्वरके मुक्तावलेके साहित्याचार्य थे। उन्होंने सनातनी हिन्दुओंकी जो व्यवस्था कर दी, उसके अवशेष आजतक कायम हैं। सचमुच शंकराचार्य हिन्दूधर्म-सम्राट् माने जा सकते हैं।

अुनके निश्चित किये हुअे संन्यासियोंके दस नाम गिरी, पुरी, भारती, तीर्थ, सरस्वती आदि हैं। ब्रह्मचारियोंके चार विभागोंमेंसे स्वरूप सम्प्रदाय भी एक है। अुसका एक मठ अयोध्यामें है। अैसा माना जाता है कि महाराष्ट्रमें धार्मिक पुनर्जीवनको सुव्यवस्थित स्वरूप देनेवाले श्री समर्थ रामदास अिसी अयोध्या मठके और स्वरूप सम्प्रदायके थे।

अयोध्या जाते हुअे मरठेकर बाबाके दिलमें आनन्द और भक्तिका अितना अुद्रेक हो रहा था कि अुन्हें देखकर कोअी भी यह समझ सकता था कि अुनकी दृष्टि स्वाभाविक स्थितिमें नहीं थी।

आमुचे कुळीं हनुमन्त

हनुमन्त आमुचें कुळदैवत

स्वरूप सम्प्रदाय अयोध्या मठ

(हनुमान हमारे कुलमें हैं।

हनुमान हमारे कुलदेवता हैं।

सम्प्रदाय स्वरूप, और मठ अयोध्या है।)

अैसा एक संकल्प रामदासी पंथके लोग रोज़ सुबह-शाम पढ़ते हैं। अैसे अयोध्या मठका दर्शन बाबाके लिअे एक अर्घ्व लाभ था।

मेरी यात्रामें तीन तीर्थस्थानोंकी तरफ़ मेरा ध्यान विशेष आकर्षित हुआ है। अयोध्या, हरद्वार और अमृतसर। तीनों जगह, जाने क्यों, मेरा चित्त विशेष प्रसन्न रहा है। तीनों जगह कोअी मेरी जान-पहचानका या मुलाक़ाती न था। तो भी अिन तीनों स्थानोंके दर्शन और वहाँके वातावरणके अनुभवसे मुझे विशेष प्रसन्नता हुअी, आह्लाद हुआ। तीनों भिन्न-भिन्न समयके हैं, परन्तु हैं अेक ही जातिके।

काशी जानेसे पहले मनुष्य अपने मनमें अुसका ज़ा कल्पनाचित्र खींच लेता है, अुसकी तुलनामें काशीका प्रत्यक्ष दर्शन कभी निराशाजनक सिद्ध नहीं होता। गंगाके प्रवाहपर, नावमें बैठे-बैठे, घाटके बाद घाट देखनेके पश्चात् मनुष्यके मुँहसे हटात् आश्चर्यके ये अुद्गार निकलते हैं— 'मुझे कल्पना भी न थी कि काशीका दृश्य अितना मनोहर और अितना भव्य होगा !'

अयोध्याकी स्थिति अिससे अुलटी है। अयोध्या तो रामराज्यकी राजधानी है। अयोध्याका नाम सुनते ही कल्पनाके सामने अेक अति-विशाल मनोहर नगरीका दृश्य खड़ा होता है। जब मनुष्य अिस भव्य कल्पनाके साथ अयोध्या जाता है, तो पहले वहाँका स्टेशन देखकर ही निराश हो जाता है। जहाँ हमेशा लाखों यात्रियोंका आवागमन होता है, वहाँ अुनकी सुविधाका कोअी खयाल नहीं रक्खा जाता। यह देखकर यह विश्वास हुअे बिना नहीं रहता कि वर्त्तमान राज्य देशी जनताके लिये है ही नहीं, और खासकर गरीबोंके लिये तो बिलकुल ही नहीं है।

अयोध्यामें नदीका प्रवाह घाटसे बहुत ही दूर चला गया है। नदी का पाट खूब चौड़ा और रेतीला है। गाड़ियोंको रेतमें चलते समय बड़ी दिक्कत होती है। अिसलिये वहाँके लोगोंने पहियोंके नीचे लकड़ीके दो-दो पट्टिये बिछानेकी तरक्कीब अीजाद की है। गाड़ीका रास्ता नदीके पाटमेंसे तिरछा जाता है, अिसलिये वह खूब लम्बा है। अिस सारे रास्तेकी लीकपर लम्बे-लम्बे पट्टिये रेलकी पटरियोंकी तरह बिछा दिये गये हैं। गाड़ियाँ अिन पट्टियोंपर चलती हैं, लेकिन गाड़ियोंकी विडम्बनाओंका अन्त यहीं नहीं होता। आँधी आते ही ये पट्टिये रेतमें दब जाते हैं। फिर रास्तेकी, और पट्टियोंकी शोधके लिये अेक पुरातत्त्व-विभाग खोलनेकी

नौवत आ पड़ती है। परन्तु लोगोंने इसका भी एक अुपाय खोज लिया है। वे रास्तेके दोनों तरफ़ कँटे, कँटीले पौधे, और घासकी एक हाथ अँची बागुड़ लगा देते हैं, जिससे आँधीके साथ आनेवाली रेत वहीं रुक जाती है। रेतके बोझसे बागुड़ भीतरकी तरफ़ झुक न जाय, इसके लिये अन्दरकी तरफ़ रेतका ढेर लगाकर उसे सहारा दिया जाता है। नदीमें बाढ़के आने और अुतर जानेपर फिर यह रास्ता बनाना पड़ता है। यदि सहाराके मरुस्थलमें प्रकृतिने अँटकी सुविधा न की होती, तो वहाँ भी लोगोंको इसी ढंगकी ज़बरदस्त व्यवस्था करनी पड़ती।

नदीमें नहाकर पीछे मुड़ते ही सहसा अयोध्या नगरीके और अुसके घाटोंके दर्शन होते हैं। अयोध्यामें सर्वत्र चूनेका ही काम है, इसलिये सब मन्दिर सुधाधवल (सुधा-चूना; धवल-सफ़ेद) दिखायी देते हैं। जिस समय हम नहाकर नगरमें प्रवेश करते हैं, उस समय सामनेवाले मन्दिरोंमें घण्टारव होता है; यात्री भाँति-भाँतिके चमकीले लोटे और घड़े हाथमें लिये आते-जाते हैं; बहुतोंके हाथमें चन्दन, कुंकुम् और पुष्पकी थालियाँ होती हैं, और हरएक रामराजा, सीतारानी और बजरंगबली हनुमानकी जयके नारे लगाता जाता है। ऐसा प्रसंग मनुष्यके चित्तपर सदाके लिये अंकित हुआ बिना कैसे रह सकता है? यदि मनुष्यकी स्मृति पत्थरकी तरह जड़ हो, तो भी इस प्रकारकी स्मृति उसपर अशोकके शिला-लेखोंकी तरह हमेशाके लिये अंकित हो जायगी।

नहा-धोकर हम दर्शन करने निकले। यह कैसे हो सकता है कि अयोध्यामें बन्दर न हों? सुनते हैं कि वानरोंकी ही मददसे रामचन्द्रजीने सीताजीका पता लगाया और लंका जीती। इसके बदले उन्होंने अपने बाद अयोध्याका राज्य वानरोंको सौंप दिया। आज भी वहाँ वानरोंका निष्कण्टक राज्य जारी है। अतिहासकार कहते हैं कि अति प्राचीन कालमें दक्षिण-हिन्दुस्तानसे जो माल विदेशोंको जाता था, उसमें मोर और बन्दरोंका निर्यात होता था। यदि रामचन्द्र भी दक्षिण हिन्दुस्तानसे बन्दरोंका अकाध दल यहाँ बसानेके लिये ले आये हों, तो उसमें आश्चर्य क्या? मानववंश-शास्त्रियोंका कथन है कि नयी बस्ती बसानेवालोंकी संख्या बड़े वेगसे बढ़ती

है। इसी सिद्धान्तके अनुसार मथुरा-वृन्दावनके वानरोंकी बस्ती बढ़ी होगी। आज अयोध्यासे भी मथुरामें उनकी बस्ती अधिक तरक्कीपर है।

अयोध्यामें मन्दिर और मूर्तियाँ तो कहीं हैं, परन्तु राजमहलमें गोविन्द या विष्णुका जो मन्दिर है, उसकी मूर्ति असाधारण है। यह मूर्ति है तो काले पत्थरकी, लेकिन उसके काले रंगमें गहरे हरे रंगकी छटा है। अतः उसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। रसिक भक्तोंने श्रीकृष्णको श्यामसुन्दर मानकर कौनसा कला-विधान सिद्ध किया है, इसकी कल्पना इस मूर्तिके दर्शनसे स्पष्ट हो जाती है।

जब हम मन्दिर देखने गये थे, उस वक्त दोपहरके कोअी ग्यारह-बारह बज रहे होंगे। मन्दिरके सेवक यानी ब्राह्मण आरतीके लिये एकत्र हुअे थे।

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशम्।

स्तोत्र बहुत ही मीठे, सुस्वर रागमें और मधुर आलापों सहित गाया जा रहा था। राजमहलके हरएक विभागपर उस विभागके नामकी तख्ती लगी हुअी है। ये सारे नाम संस्कृतमें लिखे गये हैं, इस बातकी तरफ़ मेरा ध्यान गये बिना न रहा।

अयोध्यामें मुख्य दर्शन तो हनुमानगढ़ीके हनुमानजीका है। वहाँ यात्रियोंकी अधिक-से-अधिक भीड़ होती है। कोअी नारियल लेकर जाते हैं, तो कोअी पेड़े लेकर पहुँचते हैं। कोअी हनुमानजीको पंखेसे हवा करते हैं। बड़े पंखेकी रस्सीका छोर मन्दिरके बाहर रक्खा गया है। जिसे श्रद्धा हो, वह पंखा झले और धन्य हो! मैं इसी अुधेड़बुनमें पड़ गया कि पवनकुमारके सिरपर पंखा झलना अुचित है या अनुचित? मरडेकर वावाके साथ चर्चा करना असम्भव था, क्योंकि वे तो भक्तिसे मतवाले हो रहे थे। जब उनका दिया हुआ भोग हनुमानजीको चढ़ाया गया, तब तो उनके नेत्रोंसे धन्यताके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा। वे तो धन्य हुअे ही, लेकिन उनकी उस भक्तिके दर्शनसे मैं भी धन्य हुआ!

गढ़ीसे नीचे अुतरकर हम रामजन्मका स्थान और इसी प्रकारके अन्य रामायण-प्रसिद्ध स्थान देखने गये। मैंने वहाँ सुना कि ये सारे स्थान मुसलमान भाबियोंकी धर्मान्धताके शिकार हुअे थे। आज वे

स्थान जिस योग्य नहीं रहे कि अपनी प्राचीन दशाकी ज़रा-सी भी झाँकी दर्शकोंको करा सकें।

जिस प्रकार श्री भैरव काशीके कोतवाल हैं, उसी प्रकार श्री मत्तगजेन्द्र अयोध्याके कोतवाल हैं। अनिकी कथा या माहात्म्य मुझे वहाँ सुननेको नहीं मिला। दर्शन समाप्त करके हम एक ब्राह्मणके घर भोजन करने गये। पहले तो उसके घरकी स्वच्छता देखकर ही हम अघा गये। घरके आँगनमें एक बालिष्ठ लम्बा और एक बालिष्ठ चौड़ा एक पत्थर पड़ा हुआ था। जिस समय हम वहाँ पहुँचे, उस समय, यानी ठीक मध्याह्नमें, ब्राह्मणकी लड़की उस पत्थरपर बैठकर दत्तौन कर रही थी। थोड़ी देरके बाद एक बालकने पास ही प्रातर्विधि पूरी की। मँने बच्चेको उसी पत्थरपर बैठाकर धोया। और उस पानीके सुखनेसे पहले ही उस शिलाको धोकर उसपर कैथेकी चटनी बाँटी। घरमें कपड़े और वस्त्रनोंका चौपट राज था। चूल्हेसे धुआँ निकल रहा था, और ब्राह्मणके मुँहसे गानियाँ। आखिर उसके यहाँ जितना खाया जा सका, खाया; जितनी अचित्त जान पड़ी, अतनी ही दक्षिणा दी, और हम अयोध्यासे खाना हुअे।

अयोध्यामें सरकारी कचहरियाँ बगैरा कुछ नहीं हैं। क्योंकि नज़दीकका फैजाबाद शहर ज़िलेका सदर मुक़ाम है। सब प्रतिष्ठित लोग वहीं रहते हैं। अयोध्याकी बस्ती तो खासकर यात्रियोंकी, और उनपर गुज़र करने-वाले पण्डों और साधुओंकी बस्ती है। साधु भी विशेषकर नागा बाबा हैं। ये लोग ज़बरदस्त कर्मकाण्डी और स्वयंपाकी होते हैं। खुद पकाकर खाते हैं, और सारा दिन चिलम पीते हैं। कमरमें लँगोटी और गलेमें काठकी बड़ी-बड़ी गुरियोंकी माला पहने रहते हैं। दिनभर रामजीकी बातें करते हैं, तुलसी-रामायणके दोहे और चौपायियाँ बेसुरे रागमें गाते हैं, और जहाँ बैठते हैं, वहाँ शान्ति एवं संगीतका तो खून ही करते हैं। फिर भी अनि लोगोंकी कभी बातें सीखने योग्य हैं। ये बहुत साफ़ रहते हैं। आम तौरपर तन्दुरुस्त होते हैं। जहाँ जाते हैं, एक छोटासा, कामचलाअू मन्दिर बना लेते हैं। लोगोंको उपदेश करते हैं, और सैाझकी आरतीके समय तालबद्ध घण्टा बजाते हैं। साधारणतः ये लोग झगड़ालू नहीं होते, परन्तु जब कभी अनिपर झगड़नेकी धुन सवार हो जाती है, ये बगैर खून

किये नहीं मानते। ये लोग पुलिससे बहुत चिढ़ते हैं। दो पक्ष चाहे जितने लड़-झगड़ रहे हों, पुलिसके आते ही दोनों फौरन अंक हो जानेका स्वाँग रचते हैं। यह हिन्दुस्तानकी एक ऐसी पुरानी संस्था है, जिसका न तो हम उपयोग ही कर सकते हैं, और न जिसे नञी चमक या 'ओप' ही दे पाते हैं।

गुजरातमें जो स्वामीनारायण सम्प्रदाय अितना फैला हुआ है, उसके आद्य गुरु श्री सहजानन्द स्वामी अयोध्यासे ही गुजरात आये थे।

तीन वर्ष बाद में फिर एक बार अयोध्या गया था। उस बार भी मैंने पहले जितनी ही प्रसन्नताका अनुभव किया। मोक्षदायिका सप्तपुरियोंमें हमारे पूर्वजोंने अयोध्याको प्रथम स्थान दिया है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काँची अवन्तिका।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

९

अलमोड़ाकी ओर

रामकृष्ण परमहंसने कहा है—'जिसे मोक्षका रास्ता लेना हो, उसे छोटी-छोटी फुटकर और निर्दोष वासनाओंकी तृप्ति कर लेनी चाहिये। और बादमें बड़ी वासनाओंका सामना करनेके लिये कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिये।' एक दृष्टिसे हमने मोक्षके पथपर पदार्पण किया था। हम दोनोंको सांसारिक प्रवृत्तियों और अन्तर्की विविध अुपाधियोंके प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी थी। परन्तु मेरे मनमें त्रिस्थलीकी यात्रा और रामकृष्ण-मिशनके पुण्यपुरुषों तथा पवित्र स्थानोंका दर्शन करनेकी लालसा रह गयी थी। मरठेकर बाबाको अयोध्या दर्शनकी साध लगी हुअी थी। अब वह तृप्त हो गयी। अतः हम दोनों बरसातके बादके बादलोंकी तरह हलके हो गये, और हिमालयकी तरफ चल पड़े। संकल्पपूर्तिसे गयाके श्राद्धके समान ही आनन्द होता है। उस आनन्दको प्राप्तकर हम दोनोंने अयोध्यामें आखिरी रात मानो योगनिद्राके अनुभवमें बितायी। मनमें न कोअी

वासना अठती थी, न कोआ विचार आता था, फिर स्वप्नमें भी वे क्यों आने लगे ? सबेरे अठते ही ऐसा मालूम होने लगा, मानो हम कोआ बिलकुल नये आदमी बन गये हों ! अबतक हम अिस दुनियाके साधारण मनुष्यों-जैसे मनुष्य ही थे । दूसरे तीर्थयात्रियोंकी तरह तीर्थयात्रा करते थे । पर अब हिमालयका चित्र कल्पनाके सामने तैरने लगा था ।

ट्रेनमें बैठे । भीड़ गजबकी थी । लोगोंको जगहके लिअे लड़ते देख मैं मनमें कहने लगा — ‘ज़रा सब करो भाआ ! यह हमारी आखिरी यात्रा है । फिर हम भीड़ करने नहीं आयेंगे ।’ लेकिन लोगोंको मेरे मनोगत विचारोंका क्या पता ? न जाने कितने लोग हर साल मेरी तरह अिस दुनियासे अिस्तीफ़ा देकर वैराग्य खण्डमें चले जाते होंगे ! वहती दुनियाको न तो अुसका कोआ हर्ष-विपाद है, और न अुससे कोआ लाभालाभ । परन्तु जानेवालेकी दृष्टिसे यह कितना गम्भीर काम होता है ! जब बड़े टॉलस्टॉय अन्तिम बार घर छोड़कर निकले होंगे, तब अुनके मनमें क्या-क्या विचार न आये होंगे ?

अुत्तर हिन्दुस्तानमें रेलको शुरू हुअे पौनसौ साल तो आसानीसे हो चुके होंगे । मगर अबतक लोग रेलके आदी नहीं हुअे । अिस डरसे कि कहीं रेलका ‘टेम’ न चूक जाय, लोग पाँच-पाँच, छह-छह घण्टे पहले स्टेशनपर आकर अुम्मीदवारी करते हैं । टिकटघरकी खिड़कीके पास अपना पहला नम्बर लगानेके लिअे लोग वहाँ सिपाहीको घूस देकर और आसपासके मुसाफ़िरोंको धक्के मारकर आगे जानेका हक़ खरीदते हैं । स्टेशनपर गाड़ी आनेके बाद जबतक अुतरनेवाले मुसाफ़िर अुतर न जायँ, तबतक तीसरे दरजेके मुसाफ़िरोंको स्टेशनके चबूतरेपर (प्लैटफ़ॉर्मपर) जाने नहीं दिया जाता, यह बात अबतक अुनके ध्यानमें नहीं आती ! तो फिर अुतरनेवाले और बैठने-वाले मुसाफ़िरोंके लिअे अिसमें कितना सुभीता है, यह खयाल अुन्हें कहाँसे आवे ? अिसलिअे फाटक खुलनेसे पहले ही कठहरेपर चढ़कर प्लैटफ़ॉर्मपर कूदनेका प्रयत्न कोआ न कोआ मुसाफ़िर बरज़रूर करेगा । और, ट्रेनमें कुछ ज़बरदस्त लोग दिन-दहाड़े पैर पसारकर बरज़रूर सोयेंगे । बैठनेवाले लोग भरसक ज़्यादा जगह रोकनेके लिअे पलथी मारे, अधिक-से-अधिक फैलकर बैठनेकी कोशिशमें, पैरोंकी नसोंसे खूब व्यायाम करायेंगे । डिब्बेका

दरवाजा अगर अन्दरकी तरफ खुलता हो, तो दरवाजेमें ही सामान रख देंगे, और रेलवे जितना कष्ट देती है, उसे अपनी तरफसे यथासम्भव बढ़ानेकी कोशिश बड़ी लापरवाहीसे करते रहेंगे।

ऐसी गाड़ीमें यात्रा करना एक भारी तपस्या ही है। गाड़ीमें प्रवेश मिलनेसे पहले ही डार्विनके जीवन-कलहके अक-अक सिद्धान्तकी पुनरावृत्ति हो जाती है। परन्तु गाड़ी चलते ही प्रिन्स क्रोपाटकिनका राज्य शुरू हो जाता है। बादमें खड़े होनेवालोंको बैठनेकी जगह मिल जाती है; प्यासेको, अगर जात-पाँत अनुकूल हो, तो पानी भी मिल जाता है। पान-सुपारी, बीड़ी, और दोहोंका लाभ तो होता ही है। स्टेशन दूर हो, तो गपशप चलने लगती है। ज्यादातर मेघराजकी अकृपा और क्रह्तकी जानमारीकी बातें सुनायी देती हैं। प्रसिद्ध डाकुओंके साहस-पराक्रमके किस्सोंमें सभीको मग्ना आता है। हमारे डिब्बेमें एक शख्स मुरादाबादकी तरफके किसी डाकूका किस्सा सुना रहा था, और डाकुओंके प्रति समभाव रखते हुआ सब कोआयी उसे सुन रहे थे। डाकू यानी मनुष्य समाजके शत्रु। उनके नामसे ही मनुष्य-मात्रको नफ़रत होती है, परन्तु फिर भी लोग डाकुओंके लिअे अितनी सहानुभूति कैसे रख सकते हैं, यही विचार उस दिन मेरे मनमें आता रहा। ज्यों-ज्यों डाकू-पुराण आगे चलता गया, त्यों-त्यों मुझे अपने प्रश्नका उत्तर मिलने लगा। डाकुओंमें भी खानदानियतके अंश होते हैं। शरीफ़ (!) डाकू गरीबोंको तंग नहीं करते। स्त्रियोंको नहीं छेड़ते। अँधेरी रातमें कोआयी स्त्री अकेली जाती हो, तो वीरोंकी परिपाटीके अनुसार उसे पहुँचाने जाते हैं। मरीज़ोंको दवा-पानी देनेमें मदद करते हैं। सत्यनारायणकी कथा करनेवाले ब्राह्मणोंको मुक्त हस्तसे दक्षिणा देते हैं। और प्रजाको तंग करनेवाले पुलिसवालोंसे सदा बैर रखते हैं। आम लोगोंका यह खयाल होता है कि डाकू अुन्हीं लोगोंको परेशान करते हैं, जो मुक़द्दमेबाज़ हैं, जालसाज़ी करते हैं, अकालमें भी रियायत नहीं देते, मनमाना ब्याज लगाकर खेत हड़प कर लेते हैं, और दुकालके समय तेज़ भावकी आशासे गल्ला बेचनेसे अिनकार करते हैं; असलिअे डाकुओंके प्रति लोगोंका कुछ सहानुभूतिशील होना स्वाभाविक है। जनता न्याय, कानून, नागरिकताके अधिकार और कर्त्तव्य आदि कुछ नहीं जानती। खुश

क्रिस्मतीसे कभी-कदास मिलनेवाले सुख और नित्य नसीब होनेवाले दुःखसे ही वह परिचित है।

डाकुओंके क्रिस्से खतम होनेपर एक बावाने अपने पूर्वजन्मके कर्मका वेदान्त छोटना शुरू किया। संसार अमार है, काया झूठी है, माया झूठी है, एक रामनाम ही सत्य है (और सत्य है बाबा-चैरागियोंको दी जाने-वाली रोटी और लँगोटी।), बाक़ी सब मायाका जंजाल है। जैसा उस जन्ममें किया होगा, वैसा इस जन्ममें भुगतना होगा, उसमें हमारा कोई बश नहीं चल सकता—यह उसके वेदान्तका सार था। मैं भी साधु होने जा रहा था। मनमें सोचने लगा—“क्या मैं अिन्हों लोगोंकी विरादरीमें मिलने जा रहा हूँ? इस प्रकारके वेदान्तसे क्या मुझे मोक्ष मिलनेवाला है या हिन्दुस्तानका स्वराज्य मिल सकता है?”

अतनेमें बरेली स्टेशन आया। यहाँ हमें कुछ घण्टांतक काठगोदामकी गाड़ीका अिन्ततार करना था। इस स्टेशनपर मुसाफ़िरोंके भोलेपनका एक अजीब नमूना देखा। एक बूढ़ा गाज़ियाबादकी तरफ़ जाना चाहता था। उसकी स्त्री और दो लड़के उसे पहुँचानेके लिये स्टेशन तक आये थे। हलवाओंके चीथड़े-जैसी मैली-कुचैली धोतीका कल्ल लगाये एक नौकर भी साथ था। बूढ़ेने स्टेशनपर अपनी एक चौकोन दोहर बिछादी थी। उसपर दां-चार धोतियाँ, एक मिरज़ा, एक लोटा, बिछाने-आढ़नेके दां-चार कपड़े, एक पानदान, आदि कभी चीज़ोंका ढेर लगा दिया था। बादमें दोहरके आमने-सामनेके छोर मिलाकर गाँठ लगायी। दूसरे दो छोर किसी तरह हाथमें नहीं आते थे। आखिर नौकरकी मददसे उन दोनों हठीले छोरोंका किसी तरह गठबन्धन किया और पोटलीको गोल आकार प्राप्त हुआ। इस प्रकारकी पोटली देखकर ही शायद कुछ पुराणोंमें पृथ्वीको चौकोन कहा गया हो। इस सर्व-संग्रह पोटलीपर ध्वज या पताकाके तौरपर बूढ़ेने एक कोनेमें अपना प्रौढ़ हुक्का खोस दिया। पोटलीमें हुक्का तो मौन लेकर ही बैठा था, लेकिन उसका रोब देखकर यह स्पष्ट मालूम होता था कि जब वह बोल्ता होगा, तब अच्छे-अच्छे हुक्का-बहादुरोंके हृदय दिलानेकी वाचासिद्धिका परिचय देता होगा। थोड़ी देरमें बूढ़ेकी गाड़ी आयी। गडड़ी सिरपर रखकर वह एक डिब्बेकी तरफ़ दौड़ा। गाड़ीके

दरवाजे कितने बड़े होते हैं, इसका अन्दाज़ा करनेकी कला सतजुगसे आज तक किसीने खोजी ही न थी। इसलिये किमी तरह पोटली अन्दर घुसनी ही नहीं थी। बूढ़ा अपनी सारी ताकत लगाकर पोटली अन्दर ढकेलने लगा। लेकिन अतनेमें एक मुसाफिरको अपने हक्कका खयाल हो आया। उसने पोटली बाहर फेंक देनेका प्रयत्न शुरू किया। अन्द्र और विश्वामित्रकी खींचातानीमें बेचारे त्रिशंकुको जो दुर्दशा हुअी थी, वही यहाँ बेचारी उस पोटलीकी हुअी। पोटली पलटा खाकर अधोमुख्य हुअी। हुक्केकी चिलम नीचे गिरकर शतधा विदीर्ण हो गअी। तब बूढ़ेका नौकर वीरभद्रके वेगसे दौड़कर आया और उसकी मददसे वह वृद्ध तथा उसकी पोटली दोनों डब्बेके अन्दर दाखिल हुअे। नौकरने गालियोंकी गर्जना जारी रखी। और बेचारा वृद्ध चिलमके अभावमें गरीब गायकी तरह दीन-हीन दिग्वाअी देनेवाले हुक्केकी हालतपर तरस खाता हुआ एक कोनेमें बैठ गया।

अस अपाख्यानका रस खूब चावसे चय चुकनेके बाद भी हमारी गाड़ीके छूटनेका वक्त नहीं हुआ। हम बिलकुल अकता गये। आखिर मरठेकर बावाने भोजन बनानेका प्रस्ताव पेश किया। मेरी समझमें न आता था कि स्टेशनपर भोजन कहाँ बनाया जाय ? लेकिन बावा पुरुषार्थी ठहरे। वे कहींसे एक कोरा मटका ले आये। स्टेशनकी बगलमें एक झाड़के नीचे तीन पत्थर अकट्टा किये और लकड़ियोंकी ग्योजमें गये। लौटनेमें काफी देर लगी, लेकिन लकड़ियाँ भी खूब आयीं। फिर जाकर ग्विचड़ीका सामान ले आये। अतनेमें एक बड़ी तोंद और छोटी आँवों-वाला कॉन्स्टेबल वहाँ आया, और जैसी सभ्य भाषा वह जानता था, वसी सभ्य भाषामें उसने कहा कि हम वहाँ रोटी नहीं बना सकते; क्योंकि वह जगह रेल्वे कम्पनीकी थी, और रेल्वे कम्पनीमें हमारे पिताजीकी कोअी साझेदारी नहीं थी। मुझे जैसे प्रसंगोंका अनुभव न था, इसलिये मैं तिनक अुठा। परन्तु हमारे बावाजी किमी कारण हार माननेवाले जीव न थे। अधर इसी गड़-झगड़में गाड़ीका वक्त हो गया, और हम वह सीधा और हमें मिली हुअी गालियोंकी विरासत एक साधुको सौंपकर गाड़ीपर सवार हुअे। साधुने बावाको आशीर्वाद देते हुअे कहा — “तुम कुछ फ्रिक मत करो। उस सालेको मैं ठीक करूँगा।”

गाड़ीमें अितनी सख्त गरमी थी कि हमारी ही ग्विचड़ी पक रही थी। एक साधु हिमालयकी यात्रा करके आया था। उससे जितनी जानी जा सके, अतनी सब बातें जाननेमें ही हमने अपना वक्त बिताया। वह कहने लगा — “हिमालयमें एक क्रिस्मकी मन्त्री होती है। अगर वह पिंडलीमें काट ले, तो उसका अितना बड़ा और विपैला फोड़ा हो जाता है और ऐसी जलन होती है कि एक कदम भी नहीं चला जाता। दो-दो तीन-तीन दिनतक आदमी घायल पड़ा रहता है। उस साधुके हाथमें तेजबलकी एक लकड़ी थी। उस लकड़ीके अद्भुत गुणधर्मसे भी उसने हमें परिचित कराया — “यदि कोअी अस लकड़ीका टोक-टीक पालन करे, तो अिसे रखनेवाला रातको अँधेरेमें भी देख सकता है।” मैंने पूछा — “लकड़ीका पालन क्या करनेसे होगा?” उसने कहा — “लकड़ीकी छालमें ये जो अँग्रे-सी दिग्वाअी देती हैं, उन्हें हमेशा साफ़ रखना चाहिये। लकड़ी कभी ज़मीनपर टेकनी न चाहिये। रातको सोते वक्त उसे कहीं अँची जगह रख देना चाहिये। और दिशा-जंगलसे आनेके बाद बगैर हाथ-पैर धोये लकड़ीको छूना न चाहिये। अस लकड़ीसे साँप या विच्छूको न मारना चाहिये। अिन निथमोंका पालन करनेसे लकड़ीका पालन होगा, और तभी लकड़ी अपने अद्भुत गुण दिग्वायेगी।”

जीवन-भर यात्रा करनेवाले और रोज़ नया अनुभव लेनेवाले अस साधुमें अितना वहम देखकर मेरे मनमें विचार आया कि हिन्दूधर्मकी सारी शक्ति यों ही फ़जूल जाती है। समाजके लिये यह साधु-समाज ब्रह्मरूप हो गया है। या तो असका अन्त करना चाहिये, या अच्छे-अच्छे विचारवान लोगोंको अिन वैरागियोंकी जमातमें शामिल होकर धैर्यसे अिन्हें सुधारना चाहिये। अिन दो मार्गोंमेंसे कौन-सा सम्भव और कौन-सा असम्भव है, सो कौन कह सकता है?

हम ज्यों-ज्यों बरेलीसे दूर-दूर जाने लगे, त्यों-त्यों भीड़ छँटती गयी, और हमें स्वाधीनताका — स्थान और विचारकी स्वाधीनताका — आनन्द मिलने लगा।

नगाधिराज

विदेशमें रहनेवाले मनुष्य-मात्रमें अपनी जन्मभूमिका स्मरण, जन्मभूमिका विरह और वापस जन्मभूमिमें पहुँच जानेकी अिच्छा हमेशा जाग्रत ही रहती है। बाबरको हिन्दुस्तानकी ज़बरदस्त शाहंशाहत मिली और अमृत-सा मीठा आम खानेको मिला, फिर भी उसे मध्य अशियाके अपने तरबूजोंकी याद बार-बार आया करती थी। साथ ही, उसकी यह अिच्छा भी रही कि चाहे जीते जी अपनी जन्मभूमिके दर्शन करना उसके भाग्यमें न हो, फिर भी आखिर उसकी हड्डियाँ तो उस जन्मभूमिमें ही गिरनी चाहियें। हिन्दुस्तानमें आकर नवाबी ठाठसे रहनेवाले अंग्रेज़को भी तबतक चैन नहीं पड़ता, जबतक वह महीनोंकी छुट्टी लेकर वह स्वदेश नहीं हो आता। कुछ इसी तरहकी उत्कण्ठा हिमालयके प्रति हिन्दुओंके मनमें रहती है। अतिहास-लेखक आर्योंके मूलस्थानके रूपमें उत्तर ध्रुवकी कल्पना चाहे करें, और भाषा-शास्त्री इसका गौरव मध्य-अशियाको चाहे दें, और देशाभिमानी लोग चाहे हिन्दुस्तानको ही आर्योंकी आद्यभूमि सिद्ध करें, तो भी अगर राष्ट्रके हृदयमें विराजी हुई प्रेरणाका अपना कोअी ऐतिहासिक महत्त्व है, तो हिमालय ही हम आर्योंका आद्यस्थान है। राजा हो या रंक, बूढ़ा हो या जवान, पुरुष हो या स्त्री, हरएक यह अनुभव करता है कि जीवनमें अधिक नहीं, तो कम-से-कम एक बार तो हिमालयके दर्शन अवश्य ही किये जायँ, हिमालयका अमृत-सा जल पिया जाय, और हिमालयकी किसी विशाल शिलापर बैठकर क्षणभर ओश्वरका ध्यान किया जाय। जब जीवनके सभी करने लायक काम किये जा चुकें, अिन्द्रियोंकी सब शक्तियाँ क्षीण हो जायँ, जोर्ण देह और शेष आयुष्य भार-रूप लगने लगे, तब इस दुनिया-रूपी पराये घरमें पड़े न रहकर अपने घरमें पहुँचकर मरना ही ठीक है। इस अुद्देश्यसे कअी हिन्दू अन्न-जलका त्याग करके देहपात होनेतक हिमालयमें ओशान्य दिशाकी ओर बराबर बढ़ते ही चले जाते हैं। हमारे

शास्त्रकार यही मार्ग लिख गये हैं। किसी राजाका राज-पाट गया नहीं, कि वह हिमालयमें पहुँचा नहीं। भर्तृहरी-जैसोंको कितना ही वैराग्य क्यों न उत्पन्न हुआ हो, फिर भी हिमालयके विषयमें उनका अनुराग अणुमात्र भी कम न होगा। अुलटे, वह अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। किसी व्यापारीका दिवाला निकलनेकी घड़ी आ पहुँचे, किसी सौदागरका सब-कुल समुद्रमें डूब जाय, किसीको म्त्रो कुलटा निकले, किसीकी सन्तान या प्रजा गुमराह हो जाय, बागी हो जाय, किसीके सिर कोअी सामाजिक या राजनीतिक संकट आ पड़े, किसीको अपने अधःपतनके कारण समाजमें मुँह दिखाना भारी हो जाय, — हालत कैसी भी क्यों न हो — आस्तिक हिन्दू कभी आत्महत्या न करेगा। हिन्दुओंके मनमें परम दयालु महादेवके प्रति जितनी श्रद्धा है, उतनी ही श्रद्धा हिमालयके प्रति भी है। पशुपति-नाथकी तरह हिमालय भी अशरण-शरण है। चन्द्रगुप्तने राष्ट्रोद्धारका चिन्तन हिमालयमें जाकर ही किया था। समर्थ रामदास स्वामीको भी राष्ट्रोद्धारकी शक्ति हिमालयमें ही वज्ररंगवली रामदूतसे प्राप्त हुआ थी। यदि पृथ्वीको मतहपर ऐसी कोअी जगह है, जहाँ हिन्दू धर्मका रहस्य अनायास प्रकट होता हो, तो वह हिमालय ही है। श्री वेदव्यासने अपना ग्रंथसागर हिमालयकी ही गोदमें बैठकर रचा था। श्रीमत् शंकराचार्यने अपनी विश्वविख्यात प्रस्थानत्रयी हिमालयमें ही लिखी थी। और स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने भी हिमालयमें ही इस बातका विचार किया था कि सनातन धर्मके तत्त्व आधुनिक युगपर किस तरह घटाये जायँ। * हिमालय — आर्योंका यह आग्रस्थान, तपस्वियोंकी यह तपोभूमि — पुरुषार्थी लोगोंके लिये चिन्तनका अेकान्त स्थान, थके-माँदोंका विश्रामस्थल, निराश बने हुएओंका सान्त्वना-धाम, धर्मका पीहर, मुमूर्षुओंकी अन्तिम दिशा, साधकोंका मभियौरा, महादेवका धाम और अवधूतकी शय्या है। मनुष्योंको तो ठीक, पशु-पक्षियोंको भी हिमालयका अपूर्व आधार है। उसी सागरसे मिलनेवाली अनेक नदियोंका वह पिता है। उसी सागरसे उत्पन्न वादलोंका वह तीर्थस्थान है। कविकुल-गुरुने

* यहाँ अिम बातका स्मरण हुआ बिना नहीं रहता कि गांधीजीने गीताका अपना अनुवाद — अनासक्तियोग — भी हिमालयमें ही पूरा किया था।

‘देवतात्मा नगाधिराज’को पृथ्वीका मानदण्ड जो कहा है, सो अनेक अर्थोंमें यथार्थ है। हिमालय भूलोकका स्वर्ग और यक्ष-किन्नरकी निवास-भूमि है। वह अितना विशाल है कि उसमें संसारके सभी दुःख समा सकते हैं; अितना शीतल है कि सब प्रकारकी चिन्ता-रूपी अग्निको वह शान्त कर सकता है; अितना धनाढ्य है कि कुवेरको भी आश्रय दे सकता है; और अितना ऊँचा है कि मोक्षकी सीढ़ी बन सकता है। हम ठेठ अपने बचपनसे हिमालयका नाम सुनते रहते हैं। बालकथा, बालगीत, प्रवाम या यात्रा-वर्णन, अतिहास या पुराण, कहीं भी क्यों न देखें, सर्वत्र अन्तिम आश्रय तो हिमालयका ही मिलेगा। बचपनसे जो आदर्श, रमणीय स्थान कल्पना-रूपिमें प्रत्यक्ष हुआ होगा, उसकी कल्पना हिमालयसे ही आती होगी।

अरे, इस हिमालयने क्या-क्या नहीं देखा ? पृथ्वीके असंख्य भूकम्पों और आकाशके हज़ारों धूमकेतुओंका उसने अपलक भावसे देखा है। महादेवके विवाह अग्नीने करवाये हैं। सतीके विहारका और कुमार-सम्भवका कौतुक अग्नीने अपत्यवात्सल्यपूर्वक किया है। भगीरथ तककी खुकुलकी अनेक पीढ़ियोंकी कठिन तपस्याओंका वह साक्षी है। पाण्डवोंकी महायात्रा उसीने सफल की है। लेकिन ये पुरानी बातें क्यों दोहराती जायँ ? सन सत्तावनके पराक्रममें पराजित होनेके कारण जो वीर और मुत्सद्दी हताश और निराश हो गये थे, उन्हें आश्रय देनेवाला हिमालय ही है। यदि भूस्तर-शास्त्रकी दृष्टिसे देखना हो, प्रागिशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करना हो, ऐतिहासिक दृष्टिसे शोध करनी हो, भव्यताके दर्शन करने हों, धर्मतत्त्वोंकी गाँठ सुलझानेका प्रयत्न करना हो, तो हिमालय ही वह जगह है, जहाँ सब प्रकारसे आपका समाधान हो सकता है; क्योंकि हिमालय आर्यावर्तके अक-अक युगके पुरुषार्थोंका साक्षी रहा है—वह यह सब जानता है।

यह कहना कठिन है कि हिमालय जानेकी पहली अिच्छा मेरे हृदयमें कब पैदा हुआ। शायद मेरे जन्मके साथ ही वह भी जन्मी होगी। जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ, बहुत सम्भव है कि वह वंश-परम्परागत राष्ट्रीय भावना रही हो। जब यात्राका विचार करते हैं, तो

मनमें यह खयाल पैदा होता है कि हम अपना घर छोड़कर परदेश जा रहे हैं। पर जब-जब भी मैंने हिमालय जानेका विचार किया है, तब-तब मेरे मनमें यही भावना प्रबल रूपसे अुठी है कि मैं स्वदेश जानेवाला हूँ, नहीं-नहीं, स्वग्रह जानेवाला हूँ, और इस विचारने मेरे मनको हमेशा गुदगुदाया है। आज भी जब कोअी हिमालयकी बात छेड़ता है, तो मुझे अतनाही आनन्द होता है, जितना ससुरालमें रहनेवाली बहूको मायकेकी बात सुनकर हुआ करता है। लड़की जब मायकेसे दूर जा पड़ती है, तो वह दिन-रात अपने मायकेको और मायकेवालोंको ही विसृष्ट करती है। इस विसृष्टनेका नतीजा यह होता है कि मायकेका प्रत्यक्ष चित्र अेक ओर रह जाता है, और वह अपने मनमें अेक प्रेम-चित्रका निर्माण कर लेती है। उसके अपने लिये यह प्रेम-चित्र ही अेक यथार्थ वस्तु बन जाती है। विसृष्टनेका, चिन्तनका, गुण ही यह है कि दिल जिस चीज़को जैसी देखना चाहता है, दिलकी भावना कुछ अैसी बनती जाती है कि वह चीज़ वैसी ही मालूम होने लगती है। दुनियामें किसीका यथार्थ—यथातथ—ज्ञान होता है, तो भले हों; पर जिसे हम अनुभवका प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, उसपर भी हमारी अिन्द्रियोंका रंग चढ़ा ही रहता है, वह निरा ज्ञान नहीं होता। प्रेम-चित्रमें रंग अिन्द्रियोंका नहीं, हृदयका होता है, आदर्श भावनाओंका होता है। और, इसी कारण वह चित्र हमारे जीको विशेष निकटका और विशेष रूपसे सच्चा प्रतीत होता है। तर्कवादी चाहे इस चित्रको ग्याटा मानें, पर संसारका अनुभव और संसारका रहस्य सभी कुछ तर्ककी छलनीमें चाला नहीं जा सकता। तर्क सोचता है कि मैंने जो व्यवस्था बाँध दी है, जो क्रम तय कर दिया है, दुनियाको वह मानना ही चाहिये; जो मेरे गले नहीं अुतरता वह सत्य हो ही नहीं सकता। अस्तु।

आगे हिमालयके जो शब्द-चित्र मैं देनेवाला हूँ, वे प्रेम-चित्र ही होंगे। जिस वस्तुसे प्रेम हो जाता है, उस वस्तुका प्रेम-रहित विचार हो ही नहीं सकता। इसलिये मुझसे प्रेम-चित्र छोड़ दूसरी किसी चीज़की अपेक्षा कोअी रखे ही क्यों?

भीमताल

हिमालयके पाँच विभाग माने गये हैं। काश्मीर, जालन्धर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड), कुमाँ (कूर्माचल), और नेपाल। उत्तराखण्ड परम पवित्र समझा जाता है। गंगोत्री, जमनोत्री, केदारनाथ, बदरीनारायण, पंचप्रयाग, और पाँच केदारनाथ, उत्तर काशी, ज्योतिर्मठ तथा तुंगनाथ, अित्यादि प्रख्यात तीर्थस्थान इसी विभागमें हैं। सन्त-महन्त इसी विभागको तपस्याके लिये पसन्द करते थे। परन्तु कहा जाता है कि यात्राके मार्ग और साधन सुगम हो जानेसे आजकल वहाँ तीर्थयात्री बहुत जाते हैं। इसलिये अच्छे-अच्छे साधु प्रायः उत्तराखण्डको छोड़कर चले गये हैं। वे ज़्यादातर अप्रकट रूपसे कुमाँमें रहते हैं। कुमाँ प्रान्त रमणीय और उपजाऊ है। इसी प्रान्तमें स्वामी विवेकानन्दका मायावती मठ बना हुआ है।

मायावती अलमोड़ासे कोसी पचास मील दूर होगा। प्रवृत्तिमें डूबे हुए हमारे-जैसे लोगोंको चौबीसों घण्टोंकी निवृत्ति मिले, तो उसे भी हम पचा नहीं सकते। शायद इसी अुद्देश्यसे स्वामी विवेकानन्दने मायावतीमें एक छापाखाना चलाया, और वहाँसे हिन्दुस्तानको जगानेके लिये अथवा जागे हुए हिन्दुस्तानका सँदेश दुनियाको सुनानेके लिये, वे मद्राससे निकलनेवाली 'प्रबुद्ध भारत' नामक मासिक पत्रिकाका मायावती ले गये। वहाँ वे आध्यात्मिक पाठशाला स्थापित करना चाहते थे। अलमोड़ा जानेके लिये रेलसे काठगोदाम तक जाना पड़ता है। वहाँसे अलमोड़ा सैंतीस मील है।

बरेली जंक्शन तक खचाखच भीड़ थी। बादमें भीड़ छूटने लगी। हलद्वानी स्टेशनपर कुछ मुसाफ़िर उतर गये। काठगोदाम स्टेशन 'टर्मिनस' है। वहाँ पहुँचते तक तो बहुत ही थोड़े आदमी रह गये थे। इसलिये कुछ अुदासी-सी मालूम होती थी। न जाने क्यों मुझे 'बरियल ऑव् सर जॉन मूर' नामक कविताकी सहसा याद आयी। मैंने कहा — "बाबा, स्वर्गारोहणके समय पाण्डवोंके दिलमें भी इसी तरहके भाव अुठे होंगे। भीड़ तो पीछे

रह गयी; और हम अकेले हिमालयपर चढ़ रहे हैं।” पाण्डव ही क्यों, हरएक जीवके लिये यही बात लागू है। स्नेहियोंका समूह और अन्द्रिय-कलाप अकेले वाद अंक छोड़ते चले जाते हैं, और आखिर धर्म-कर्मको साथ लेकर ही मनुष्य यम-वाट चढ़ता है।

परन्तु यह अुदासी क्षणजीवी थी। हम कोअी मील-डेढ़-मील ही गये होंगे कि हिमालयका असर मालूम होने लगा। पास ही रामगंगा बह रही थी। रामगंगाने कहा — “बच्चा, तू अपने दुनियावी विचारोंसे रखसत ले ले। यहाँ अनगिनत पेड़ अुगते हैं, सूखते हैं, और सड़ जाते हैं। बहुतसे पत्थर बनते हैं, और फूट जाते हैं। पहाड़ियाँ ढह जाती हैं, और गाँव घाटियोंमें समा जाते हैं। लेकिन यहाँ न कोअी हँसता है, न रोता है। यहाँ अिफ़रात है, अुड़ाअूपन है, वेफ़िक्री है। यहाँ जो पछतावा या चिन्ता करता है, वह पापी है।”

रामगंगा अैसा अुपदेश न करती, तो भी मेरी अुदासी काफ़ूर हो गअी होती। क्योंकि आस-पासके पेड़ोंपर वनस्पतियोंके असंख्य बालक खिल रहे थे। अुनकी सुगन्ध अुन्मादकारी थी, पर विलास-प्रेरक न थी। हम आगे बढ़े। पहाड़ चढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों अ़पर जाते, ल्यों-ल्यों पहाड़की शोभा और प्रकृतिकी भव्यता बढ़ती ही जाती थी। छोटे बच्चे जब समुद्रके किनारे जाते हैं, तो चाँदीकी-सी सीपें देखकर सबकी सब सीपें जेबमें भर लेनेको अुनका जी ललचा अुठता है। लेकिन अेकाध घण्टा घूमनेके बाद असंख्य सीपें देखकर वे अघा जाते हैं, और जेबोंमें भरी हुआ सारी सीपें निकाल कर फेंक देते हैं। बहुत हुआ तो यादगारके लिये अेकाध सीप खूब लेते हैं। पाँच मीलकी चढ़ाअीके बाद अेक बहुत ही सुन्दर पहाड़ आया। अुसके टूटे हुए अंचलमें रंग-विरंगे पत्थरोंके अैसे मंजदार स्तर थे, और हमारा रास्ता अितना टेढ़ा-मेढ़ा था (जिससे पहाड़के सभी पहलुओंकी सुन्दरता हम देख सकते थे) कि जी चाहने लगा — कहीं अिस पहाड़का महाराष्ट्रमें ले जा सकता, तो कितना अच्छा होता? दूसरे ही क्षण मनमें विचार आया, क्या कोअी राजा अपने ही महलकी सुन्दर लगनेवाली कोअी चीज़ अेक कमरेसे दूसरे कमरेमें कभी ले जाता है? सभी कमरे राजाके ही हैं। और जो चीज़ जहाँ नियोजित है, वहीं यथायोग्य

है । यदि महाराष्ट्रके लोग इस सुन्दरताका अनुभव करना चाहें, तो उन्हें यहाँ आना चाहिये । हम लोग पैसा कमानेके लिये या किसी तरहके दूसरे सांसारिक हेतुसे थोड़ा-बहुत स्थलान्तर करते हैं । सृष्टिकी शोभा देखनेके लिये अथवा देव-दर्शनोके लिये बाहर नहीं निकलते । हमें वह स्वच्छन्द-सामान्य होना है । क्या देव-दर्शन करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है ? हमारे जिन ऋषि-मुनियोंने चार धामोंकी यात्राको पुण्यकी परिसीमा कहा, वे सच्चे देशभक्त थे । आज हम लोगोंमें देशाभिमान है, पर देशभक्ति बहुत कम है । अन्तर्भावसे मैंने कहा — ‘पहाड़ भैया ! तुम यहीं सुखसे रहो ! मैं तुम्हें किसका अँगा नहीं, बल्कि अपने महाराष्ट्रीय भाजियोंको ही यहाँ भेजूँगा । वे जब आयें, तो तुम अपने अमृत-जलसे और सुगन्धित पवनसे उनका इसी तरह सत्कार करना ! यह लो, मेरे प्रणाम !”

हिमालयके पहाड़ बहुत ही विचित्र हैं । सामने एक गगनस्पर्शी पर्वत दिखायी देता है, और ऐसा जान पड़ता है कि उसके ऊपर पहुँचनेके बाद वहाँसे नीचे उतरना पड़ेगा । लगभग ऊपर पहुँचनेतक यही धारणा रहती है । लेकिन ऊपर पहुँचते ही क्या देखते हैं ? हम अपनेको दूसरे एक प्रचण्ड पहाड़की तलहटीमें पाते हैं । हरे राम ! अब इस पहाड़पर भी चढ़ना होगा । अगर ज्यादा थक नहीं गये हैं, तो दूसरे ही क्षण विचार आता है कि खैर, अधिक ऊँचे जायँगे, तो अधिक दूरतक देख सकेंगे; प्रकृतिकी विशालता दृष्टिगोचर होगी, और अगर आज ही हमारे भाग खुले, तो शायद बर्फके दर्शन भी हो जायँ ! माथेपर हिमका किरीट धारण करके वानप्रस्थ दशामें ध्यान करने बैठे हुए नगाधिराजके दर्शन करनेकी लालसा अब दुर्निवार हो गयी थी । लेकिन उस दिन बर्फके दर्शन करना हमारे भागमें बड़ा न था । ज्यों-त्यों अभी दूसरे पहाड़पर चढ़े ही थे कि तीसरा हाज़िर ! अब तो हमारा धैर्य छूट गया । क्या हरएक पहाड़ इस स्वर्गारोहणकी एक-एक सीढ़ी बनेगा ? धूप तपने लगी; हम भी तप गये, और प्रकृतिने रुद्रावतार धारण किया । आखिर हम भीमताल आ पहुँचे ।

मैंने सचमुचके या कल्पनाके सुन्दर-सुन्दर सरोवर देखे ही न हों, सो बात नहीं । सर बॉल्डर स्कॉटकी ‘सरोविहारिणी’ (लेडी ऑव् दि लेक)में

तो एक सुन्दर सरोवरका हृदयस्पर्शी शब्दचित्र भी देखा था । परन्तु भीमतालका प्रत्यक्ष दर्शन कुछ और ही था । इस प्रदेशका प्राचीन नाम 'षष्टिवात' है; क्योंकि आसपास छोटे-बड़े साठ सरोवर हैं । उनमें भीमताल और नैनीताल ये दो ही सुविख्यात हैं । और इन दोनों में नैनीतालकी छवि न्यायी ही है । नैनीताल भीमतालसे कोसी बारह-पन्द्रह मील दूर है । अब वह एक यूरोपियन शहर बन गया है । उसका वर्णन यथास्थान आयोगा । भीमताल एक बहुत ऊँचे पर्वतकी समतल भूमिपर तीन पहाड़ोंके बीच बने हुअे एक गड़हेके कारण बना है । इसलिये वह बहुत गहरा है । पानी स्फटिककी तरह निर्मल है । सरोवरका आकार एक आड़े-टेढ़े त्रिकोणके समान है । और इस सरोवरके सौन्दर्यकी पूर्ति करनेके लिये इसके बीचोंबीच प्रकृतिने एक छोटा-सा द्वीप बना दिया है । वहाँ पहुँचते ही हमें अितनी ठण्डी हवा लगी कि एक क्षणमें हमारा सारा ताप और थकान दोनों अुतर गये । सरोवरका किनारा कुछ अूबड़-खाबड़-सा था । किनारेपर जहाँ-तहाँ पत्थर बिछे हुअे थे; और उसे सीधे पार करके पानीतक पहुँचना आसान न था । फिर भी किसकी हिम्मत थी कि वह अितना सुन्दर पानी छोड़ दे ? मैं साहस करके अुतरा और पानीमें जा गिरा ! अररर ! यह पानी है, या हजारों बिच्छुओंका समूह ? मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे दुबले-पतले शरीरकी परिधि भी पानीकी ठण्डकसे सिकुड़कर दो-तीन अिंच कम हो गयी हो ! जान बचानेके लिये मैंने ज़ोरसे हाथ-पैर मारे । बादके आनन्दका मैं क्या वर्णन करूँ ? किनारेपर बैठे हुअे बाबा झल्लाये न होते, तो मुझे वापस किनारेपर आनेकी बात सूझती भी नहीं । मैं सोचने लगा — 'क्या बाणभट्ट द्वारा वर्णित अच्छोद सरोवर ऐसा ही रहा होगा ? मैं कादम्बरीमय हो गया । सामनेवाले द्वीपके पीछेसे नौकाविहार करती हुअी कादम्बरी या महाश्वेता अभी निकलेगी — इस तरहकी कल्पना-तरंगमें मैं मग्न ही था कि अितनेमें सचमुच पीछेसे एक श्वेत नौका आयी । लेकिन हाय रे हाय ! — गया; मेरा सारा काव्य काफ़ूर हो गया ! बोटमें तो हाथमें मछली पकड़नेकी बन्सी लिये हुअे दो सोलजर बैठे थे ! अगर मैं वाल्मीकि होता, तो अुन झख मारनेवाले (झख=झप=मछली — रामचरित मानस) अरमिक गोरोंको शाप देता ।

जब काव्य-गगनसे उतरा, तो पता चला कि पेटमें चूहे अछल-कूद मचा रहे हैं। पेटभर खाया; आँखभर सो लिया; हाथ-पैर भरकर थकावट उतारी, रामसिंहको जगाया, सामान उसके सिरपर चढ़ाया और रामगढ़के लिझे प्रस्थान किया। इस प्रकार आधे दिनमें हिमालयकी चौदह मीलकी यात्रा पूरी हुई।

१२

हिमालयकी पहली सिखावन

भीमतालसे आगे चले। रास्ता समतल था। दूर बायीं तरफ़ अक-क़तारमें रावटियाँ दिखायी देती थीं। दरियाफ़्त करनेपर मालूम हुआ कि वहाँ बीमार सिपाही रहते हैं। आखिर पहाड़की चोटीपर पहुँचे। अपार आनन्द हुआ; और चिर-परिचित समतल भूमि पाकर हम तेज़ीसे चलने लगे।

परन्तु हिमालयने तो मानो एक ही दिनमें सारे सबक सिखानेकी टान ली थी। उसने फिर हमारे अभिमानपर आघात किया। अरेबियन नाइट्समें अथवा पंचतंत्रमें जिस प्रकार एक कहानीमेंसे दूसरी नयी कहानी निकल पड़ती है, उसी प्रकार इस पर्वत-शिखरपर चौड़ा होकर बैठे हुए एक नया पहाड़ आ धमका। चार मज़दूरोंके कन्धोंपर आरामकुर्सीमें बैठे हुए किसी अमीरके जैसी गम्भीर भव्यतासे और अपनी महत्ताके परिपूर्ण भानका परिचय देनेवाली स्वाभाविकतासे यह पर्वत विराजमान था। अगर यह खड़ा होता तो ? तो मेरे खयालमें आकाशका चँदोवा फट ही जाता।

हमें इस बड़ भारी पहाड़पर चढ़ना था। इसलिझे हमने अपने पासके सामान-असबाबका सारा बोझ मज़दूरोंको दे दिया, अभिमानका बोझ तलहटीमें ही छोड़ दिया, और बादलोंकी तरह बिलकुल हलके होकर हम चढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते ठेठ साँझतक चढ़ते ही चले गये।

रास्तेमें एक तरहके फूल खिल रहे थे। उनका आकार बारहमासीके फूलों जैसा था, और रंग खूब सुनहले हुए दूधकी मलाईकी तरह कुछ पीला। सुगन्धकी मधुरताकी तो बात ही क्या ? सुगन्ध गुलाबसे मिलती

जुलती; पर गुलाबके समान अग्र नहीं। अन लज्जा-विनय-सम्पन्न फूलोंको देखकर मैं प्रसन्न हुआ। मेरा अध्ववेद नष्ट हो गया। जैसे सुन्दर और आतिथ्यशील फूलोंका नाम जाने बिना मुझसे कैसे रहा जाता? लेकिन रास्तेमें कोअी आदमी ही न मिलता था। मज़दूर तो अपने मज़दूर-धर्मसे वफ़ादार रहकर पिछड़ गया था। उसकी बाट जोहनेके लिये समय न था। और नाम जाने बिना आगे बढ़नेकी अच्छा न थी। अतनेमें पहाड़की एक पगडण्डीपरसे कोअी पहाड़ी अतरता हुआ दिवाओ दिया। हिमालयकी पगडण्डियाँ अतनी विकट हैं कि आदमी की कमर ही तोड़ दें। उस पहाड़ीसे मैंने हिन्दीमें—या सच वृत्तिये तो उस समय जिसे मैं हिन्दी समझता था, उस भाषामें—अन फूलोंके विषयमें कअी प्रश्न पूछे। उसने पहाड़ी हिन्दीमें जवाब दिया। परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि वह मेरे प्रश्नोंको समझ सका होगा। मैं तो उसके जवाबका एक ब्रह्माक्षर न समझ सका। किन्तु अिस सम्भाषणसे (मैं नहीं जानता, अिसे सम्भाषण कह सकते हैं या नहीं) फूलका नाम तो मुझे मिल ही गया। असीरियाकी शरशीर्ष लिपिमें लिखे हुआ शिलालेख पढ़कर कोअी विद्वान अनका अर्थ लगानेके लिये जितना प्रयास कर सकता है, अतनेही प्रयाससे मैंने पता लगाया कि फूलका नाम 'कूजा' था। मालूम पड़ता है, पहाड़ी भाषामें यह शब्द बहुत सुललित समझा जाता होगा; लेकिन खुद मुझे उस नामने बिलकुल मोहित नहीं किया।

दूर, बहुत दूर, अब क्षितिज दिखाओ देने लगा। वहाँ बहुत घने बादल थे। बादलोंपर संगमरमरके पर्वत-शिखर-जैसा कुछ दिखाओ देता था। तलहटीका हिस्सा बादलोंसे ढँक जानेके कारण अैसा जान पड़ता था, मानों मैनाक पर्वतका एक बच्चा आकाशमें अुड़ रहा हो। दूसरे दिन मुझे पता चला कि वह पवित्र नन्दादेवीका शिखर था।

कुछ अतरकर हम रामगढ़ आ पहुँचे। वहाँ एक छोटी-सी धर्मशाला थी। अथवा धर्मशाला कैसी? पाँच फुट अूँचे कमरोंकी वह एक अैसी क़तार थी, जिनमें एक-एक छोटे दरवाज़ेके सिवा किसी जगह छिद्र नामकी कोअी चीज़ नज़र नहीं आती थी! गधे भी उनमें लोटनेको राज़ी न होते। बनियेसे दाल, चावल और आलू खरीद लिये। बनियेने

दो तीन बरतन भी दिये। हमने सोचा — ‘कैसा भला बनिया है; रसोआँके बरतन भी देता है’ बादमें मालूम हुआ कि पहाड़में तो यह दस्तूर ही है। आटा-चाबुलेके दामोंमें बनिया बरतनोंका किराया भी लगा लेता है। फिर भी, वहाँका यह गिवाज बेशक अच्छा है। ज्यों-त्यों पकाकर थोड़ा-बहुत खाया, क्योंकि हमारी रसोआँ ठीकसे पकी नहीं थी।

धर्मशालाकी सूरत देखकर हमने बाहर खुलेमें सोनेका विचार किया और विछोना विछाया। अतनेमें हिमालयने कहा — ‘लो, नया सबक सीखो!’ अतनी सख्त ठण्ड लगने लगी कि मंत्र-मुग्ध साँप जिस प्रकार अपने आप पिटागमें घुस जाता है, उसी प्रकार हम भी विस्तर लेकर अब खूबसूरत मालूम होनेवाली उस गरम कोठड़ीमें जा घुसे। हमें यह विश्वास हो गया कि कमरेमें एक भी गिड़की न रखकर धर्मशाला बनानेवाले शिल्पीने मयासुरसे भी अधिक कौशलसे काम लिया है।

सारा दिन चलने ही रहे थे। पहली ही बार अतनी लम्बी बीस मीलकी यात्रा की थी। रातको पेटभर खाया भी न था। तिसपर ठण्ड नाम वृष्ट रही थी। असलिअे बहुत मनानेपर भी नींद तो पास फटकी तक नहीं। जब निद्रादेवी न आर्यी, तो अनुकी सदाकी वैरिन चिन्ता और कल्पना हाज़िर हो गयीं। मैं सोचमें पड़ा। घरबार छोड़कर, समाजकी सेवासे मुँह मोड़कर, पुस्तकें पढ़ना भूलकर, अखबारोंमें लेख लिखनेसे विरत होकर, मैं किसलिअे यहाँ आया? अश्वरने मुझे जिस स्थानमें नियुक्त किया उस स्वाभाविक स्थानको छोड़कर इस अनजान प्रदेशमें मैं क्यों आया? चूँकि मैं विरक्त हो उठा था, और चूँकि हिमालय वैराग्यका ननिहाल है, क्या इस विचारसे मैं यहाँ आया हूँगा? अगर हिमालयमें वैराग्य होता, तो वे गोरे भीमतालमें जाकर मछली क्यों मारते? रामगङ्गा वह बनिया ग्राहकोंसे ज़्यादा-से-ज़्यादा नफ़ा लेनेकी कोशिश क्यों करता? नीचे — मैदानमें — जिस तरहके लोग रहते हैं, उसी तरहके लोग इस पहाड़पर भी हैं। यहाँ भी स्त्री अपने पतिसे झगड़ती है; यह पोस्टमास्टर शिकायत करता है— ‘मेरा यह लड़का मेरा कहना नहीं मानता’ और लोग पशुओंसे उनकी ताकतसे कहीं ज़्यादा काम लेते हैं। निस्तन्देह, पहाड़ोंमें व्यापार नहीं बढ़ा है, रेल नहीं पहुँची है, बस्ती

घनो नहीं है, और अनि कारणोंसे समाजमें जो सड़ांध पैठती है, वह यहाँ पैठी नहीं है।

असि पराये देशमें न कोअी मेरी भाषा जानता है, न कोअी मुझे पहचानता है; न कोअी मेरा सगा-सम्बन्धी यहाँ है। और, जिस वैराग्यके लिअे मैं यहाँ आया, उसका यहाँ नाम-निशान नहीं है, असि खयालसे दिल परेशान होने लगा। असिलिअे बाहर कड़केका जाड़ा होते हुअे भी मैं अेक कम्बल ओढ़े बाहर निकला। मैंने निश्चय किया था कि हिमालयकी अपनो यात्रामें मैं सुअीसे सिला हुआ कोअी कपड़ा न पहनूँगा। दिनमें तो धोती, चादर और कान ढँकनेके लिअे मफलरभर अिस्तेमाल करता था। रातको बिछानेके लिअे अेक चटाअी और कम्बल रखता था, और ओढ़नेके लिअे अेक दोहर तथा बैंगनी रंगका अेक मुटका। जब बाहर निकला, तो अकाश निरभ्र था। नक्षत्र अद्भुत कान्तिमे चमक रहे थे। हिमालय आनेसे पहले मेरे अेक रथिक मित्रने नवसारीमें तारोंसे मेरी जान-पहचान कर दी थी। तारे मेरे दोस्त हो गये थे। पूर्णिमाके चन्द्रसे भी न डरनेवाले सभी तारोंको मैं पहचानता था। मैंने अनकी तरफ देखा। अन्होंने कहा — “भाअी, घराने क्यों हो? यह परदेस कैसा? क्या यहाँ तुम्हारा अपना कोअी सगा-सम्बन्धी नहीं? देवो, हम अितने सारे तुम्हारे दोस्त यहाँ ज्यों-के-त्यों मौजूद हैं। दो घड़ी सुस्ताओगे, तो दूसरे भी कअी अुम पहाड़की ओटसे जल्दी ही अपर आयेंगे। क्या तुम हमें भूल गये हो? क्या अपने और हमारे सिरजनहारको भूल गये हो? कहाँ गया तुम्हारा प्रणवमंत्र? कहाँ गया तुम्हारा गीतापाठ?”

“मन अेव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।”

“न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं

न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।”

“आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।”

यह सब तुम्हीं कहते थे न? आज ही सबेरे असि नदीने तुमसे क्या कहा था? असि पहाड़को देखकर तुम्हारे दिलमें कौनसे विचार आये थे? क्या अन कृजा-कुसुमोंकी विश्वसेवाका तुमपर कोअी असर नहीं हुआ? क्या नन्दादेवीका दर्शन निष्फल हुआ? छोड़ दो, असि हृदय-

दीर्घल्यको ! मनके अद्वेगको त्याग दे !” मेरी यह अश्रद्धा कि हिमालयमें भी बेराग्य नहीं है, गायब हो गयी । बाह्यसृष्टि और अन्तःसृष्टिमें तादात्म्य हो गया और मुझे शान्ति मिली । मैं आसानीसे सो गया ।

सबेरे अठकर आगे चले । आज तो उतरना था । जितना चढ़े थे उतना ही उतरना पड़ा । रोमके लोगोंको अपना महासाम्राज्य गँवाते समय भी अतना दुःख न हुआ होगा । कितनी मुश्किलसे चढ़े थे । लेकिन फिर भी आखिर उतरना पड़ा । हिमालयमें चलनेका एक नया अनुभव हुआ । अपूर चढ़ते समय थकावट तो होती है, लेकिन वह क्षणिक होती है । पर सीधे उतार परसे उतरते वक्रत जो कष्ट होता है, उससे आदमीकी हड्डी-पसली नरम हो जाती है । जैसे उतारका अनुभव होते ही मैं बोल उठा — “स्वर्गतक चढ़ना पड़े तो वह बेहतर है, लेकिन हे विधाता, जैसे उतारोंपरसे उतरनेकी सज़ा तो कदापि मेरे ‘शिरसि मा लिख, मा लिख, मा लिख’ !”

यहाँका यह प्रदेश भी बहुत ही रमणीय था । हमारे यहाँके सरोके पेड़ोंके समान चीड़ और देवदारके भव्य वृक्षोंकी झाड़ियाँ अनुपम छायाका विस्तार करती थीं । लेकिन सच्चा मज़ा तो तब आता था, जब नीचे गिरकर सूखे हुअे सलाअियों जैसे पत्तोंपरसे पैर फिसलते थे । उस वक्रत यही समझमें न आता था कि हँसे या रोयें ।

अस प्रदेशमें थोड़ी-सी खेती भी होती हुई मालूम पड़ी । क्योंकि रास्तेमें एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव आया । वहाँ दो-चार किसान नया अनाज पछोर रहे थे । हवाका नाम भी न था, असलिये दो आदमी एक चादरसे हवा झल रहे थे ।

रास्तेमें चीड़के बड़े-बड़े फूल बिखरे हुअे दिखायी दिये । अन फूलोंका वर्णन करना असम्भव है । ये फूल नारियलसे भी बड़े होते हैं । उनकी पँखुड़ियाँ बबूलकी लकड़ीसे भी सख्त होती हैं । फिर भी यह फूल आकारमें बहुत ही सुन्दर होता है । ऐसा लगता है, मानो हरएक डण्डलेके माथेमेंसे अँगुल्लेके बराबर असंख्य पँखुड़ियोंका एक फव्वारा ही फूट पड़ा हो । लेकिन रंग या सुगन्धका तो नाम ही न लीजिये । लकड़ीका ही रंग और लकड़ीकी ही

बास । देवदार और चीड़-जैसे वृक्ष हिमालयको ही शोभा देते हैं ।
प्रकृतिका विशाल वैभव देखकर मैं दिङ्मूढ़ हो गया, और गाने लगा —

रामा दयाघना, क्षमा करुनि मज पाही,

रामा दयाघना०

कोठिल कोण मी, न जाणिला हा पत्ता

आजवरि अज्ञानें, मिरविली विद्वत्ता,

देहात्मत्वाची स्थिति झाली अनुमत्ता.

येअुनि जन्मा रे ! व्यर्थ शिणविली आओ,

हैंचि मनि खाओ —

रामा दयाघना०

अर्थात् — हे दयाघन राम, मुझे क्षमा करके मेरी रक्षा करो ! मैं
कहाँका कौन हूँ, यह न जानते हुअे आजतक अज्ञानसे विद्वत्ता बघारता
रहा । देहात्मत्वकी स्थिति अनुमत्त हो गयी । मैंने पैदा होकर माँको व्यर्थ
ही कष्ट दिया । यही बात दिलको चुभती है ।

सचमुच ही निकम्मा जीवन बिताकर मैंने अपनी माताको अपने
भारसे मार ही डाला था । केवल जननीको ही नहीं, जन्मभूमिको भी ।
मुझे अपने अतीत जीवनसे मन-ही-मन घृणा हुअी । अज्ञानवश मैं
विद्वत्ताकी शेखी बघारता था; खुद अन्धकारमें रहकर लोगोंके सामने
प्रकाशकी बातें करता था ।

मैं अपना भजन आगे गाने लगा —

करुणासागरा ! राघवा रघुराजा !

विषयी पांगळा नका करूं जीव माझा

.

भुलुनि प्रपंचा रे, श्रमुनि भ्रमुनि ठायीं ठायीं,

हरुनि वय जाओ —

रामा दयाघना०

अर्थात् — हे करुणासागर राघव रघुराज, विषयोंसे मेरे प्राण अंग
न बनाओये । . . . अरे इस प्रपंचमें फँसकर जगह-जगह भ्रमित और
भ्रमित होकर आयु क्षीण होती जाती है । हे दयाघन राम . . . ।

भजनकी धुन सवार हो गयी । मैं उच्च स्वरसे ललकार रहा था ।
आगे यह चरण आया —

सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवल,

सच्चित्सुख तो तू पर बस केवल.

सामनेवाले पहाड़ने अकाअक गर्जना की —

सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवल.

हिमालयकी वह मेघ-गम्भीर गर्जना मुझे तो अशरीरिणी वाणी प्रतीत हुयी । सचमुच ही मैं सच्चित्सुखात्मक परब्रह्म हूँ । मैं असे भूलता हूँ, अमीलिअे पामर बन जाता हूँ । ज़रा देखो तो यह धीर-गम्भीर हिमालय किस प्रकार सच्चित्सुखकी समाधिका उपभोग कर रहा है ! अिस बर्फ़को देखो । गरमी और जाड़ा दोनों अिसके लिअे बराबर हैं ! देखो, अिस विशाल आकाशको देखो ! कितना शान्त और अलित है ! क्या मैं अिससे भिन्न हूँ ?

मुझपर अद्वैतकी मस्ती सवार हो गयी । अिसलिअे पीअुड़ा कब आ गया, अिसका मुझे भान भी न रहा । पीअुड़के पानीकी बड़ी तारीफ़ सुनी जाती है । क्षयरोगी यहाँका पानी खास तौरपर मँगाकर पीते हैं । पीअुड़ामें हमने भोजन बनाकर खाया, थोड़ा आराम किया, और आगे बढ़े । फिर अुतार । मेरे घुटनोंमें चमकें आने लगीं और दर्द होने लगा । अिसलिअे फिर यह वृत्ति जाग्रत हुयी कि मैं देहधारी हूँ । धीरे-धीरे मैं फिर आसपासकी सुन्दरता निहारने लगा ।

हिमालयकी खेती देखने लायक होती है । जहाँ चोटी और चौड़ी पहाड़ी होती है, वहाँ चोटीसे तलहटीतक दो-दो, चार-चार हाथ चौड़ी सीढ़ियोंके समान क्यारियाँ बनाते और अुनमें हाथसे खोदकर अनाज बोते हैं । अिन खेतोंका दृश्य नदीके पक्के घाटके समान दीख पड़ता है ।

जहाँ अुतार खत्म हुआ, वहीं अेक झल्ला पुल आया । अुस पुलको लोधियाका पुल कहते हैं । पुलके नीचेके पत्थर देखने लायक हैं । नदीके प्रवाहसे घिसे हुअे पत्थरोंका आकार बहुत सुहावना दिखायी देता था । जहाँ पानीके भँवर पड़ते हैं वहाँ तलेके खुले पत्थर भी गोल-गोल चक्कर काटकर तलेके पत्थरोंमें जो गहरे-गहरे गढ़े बनाते हैं, अुनका दृश्य मनोवेधक होता है ।

अस पुलके नीचे मैंने अेक साँप देखा । यहाँ असका अुल्लेख असलिअे कर रहा हूँ कि हिमालयके घने जंगलोंमें और दूसरे भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें मैंने जो दो-तीन हजार मीलकी यात्रा की, असमें सिर्फ दो साँप देखनेमें आये । अेक यहाँ, दूसरा गंगोत्रीके पास । अब फिर चढ़ाअी शुरू हुआ । दूरपर अेक पहाड़ी शहर दिग्याअी देने लगा । यह अलमोड़ा था या मुक्नेसर, मैं असका निश्चय न कर सका । साँझ होने लगी । और आखिर हम अलमोड़ाके पास पहुँचने लगे । वहाँ अेक चुंगीघर था । वहीं हमने अेक बैलगाड़ीकी लीक देखी । हिमालयमें बैलगाड़ीकी लीक सभ्यताकी परिसीमा समझी जाती है । हमारे यहाँकी किसी राजधानीमें संगमरमरका कोअी रास्ता हो, तो असके विषयमें लोग जिस अुमंग और अदबके साथ बोलते हैं, अुसी अुमंग और अदबसे पहाड़ी लोग अस 'कोर्ट रोड' के विषयमें बोलते हैं । बगल ही में मुसलमानोंका कब्रस्तान था । पर्वतकी वन्य शोभामें ये सफेद-सफेद कब्रें भोंडी नहीं लगती थीं । अकसर मुसलमान कुदरतकी शोभाको बिगाड़ते नहीं । साँझके समय ये कब्रें अैसी लगती थी, मानो चरागाहसे लौटी हुआ गायें आरामसे बैठी-बैठी जुगाली कर रही हों । ३७ मीलकी यात्रा कुशलपूर्वक की; लेकिन आखिर हम रास्ता भूल गये । हमने अलमोड़ाकी आधी परिक्रमा की । रास्ता छोड़कर लोगोंके आंगनोंमेंसे होते हुआ, और अनेक घूरे खूँदते हुआ, अन्तमें हम सात बजे बाज़ारमें पहुँचे । बाज़ारका रास्ता पत्थरोंसे पटा हुआ है । वहाँ 'हिल-बॉअिज़ स्कूल' का रास्ता पृच्छते-पृच्छते हम मेरे अेक मित्रके मकानपर पहुँचे । वे घरमें न थे । कहीं टहलने गये होंगे । हरखदेव नामका अेक लड़का अन्दरसे बाहर आया । असने हमारा स्वागत किया और कहा—“आअिये, भीतर आअिये; अस खटियापर बिराजिये । मैं स्वामीजीका शिष्य हूँ । वे बाहर गये हैं । अभी आते ही होंगे । कह रहे थे कि काकाजी आनेवाले हैं । आप दोनोंमेंसे काकाजी कौन हैं ?” थोड़ी देरके बाद स्वामी आये । बड़ौदेमें स्वामीको जैसा देखा था वैसे अब वे न थे । लम्बी-लम्बी दाढ़ी, लम्बी-सी चोटी, असपर अेक फीके गेरुअे रंगका मफलर और लम्बी सफेद कफ़नीवाली मूर्त्ति, अेक लम्बी नोकदार लकड़ी हाथमें लिये मेरे सामने आकर खड़ी

हुआ। प्रेमवश हम अक-दूसरेसे लिपट गये। बाबा प्रेमके अद्वेकसे रोने लगे। मैंने देखा कि स्वामी मराठीमें आसानीसे बोल नहीं सकते थे। हरअक वाक्यके साथ बरबस आनेवाले हिन्दी शब्दोंको हटानेकी उन्हें कोशिश करनी पड़ती थी।

रातको हमने क्या खाया, कितनी रात तक बातचीत करते बैठे रहे, और कब आँख झपकी, इसका मुझे थिलकुल स्मरण नहीं है। सिर्फ़ अतना याद है कि उस वक़्त स्वामी पुरश्चरण करते थे, इसलिअे दूधपर ही रहते थे। कुछ खाते नहीं थे। यहाँतक कि पानी भी नहीं पीते थे। नींद ऐसी आयी, मानो निर्विकल्प समाधि हो !

१३

अलमोड़ा

अलमोड़ा हिमालयकी अक शाखापर बनाया हुआ मनुष्योंका घोंसला है। अलमोड़ाकी हवा खास तौरपर मशहूर है। दूर-दूरके क्षयरोगी अप्रैलसे अक्टूबरके बीच यहाँ आकर रहते हैं। यहाँ वे चीड़के शानदार और ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंकी राह सन्-सन्-सन् बहनेवाली हवाका सेवन करते हैं, और रानी नौला नामके अक झरनेका पानी पीते हैं। इस मौसिममें चाहे जिस रास्तेसे टहलने निकलिये, अन मरीज़ोंका अकाध समूह जीनेकी अिच्छासे बड़ी मेहनतके साथ हाँफता हुआ और फेफड़ोंमें प्राण भरता हुआ ज़रूर नज़र आयेगा। राजयक्ष्माकी अस निस्तेज प्रजा और आस-पासकी लावण्यवती प्रकृतिके बीचका अन्तर तो स्वतंत्रता और परतंत्रताके भेद-सा जान पड़ता था। यह शहर ज़िलेका और कुमाऊँ परगनेका सदर मुक़ाम है। यहाँ ब्रिटिश अदालत है, छावनी है, पादरियों द्वारा चलाया जानेवाला अक कॉलेज भी है। ये लोग यहाँ अपना अक खासा अप-निवेश-सा बनाकर रहते हैं। यहाँसे ३७ मीलपर नैनीताल नामकी अक गन्धर्वनगरी है। इसलिअे अलमोड़ा गोरोंके आक्रमणसे बच गया है।

दूसरे दिन सबेरे अठकर हम घूमने गये। गरमियोंके दिन थे, फिर भी हमारे यहाँके शीतकालसे भी वहाँकी ठण्ड अधिक थी। आसपास

हरभेक घाटीमें सफेद-सफेद बादल आलसियोंकी तरह सोये हुअे थे । ऊपर आकाश निरभ्र था । उत्तरकी तरफ नन्दादेवीका शिखर सूर्यकी तरुण किरणोंमें सुवर्ण-मन्दिरकी तरह जगमगा रहा था । जहाँ अबतक सूर्य किरणें नहीं पहुँच पायी थीं, वहाँकी अरुण सदृश रक्तिमा जूपाको भी लजाती थी । हिमालयके घरमें शिखरोंका दारिद्र्य नहीं है । तो भी नन्दा-देवीकी सुन्दरता अतनी अधिक है कि ऐसा मालूम होता है, मानो हिमालयको भी उसपर गर्व हो । और अमीलिअे असि शिखरकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिअे अेक अनुचरकी तरह नन्दाकोटाका शिखर उसकी सेवामें उपस्थित है । नन्दादेवीका वर्णन मैं क्या करूँ ? पूर्वमन्वन्तरके ऋषि मार्कण्डेयने असि देवीका जो वर्णन किया है उसीको यहाँ दे दूँ, तो क्या वह बस न होगा ?

कनकोत्तमकान्तिस्सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।

देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥

असि देवीकी उपासनामें ऋषिको अतनी श्रद्धा है कि वह कहता है —

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।

सा स्तुता वृजिता ध्याता वशीकुर्याज्जगत्रयम् ॥

हमने नन्दादेवीकी दिशामें ही टहलने जाना 'दुम्स्त' समझा । हिमालयमें जगह-जगह देवियोंके निवासस्थान हैं । शाहीदेवी, धूरादेवी, सीतालीदेवी और पातालदेवी, ये चार अलमोड़ाकी चार दिशाओंकी रक्षा करती हैं । हिन्दू समाज-नेताओंकी दृष्टि कुछ अद्भुत है । जीवनके हरभेक अंगके साथ वे किसी-न-किसी तरह धर्मका सम्बन्ध जोड़ देते हैं ! अगर अलमोड़ा शहरको स्वतंत्र रखना हो, तो आसपासके ये चार स्थान अलमोड़ा-वासियोंके हाथमें रहने चाहियें । यह बात फ़ौजी दृष्टिसे देखनेवालेके ध्यानमें आसानीसे आ सकती है । अब यही बात अनि धर्मकारोंने लोगोंके सामने किस प्रकार पेश की है, सो देखिये । भक्ति और मुक्ति-दायिनी ये चार देवियाँ चार कोनोंमें विराजमान हैं । अनिके मन्दिरोंकी रक्षा करो, और अनि स्थानोंको पवित्र रखो, तो —

सैषा प्रसन्नवरदा नृणां भवति मुक्तये ।

मुक्ति यानी आज़ादी ।

और इस ऋषि-वचनका अनुभव लोगोंको हर जमानेमें हुआ है। शत्रुकी चढ़ाही होते ही सब मर्द जवान घरसे बाहर निकलकर अिन चार मन्दिरोंमें अिकट्ठा होते थे। और जबतक ये चार स्थान अुनके हाथमें हों, तबतक शत्रुकी क्या ताव कि वह अलमोड़ेके चीड़ या देवदारके सींकरूपी बालको भी बाँका कर सके ?

हम अस्कोटके रास्ते चीड़का जंगल देखने गये। बीचमें अेक छोटी-सी पहाड़ीपर जेल दिव्वाही दिया। स्वामीने मुझेसे कहा — ‘बंगालके सुप्रसिद्ध नेता अश्विनीकुमार दत्त अिसी जेलमें रखे गये थे। चीड़का जंगल पार करके आखिर हम बलहौटी नामक पर्वतपर पहुँचे। किसी समय अंग्रेज़ सरकारने अिसी जगहको शिमला बनानेका विचार किया था। जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिकासे लौटे, तो अुन्होंने अिस जगह अद्वैताश्रमकी स्थापना करनेका निश्चय किया था। लेकिन सुनते हैं कि जिस दिन अुन्होंने सरकारसे अुस जगहकी माँग की, अुसी दिन वहाँके कमिश्नरने वह स्थान पादरियोंको दे दिया। यहाँ अीसाअी बने हुअे पहाड़ी लोगोंकी बस्ती है। हरखदेवने कहा — “काकाजी, देखिये अिन पादरियोंकी चालाकी ! ये जब यहाँके लोगोंको अीसाअी बना लेते हैं, तो अुन्हें दूसरे प्रान्तोंमें ले जाते हैं, और दूसरे प्रान्तोंके अीसाअी बनाये हुअे लोगोंको यहाँ लाकर रखते हैं, ताकि समाजके साथ अुनका सम्बन्ध टूट जाय, और लोगोंमें भी अिन पादरियोंके खिलाफ़ द्वेष पैदा न हो। हमारे प्रान्तके कितने लोग अिस तरह अीसाअी बना लिये गये हैं, अिसका कोई पता नहीं। दूसरे प्रान्तके अनेक लोगोंको अीसाअी बनते देखकर अुस प्रान्तके लिअे भी हमारे दिलमें नफ़रत पैदा होती है।” हरखदेवकी यह मार्मिक आलोचना सुनकर मुझे बहुत मज़ा आया। वहाँसे हम नीचे पातालदेवीकी तरफ़ अुतरे। साढ़े सातका वक्त था। और, जब हम अुतर रहे थे, तो घाटीमें अँघूँते हुअे बादल स्कूली लड़केकी तरह आँखें मलते हुअे अुत्तरके हिम-प्रदेशकी पाठशालाकी ओर जाने लगे थे। पातालदेवीका स्थान साधुओंके रहनेके लिअे विशेषरूपसे अुनुकूल है। वहाँ खूब अेकान्त है। पानीका सुन्दर झरना है, और कलेजेको ठिठुरा देनेवाले पहाड़ी झंझावतसे यह स्थान सुरक्षित है। यहीं

पहाड़के अस तरफ़ एक अेकाकी वृक्ष है, और वह अितना बड़ा है कि दूर-दूरके पहाड़ोंपरसे दिखायी देता है। सिंहगढ़पर तानाजीकी घाटीका जो महत्व है, वही यहाँ पातालदेवीके अस स्थानका है। पातालदेवीसे आगे चढ़ते-चढ़ाते हम अपने डेरेपर लौटे। मुझे भूख तो ऐसी कड़ाकेकी लगी थी कि अगर मैं मुलायम कंकर बीनकर खाता, तो वे भी हज़म हो जाते, असमें मुझे कोओ शक नहीं।

घरपर नेपाली भिश्तीने पानी तैयार रखा था। उससे हम नहाये। सारी थकान अुतर गयी, और शरीरमें फिर दस मील चल सकने लायक अुत्साह आ गया। हमने अपना नित्यपाठ समाप्त किया। अितनेमें हरखदेव खाना ले आया। असमें 'ओगल' नामके अेक जंगली बीजके आटेका हलुवा भी था। दोपहरको हम हिल-ग्रॉजिज़ स्कूलके संचालक श्री हरिराम पाण्डे वकीलसे मिलने गये। हरिराम पाण्डे अेक सात्विक और संस्कारी सज्जन हैं। साधारण शिष्टाचारी प्रश्नोत्तरोंके बाद अुन्होंने मुझसे यह सलाह पृछी कि 'हिल-स्कूल' सरकारी ग्राण्ट ले या न ले। मैंने कहा — "ग्राण्ट विलकुल न लेनेमें ही बुद्धिमानी है। थोड़ीसी मददके लिअे हम अपनी स्वतंत्रता गँवा देते हैं, और जब अिन्स्पेक्टरको खुश करनेकी वृत्ति अेकवार हममें पैदा हो जाती है, तो फिर जन-हित किस बातमें है असका विचार हमें नहीं रहता। सरकारकी नीति तो स्पष्ट है — 'युवर मनी, अवर कण्ट्रोल' (धन तुम्हारा, सत्ता हमारी)।" पाण्डे साहबको यह अन्तिम सूत्र बहुत ही पसन्द आया। और अुन्होंने ग्राण्ट न लेनेका निश्चय किया। फिर अुन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक मुझसे पृछा — "आप लोग साधु बनकर धूमते फिरते हैं, असके बदले समाज-सेवा करें तो क्या हर्ज है? साधु लोग नाहक यहाँसे वहाँ भटककर समाजके लिअे भाररूप क्यों हों?" अुन्हें क्या पता कि समाज-सेवाका भूत अुनकी बनिस्वत मुझपर ज़यादा सवार था? और अससे छुटकारा पानेके लिअे ही मैं यहाँ हिमालयमें आया था।

समाज-सेवा करनेके लिअे भी अधिकार चाहिये। आज अनधिकारी लोग सेवा-कार्यकी जिम्मेदारी लेकर समाजमें जो गड़बड़ी पैदा करते हैं, अससे वे मुँह मोड़ लें, तो भी बड़ी-से-बड़ी समाज-सेवा हो सकती है।

डर यह है कि कहीं युरोपकी तरह यहाँ भी समाज-सेवा एक पेशा न बन जाय। विलायतमें किसी समय वैरिस्टर एक बहुत निरपेक्ष समाज-सेवक था। वही आज जोंककी तरह अपने मक्किलोंका खून चूसनेवाला बन गया है। मैंने वकील साहबसे पूछा — “आप जो समाज-सेवा कर रहे हैं, क्या उसके सिलसिलेमें आपको यह अनुभव नहीं हुआ कि कुछ निकम्मे लोग बीचमें नाहक टाँग न अड़ायें, तो आपका काम थोड़ी मेहनतसे ज़्यादा अच्छा हो?” उन्होंने उत्तर दिया — “अजी साहब, यह अनुभव तो पग-पगपर होता है। सारी शक्ति अिन नालायकोंके विरोधका सामना करनेमें ही खर्च हो जाती है। और आखिर आदमी निराशावादी बन जाता है।” मैंने कहा — “तब इस बारेमें हम लोग आपका अभयदान दे रहे हैं, यह क्या कम है? आत्मोन्नति और समाज-सेवामें विरोध नहीं है। फिर भी इस काल्पनिक विरोधको स्वीकार कर मैं कहता हूँ कि आत्मोन्नतिकी साधना करना हरअेकका कर्त्तव्य है। समाज-सेवाके लिअे यह नहीं कहा जा सकता। समाज-सेवाके लिअे बहुत बड़ी कुशलताकी ज़रूरत है। वह एक तरहकी कसरत है। हमारा अपना पतन न हो, और समाज भी परावलम्बी तथा निष्प्राण न बने, इस आदर्शको सँभालते हुअे ही समाज-सेवा करना उचित है। नहीं तो धर्म करनेमें अधर्मको पोषण मिलेगा।” पाण्डेजी कुछ बोले नहीं। कदाचित् उन्हें सन्तोष हो गया होगा। अलमोड़ाकी हवाके बारेमें उन्होंने कहा — “आप अपने मैदानवाले लोगोंसे कहिये कि तपेदिकके अिलाजके लिअे यहाँ आना हो, तो बीमारीके शुरू होते ही यहाँ आनेमें फ़ायदा है। बहुतेरे लोग बिलकुल आखिरमें यहाँ आते हैं, और यहाँकी तीक्ष्ण हवा बरदाश्त न कर सकनेके कारण नाहक मौतके शिकार होते हैं। मेरा यह सँदेसा आप ‘देश’ के लोगोंतक ज़रूर पहुँचावियेगा।” पुस्तकोंसे मैं अूब गया था, फिर भी अुनके यहाँ ‘शब्दकल्पद्रुम’ की मोटी-मोटी ज़िल्दें देखकर मेरी लालची नज़र अुनपर पड़े बिना न रही।

लौटते समय हम आशाबाबू नामक एक बंगालीके घर गये। वे ब्राह्मो थे। अुनके साथ वेदान्त, तंत्र, शक्तिपूजा और ब्राह्मधर्मपर खूब चर्चा हुअी, और साँझ होते ही हम ग्रेनाइट पहाड़ीपर पहुँचे। वहाँसे

चारों ओरका दृश्य भव्य और मनोहर लगता था। नन्दादेवीने सन्ध्याका पीत वस्त्र परिधान किया था, और सन्ध्याको आशीर्वाद देकर वह उसे बिदा कर रही थी। तारे चमकने लगे थे, आकाशगंगामें हंस नहा रहा था। बहुतसे देवता भी जल-विहार कर रहे थे। उनके दर्शनसे पावन होकर हम धीरे-धीरे घर आये।

घरपर भिस्ती भक्तिभाव पूर्वक स्वामीसे गीता सीखनेकी राह देखता बैठा था। सुबहके नौकरको शामके वक्त प्रिय शिष्य बना हुआ देखकर मेरा हृदय हर्षसे अमड़ अुठा। थोड़ी देरके बाद श्रद्धाधन दरजी सांजीजी भी आया। इस आदमीने अपनी ज़िन्दगी जुझेमें तबाह कर दी थी। स्वामीके सम्पर्कसे उसके दिलमें उपरति अुदय होने लगी थी। मैंने स्वामीसे कहा — “आज ‘अपि चेत्सुदुराचारो’ पर प्रवचन कीजिये।”

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

जब स्वामीने इस श्लोकका रहस्य हिन्दीमें समझाया, तो सांजीजीका कण्ठ भर आया। उसने कहा — “नहीं सामीजी, हम अभी शुद्ध नहीं हुअे। हमको अब भी कभी-कभी मोह होता है। पाप हमारे दिलमें घुस आता है।” मेरे दिलमें विचार आया — “हमारे धर्मोपदेशक दक्षिणाके पीछे मरते हैं। अिन गरीब लोगोंको धर्मका प्रसाद कौन बाँटेगा? कौन अिन्हें आश्वासनके वचन सुनायेगा? पतितोंको अस्पृश्य मानकर हमारे धर्मगुरु स्वयं अस्पृश्य बन गये हैं, और हिन्दू धर्मका पतित-पावनत्व खो बैठे हैं। गुहक और शबरीको अपने आत्मीय माननेवाले रामचन्द्रकी अब यह भरतभूमि नहीं रही।” अिस प्रकार विचार करता हुआ मैं बिस्तरपर लेटा। बाहर सन्-सन् करता हुआ पवन मेरे विचारोंके साथ ताल दे रहा था।

खाकीबाबा

हिमालयसे लौटकर आये हुअे मनुष्यसे सब कोअी अेक ही सवाल पृछते हैं — ‘वहाँ आपको कोअी साधु-महात्मा मिले ?’ लोगोंका क्या खयाल है, सो मैं जानता नहीं । क्या लोग यह समझते हैं कि हिमालयमें पेड़ोंके बदले साधुओंका ही बन अुगता है ? जिस तरह मैं हिमालय गया था अुसी तरह बहुतसे साधु हिमालय जाते हैं । जैसे वह हाँटलवाला विशारद वहाँ जा बसा है वैसे ही कअी साधु भी हिमालयमें रहते हैं । लेकिन लोगोंको अैसे साधुओंकी तलाश नहीं । अैसे साधु तो अुनके घर भी भीख माँगने आते हैं । अुन्हें तो चाहिये त्रिकालज्ञानी, चमत्कारपटु और विना कुछ खाये जी सकनेवाले महात्मा ! जिनके चरणभर छूनेसे मोक्ष प्राप्त हो जाय, या कोअी अजीब कीमिया मिल जाय, अथवा और कुछ नहीं, तो कम-से-कम किसी बीमारीकी अद्भुत जड़ी-बूटी ही अनायास हाथ लग जाय ! राजनीतिमें दिलचस्पी रखनेवाले लोग पृछते हैं — ‘हिन्दुस्तानके भविष्यके विषयमें आपको हिमालयके साधुओंसे कुछ मालूम हुआ है ?’

अिन सब प्रश्नोंका जवाब मैं अेक ही वाक्यमें दे डालता हूँ । मैं साधुओंकी तलाशमें गया ही न था । अुपदेशके रूपमें मुझे जो कुछ मिला था, वह मेरे लिये काफ़ी था । मुझे तो अपनी साधना स्वतः ही करनी थी । जिस प्रकार पराव्रजजीवी रहकर दूसरेका आश्रित बनना लज्जास्पद है अुसी प्रकार किसी साधुकी तपश्चर्यामेंसे भीखका टुकड़ा पानेकी और अुसके भरोसे सुखी होनेकी अिच्छा भी आध्यात्मिक दग्ध्रताकी चाँतक है । साधुओंके दर्शनसे हमारा हृदय पवित्र हो, अुनका वैराग्य हमारे अन्दर अुद्भूत हो, अुनकी अीश्वरनिष्ठा हममें पैदा हो, और अुन्हींके जैसी तपस्या करनेकी निश्चय शक्ति हमें भी प्राप्त हो, यह अिच्छा अुचित है । लेकिन अुनके प्रसादके रूपमें हमें कुछ मिले और हम अनायास, संतमेंतमें, सुखी बन जायँ, अैसी अिच्छामें तो पामरता ही भरी हुअी

है। बाज़ारसे साग-तरकारी खरीदते वक्त पूरा तुलवानेके बाद भी दो-चार आलू या मिर्च और माँगनेवाला ग्राहक; देश-सेवामें एक सामान्य सैनिककी योग्यता रखते हुए भी अपनी सेवासे ही राष्ट्रको स्वातंत्र्य मिलता हो, तो उसी एक शर्तपर अपनी बलि देनेकी अच्छा रखनेवाला देश-सेवक; अंग्रेज़ लोगोंसे माँग-माँगकर और उन्हें तंग कर-करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी अुम्मीद रखनेवाले; और महात्माओंके चरण-स्पर्श या वस्त्र-स्पर्शसे या उनका जूठन खाकर यह आशा रखनेवाले कि उनकी तपस्याका कुछ अंश त्रिलोकी तरह हमारे अन्दर भी सहज ही दाखिल हो जायगा — ये सभी रंक हैं। बिना मेहनतके मोक्ष भी मिले, तो उस मोक्षका मूल्य ही क्या ? और इस पिशाचवाधाको मोक्ष कहा भी कैसे जाय ?

साधुओंके विषयमें हम लोगोंमें बहुत ही अजीब खयाल पाये जाते हैं। कुछ लोग तो साधुको एक जीती-जागती जड़ी-बूटी या मंत्र ही समझते हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि वे संसारको ठगनेवाले, ढोंग-धतूरा चलानेवाले और मुफ्तका माल अड़ाकर मस्जिदमें सोनेवाले आलसी ठग हैं, क्योंकि वे न तो कोई समाज-सेवा करते हैं, और न द्रव्योपार्जन ही। एक राष्ट्र-भक्तने मुझपर अपनी यह अच्छा प्रकट की थी कि बिन सारे साधुओंको पकड़कर उनकी एक फ़ौज बनायी जाय और उसे क़वायद सिखाकर अंग्रेज़ सरकारसे लड़नेके लिये भेज दिया जाय। आज सब कोई जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें साधुओंकी संख्या बावन लाख है; और अर्थशास्त्र जाननेवाले हमारे विद्वान लोग राष्ट्रकी शक्तिका अितना अपव्यय भला कैसे सह सकते हैं ? इसलिये अिन बावन लाख साधुओंके साथ क्या किया जाय, इसी चिन्तासे कितने ही देश-चिन्तक स्रुक्कर काँटा हो रहे हैं ! संसार असार है, उसमें एक रोटी और दो लँगोटीकी ज़रूरत रखकर निर्लेप रहो, और हरिनाम लो अथवा आत्म-चिन्तन करो — यों कहनेवाले साधुओंको खाकी पोशाक पहनाकर हाथमें बन्दूक और संगीन ढेकर और कमरबन्दमें प्राणघातक बारूदके कारतूस बंधवाकर 'लेफ्ट, राइट, लेफ्ट' करानेका दृश्य क्या हिन्दू-धर्मकी विजयका सूचक होगा ?

यह कोअी नहीं कहता कि आजके साधु आदर्श साधु हैं। खाकीबाबा हमेशा कहा करते — ‘जैसा जुग वैसा जोगी।’ जोगी न तो आसमानसे टपकते हैं, और न ज़मीनमेंसे पैदा होते हैं बल्कि वे तो अपने ज़मानेके समाजमेंसे ही उत्पन्न होते हैं। अपने ही दोषोंको साधुओंमें अंतरा हुआ देखकर सांसारिक लोगोंको अितना अचरज क्यों होता है? यदि साधु वर्गको सुधारना है, तो समाजको ही सुधारना पड़ेगा। अर्थात् हरअेक अपने-आपको ही सुधारे। हमने तो सभी साधुओंको अेकसा ही माना है। साधुओंमें घुलमिलकर अुन्हें परखा किसने है? कुछ साधुओंमें आपके संसारी लोगोंकी अपेक्षा अधिक कुलीनता, अधिक भूतदया और अधिक अुग्रमशीलता होती है। अुन्हें दुनियाका जो ज्ञान होता है, अुतना प्राप्त करनेके लिये आप अपनी सारी लायवेरियाँ अुलट डालें, तो भी वह पर्याप्त न होगा।

अेक दिन सबेरे हम जल्दी अुठकर ‘ग्रेनाडिट’ पहाड़ीपर टहलने गये थे, और वहाँ अेक देवदार वृक्षके नीचे बैठकर अिमर्सनके ‘सर्कल्स’ पर बातचीत कर रहे थे। अितनेमें दाहिनी तरफ़ दूर बादलोंसे ढँका हुआ अेक छोटा-सा क़िला दिखायी दिया। मैंने स्वामीसे पृछा — “यह अेक छोटे टापू जैसा क्या दिखायी देता है? कोअी मन्दिर या साधुओंका अखाड़ा तो नहीं है?” स्वामीने कहा — “यही तो खाकीबाबाका खगमरा कोट है। हम दोपहरमें वहाँ चलेंगे। खाकीबाबा अेक दिव्य पुरुष हैं। मैं अक्सर अुनके पास जाया करता हूँ। अेकादशीके दिन अुनके यहाँ सारी रात भजन होता है। वहाँ अेक बंगाली साधु भी आता है। वह जितना भक्त है, अुतना ही अप्रतिम गायक भी है।”

अपने निश्चयके अनुसार हम दोपहरमें खाकीबाबाके दर्शनोको गये। अलमोड़ेकी गोदसे अुतरकर हम अेक नौअे (झरने) के पास पहुँचे। वहाँ मिसरी-सा मोटा पानी पिया और खगमरा पहाड़ी चढ़कर ‘थानक’ में पहुँचे। बाबा लोगोंका ‘टाअुन-प्लैनिंग’ देखने-लायक़ होता है। वे अेक-दूसरेकी फ़ैशनका अुनुकरण करनेवाले शहरियोंके समान भेड़-चाल चलनेवाले नहीं होते। अुनके अखाड़ोंकी रचनामें प्रयोजन होता है। अुनका हरअेक भाग साभिप्राय बना होता है। सारी रचना अुपयुक्त,

प्रमाणवद्ध और काव्यमय होती है। अश-आरामकी सुविधाके बिना मकानोंमें कितनी सुन्दरता पैदा की जा सकती है, इसका एक प्रदर्शन ही वहाँ मौजूद रहता है। खुद खाकीबाबा जिस झोंपड़ीमें रहते थे, वह एक अठकोनी झोंपड़ी थी। ऊपर लकड़ीके लम्बे-लम्बे तख्तोंका छप्पर था, जो ऊपरकी तरफ बरसातसे और भीतर धूनीके धुँसेसे विवर्ण हो गया था। बीचमें एक बड़ी धूनी जल रही थी। धूनीमें लोहेके दो-चार चिमटे और एक दो-त्रिशूल खोसे हुअे थे। पास ही लकड़ीका एक लम्बा, चौड़ा और मोटा तख्ता था, और उसपर खाकीबाबाकी भव्यमूर्ति विराजमान थी। आसपास पहाड़ी शिष्यवृन्द बैठा था। धूनीके पास एक लुटियामें पानी गरम हो रहा था। हम अन्दर गये। झुककर बाबाको प्रणाम किया और बैठे।

बाबाने बड़े प्रेमसे हमारा स्वागत किया। स्वामीने अन्हें हम दोनोंका परिचय कराया। यह सुनते ही कि मैं बेलग्रामसे आया हूँ, वे बोल उठे — “आप बेलग्रामके हैं या शाहपुरके?” मैं दंग रह गया। बेलग्राम और शाहपुर पास-पास बसे हैं। उनके बीच पूरा एक मीलका भी फासला नहीं है। अच्छा, तो हिमालयके अस साधुका बेलग्राम और शाहपुरके भेदका भी पता है! “मैं शाहपुरका हूँ।” खाकीबाबा बोले — “आपका शाहपुर तो साँगलीकी हदमें है। वह ब्रिटिश राजमें नहीं। आपके यहाँ मारवाड़ी लोगोंने बालाजीका जो मन्दिर बनवाना शुरू किया था, वह पूरा हुआ?” मैंने वहाँका सारा हाल सुनाया। बादमें, मैंने क्या क्या किया, कहाँ-कहाँ घूमा, सो सब अन्होंने मुझसे पूछ लिया। मैं कुछ कम घूमा न था। फिर भी मैं जिस गाँव या शहरका नाम लेता, वहाँकी सारी तफसील सुनाकर वे अस तरह सवाल पूछने लगते, मानां वे वहींके वाशिन्दा हों।

असके बाद मरठेकर बाबाकी वारी आयी। बाबा रामदासी सम्प्रदायके थे। असलिअे अन्के मठ, अन्के सम्प्रदाय आदि सभी चीज़ोंके बारेमें पूछ-ताछ की। घड़ीभरमें ही हमने देख लिया कि हिन्दुस्तानके भूगोल और धार्मिक अतिहासके बारेमें खाकीबाबाका ज्ञान ‘अग्नीरियल गैज़ेटियर्स’ से बढ़कर था; और यह सब स्कूल या कॉलेजमें बिना गये,

और बिना 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' के सदस्य बने प्राप्त किया गया था ! .खुद हमारे ज्ञानकी लगभग समाप्त होते देख अन्होंने हमें ज़्यादा सवाल पूछकर लज्जित नहीं किया ।

बादमें हमने कहा — “ हम गंगोत्री, जमनोत्री, केदार, बदरी आदि तीर्थस्थानोंकी यात्रा करना चाहते हैं । और स्वामीको तो कैलाश भी जाना है । ” फिर क्या था । अन्होंने हिमालयके सभी तीर्थोंका वर्णन करना शुरू कर दिया ! हमें परेशान-सा देखकर अन्होंने अपनी बगलमें पड़ी हुअी लकड़ीकी एक तखती अुठायी और सफ़ेद मिट्टीकी एक डली लेकर चटसे एक काम चलाअू नक़्शा बना दिया । उसमें बदरीनारायण ज्ञानेके चार रास्ते दिखाये गये थे । वे कहने लगे — “ ज़्यादा-से-ज़्यादा रेलकी यात्रा करके कम-से-कम पैदल चलना हो, तो यह रास्ता है; खाने-पीनेका सुभीता चाहते हो, तो यह रास्ता है; जल्दी पहुँचना हो, तो यह तीसरा रास्ता है । लेकिन अस रास्तेके लिये आपको अपने साथ काफ़ी .खुरदा (चिछर) रखना होगा । आपके 'नोट' वहाँ नहीं चलेंगे, और गरीब लोगोंके पास काफ़ी चिछर भी नहीं मिलेगी । ” चौथा रास्ता अन्होंने अपने रास्तेके नामसे बतलाया । उसमें जंगल और सृष्टि-शोभा अधिकसे अधिक थी । यह रास्ता बिल्कुल निर्जन था, और दो बस्तियोंके बीच कम-से-कम चालीस मीलका फ़ासला रहता था ।

मैंने पूछा — “ महाराज, आप बदरीनारायण कब पधारे थे ? ” अन्होंने कहा — “ कुल मिलाकर सत्रह बार गया हूँ ! ” स्वामीको कैलाश जाना था, असलिये मैंने बाबाजीसे पूछा — “ आप कैलाश भी गये होंगे ? ” अन्होंने कहा — “ आठ बार ! ” और, वे अस तरह वहाँका वर्णन करने लगे मानो सारे रास्तेका चित्र ही उनकी आँखोंके सामने मौजूद हो ! उसके बाद कैलाशके रास्तेपर रहनेवाले मोरपंखीबाबा नामक एक साधुका वर्णन शुरू हुआ, जो हरसाल कैलाश-यात्रा करते थे । बादमें हमने आसपासके प्रदेशमें रहनेवाले सोमवार गिरिबाबा जैसे दूसरे सत्गुरुओंके विषयमें पूछ-ताछ की । हिन्दुस्तानके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी आबहवा, खान-पान, रहन-सहन, और स्वभावका अपना अनुभव अन्होंने सुनाया । गुजरातकी धर्मश्रद्धाकी अन्होंने बड़ी तारीफ़ की । महाराष्ट्रका आदरातिथ्य अन्हें बहुत

अच्छा लगा था। बंगालकी गन्दगी और जलाशयोंकी स्वच्छताके विषयमें वहाँवालोंकी लापरवाहीकी अन्होंने शिकायत की। रामेश्वरकी तरफ़के मन्दिरोंकी व्यवस्थामें क्या-क्या त्रुटियाँ हैं, सो भी अन्होंने बताया।

असके बाद अन्होंने हमसे चाय पीनेका आग्रह किया। हिमालयकी चाय लिप्टनकी चाय नहीं होती; वहींकी पैदावार होती है। और वहाँ अुसे बनानेका तरीका भी और ही होता है। वहाँवाले कहते हैं कि हिमालयकी सख्त ठण्डमें यह चाय बड़ी उपयोगी होती है। हमने चाय पीनेसे अिन्कार किया। असपर अन्होंने बरालमें रखी हुआ अेक टोकरामेंसे पेड़े देनेके लिये अपने अेक सेवकसे कहा। मैंने कहा - “मैं खाँड़ नहीं खाता।” अन्होंने कहा — “यह खाँड़ तो देशी होती है। मैं हर साल कानपुरसे खास अपने लिये मँगाता हूँ।” (बादको मुझे मालूम हुआ कि खाकीबाबाके यहाँ जो शकर बरती जाती थी, वह हर साल पीलीभीतके राजा ललिताप्रसादकी तरफ़से भेजी जाती थी, जो गुमाश्तेकी देख-रेखमें खास तौरसे कानपुरके कारखानेमें बनवायी जाती थी; और बादमें वोगोंमें भरकर अेक ही खेपमें पहाड़पर पहुँचा दी जाती थी। मैंने कहा — “मुझे माफ़ कीजिये। छह सालतक शकर बिलकुल ही न खानेका मेरा व्रत है।” लेकिन बाबा यां सहज ही छोड़नेवाले न थे। तुरन्त ही मुझे बादाम और छुहारे दिये गये, ओर फिर बातोंका सिलसिला चल पड़ा।

बाबाने पीनेके लिये लोटेमेंसे गरम पानी लिया, लेकिन पीनेसे पहले अुसकी दो-चार बूँदें अग्निको अर्पण कीं। मुझे असपर कुछ आश्चर्य हुआ। यह देख स्वामीने मुझसे कहा — “खाकीबाबा जो भी कुछ खाते या पीते हैं, अुसे पहले अग्निको अवश्य अर्पण करते हैं।” खाकीबाबा बोले — “अपने राम तो दिनमें अेक-ही बार अेक ‘बाटी’ बनाकर ‘पा’ लेते हैं। आज दोपहरको जो खाया सो फिर कल दोपहरमें पायेंगे।” मैंने मन-ही-मन कहा — “तो फिर क्या ये पेड़े और बादाम और छुहारे हम-जैसे अतिथियोंके लिये ही हैं? धन्य है अस साधुको!” खाकीबाबाकी कमरमें मुंजकी अेक मोटी रस्सी पड़ी थी, और अुसपर अेक वित्ताभर चौड़ी कौपीन; सारा शरीर भस्म-चर्चित था। दाढ़ी और मूँछके लम्बे-लम्बे बाल तप तपकर लाल पड़ गये थे।

बादमें आजकलके साधुओंके धर्मोपदेशोंके बारेमें बात चली। कुछ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग साधु हो जाते हैं। वे अंग्रेज़ीमें पुस्तकें लिखते हैं, व्याख्यान देते फिरते हैं, और समाज-सेवाके पाठ सिखाते हैं—यह सब देखकर खाकीबाबाकी हँसी रोके न रुकती थी।

वे बोल अुठे — “आप अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे साधु गरीबोंकी क्या सेवा करते हैं ? दुग्नियोंको कौनसा दिलासा देते हैं ?” और फिर अचानक शून्य दृष्टिसे सामनेवाली धर्मशालाकी तरफ़ टकटकी बाँधकर देखते हुअे अुद्वेगपूर्वक वे स्वगत-सी कहने लगे —

“साले-ससुरे लेक्चरबाज़ी करते हैं ! अुसमें भी और कोअी विवेका-नन्द बननेकी तो ताक़त नहीं; खाली ट्रान्सलोचन करते हैं ! भगवानका नाम लो, कुछ तप कगे। बन सके तो भूखेको अन्नदान दो; और अपना काम करो। ये क्या खाली बकबक लगाअी है ?”

स्वामीने पृछा — “क्या आप अिस साल बदरीनारायण जानेवाले हैं ?” बड़ी-बड़ी दरारोंवाले अपने तलवे दिखाते हुअे अुन्होंने कहा — “अीश्वरने मुअे यह सज़ा दी है। यह बच्चा यात्राका बेहद शौकीन बन गया है, अिसलिअे अिसे अेक जगह जकड़कर रखना ज़रूरी है, यह सोचकर अीश्वरने ही मेरे पैरोंकी यह हालत कर डाली है। अब अगर मुअे जाना हो, तो टाटके जूते पहनने होंगे।”

खगमरेमें रहकर खाकीबाबा जो सूक्त समाजसेवा करते थे, अुसका हिस्साव कौन लगा सकता है ? वे बीमारोंको दवा देते थे; व्यवहार-कुशल और निस्पृह तो थे ही; अिसलिअे दुविधामें पड़े हुअे संसारी लोगोंको सलाह-मशविरा देते थे; भूखे-प्यासे सब खगमरेमें आकर अघा जाते थे; भाअी-भाअीके जिन टण्टोंका निपटारा अदालतोंमें नहीं हो सकता था, अुनका तस्फ़िया खाकीबाबाके अपदेशसे हो जाता था। वे स्वयं योगमार्गी थे, और आखिरी घड़ीमें पद्मासन लगाकर प्राणोंको ब्रह्माण्डमें ले जानेकी अुनकी अभिलाषा थी। संसारके द्वन्द्वोंसे वे निवृत्त हो गये थे, फिर भी अुस निवृत्तिमेंसे अुन्होंने सात्त्विक प्रवृत्तिका निर्माण बिया था, और अुस सात्त्विक प्रवृत्तिमें भी कमल-पत्रकी तरह अलित रहनेका अद्भुत योग अुन्होंने साध लिया था।

धर्मकी चर्चा करनेवाले हमारे आधुनिक विद्वानों, नीति-निपुणों, समाज-सेवकों और अर्थशास्त्रियोंको साधुओंकी टीका करनेसे पहले पूर्वग्रह-रहित, निर्मल वृत्तिसे उनके जीवनका अध्ययन करना चाहिये। और कुछ नहीं तो कम-से-कम अतना तो हम साधुओंके जीवनसे सीख ही सकते हैं कि इस देशमें किस तरहकी रहन-सहनसे स्वास्थ्य-रक्षा भली-भाँति हो सकती है। इस विषयमें उनकी सेवा देशके लिये अतनी आदर्श-रूप है कि कुछ हदतक साधुओंपर खर्च होनेवाला पैसा सार्थ माना जा सकता है। क्या घर-गिरस्तीमें रहकर व लोगोंकी अधम वृत्तियोंका पोषण करके धन कमानेवाले और मरते समय बे-जान और बे-शरूल बाल-बच्चोंकी फ़ौज अपने पीछे छोड़ जानेवाले लोग समाजके हितकारी हैं, और ये साधु 'मुफ़्तका खानेवाले' हैं? वाह रे न्याय!

ज़रा अपनी समाज-सेवाकी संस्थाओंपर दृष्टि डालिये। वे कितनी खर्चीली होती हैं? उनके व्यवस्थापकोंको कितनी बड़ी तनख़्वाह देनी पड़ती है। उनकी रिपोर्टें छपवानेके लिये भी पैसोंका और सत्यका कितना व्यय करना पड़ता है। और तिसपर भी बहुत सारे मामलोंमें पैसोंकी जो घालमेल और गड़बड़ी होती है, सो तो देखते ही बनती है। दूसरी तरफ़, साधुओं द्वारा चलनेवाली संस्थायें अज्ञात होती हैं, उनके विवरण कभी नहीं छपते। न कोअी 'लाअिफ़ मेम्बर' होते हैं, न 'पैट्रन'। लेकिन फिर भी सारा खर्च बहुत हदतक बड़ी किफ़ायतसे किया जाता है, और पाअी-पाअी काम आती है।

हिन्दुस्तानका अप्रतिम लोक-साहित्य अिन साधुओंकी ही कृपासे अब-तक ज़िन्दा है, और भविष्यमें भी ज़िन्दा रहेगा। धार्मिक संस्कृतिकी रक्षा, अभिवृद्धि, विस्तार और सुधारके लिये दुनियामें अितनी अुन्नत, सस्ती और विश्वासपात्र व्यवस्था और कहीं न मिलेगी।

ऐतिहासिक अेवं भौगोलिक प्रमाण अुपस्थित करके पुस्तकें लिखने-वाले विद्वानोंने हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय अेकता भले ही साग्रित की हो, लेकिन अुस राष्ट्रीय अेकताके निर्माणका श्रेय तो साधुओंको ही है। पुराने ज़मानेमें हरअेक प्रजाहित-दक्ष राजा, अपनी राजधानीमें किसी साधुके पधारते ही अुसके दर्शनोंको जाता था, और दूर-दूरके प्रदेशोंका क्या हाल है, लोगोंकी

कैसी स्थिति है, वगैरा बातोंकी पूरी-पूरी जानकारी उससे प्राप्त करता था । और वह साधु भी राजधानीसे बिदा होते समय राजाको आशीर्वाद देने जाता था, और उसके राज्यमें जो कुछ देखा-भाला हो, सो सब साफ़-साफ़ कह देता था । इस प्रकार दीन-रंक प्रजाकी पुकार और फ़रियाद भी ऐसे निःस्वार्थ-से-निःस्वार्थ वकीलकी मारफ़त राजाके कानोंतक पहुँच जाती थी; राजाके अहलकारोंपर यह अंक ज़बरदस्त अंकुश रहता था; और कीर्तिका अभिलाषी हरएक राजा भी साधुकी धर्मबुद्धिको जँचने और सन्तोष देनेवाली राज्य-व्यवस्था बनाये रखनेकी चिन्तामें रहता था ।

साधु जब गाँवोंमें विचरण करता, तो ग्राम-देवताके मन्दिरमें या किसी पेड़ तले अपनी धूनी रमाता । वहाँ उससे गाँवके लड़के क्रिस्से-कहानियों द्वारा लोक-जीवन और भूगोलका ज्ञान हासिल करते थे; व्यापारियोंको व्यापारकी जानकारी मिलती थी; शूरवीरोंको मालूम हो जाता था कि उनकी बहादुरीकी कद्र कहाँ हो सकती है; गाँवकी पुरखियोंके दवा-दारू-सम्बन्धी ज्ञानमें वृद्धि होती थी; दुखियोंकी बीमारी दूर होती थी; और कभी दफ़ा गाँवके पुराने मन्दिर या धर्मशालाका जीर्णोद्धार भी हो जाता था । तितली जिस तरह अंक फूलसे दूसरे फूलपर फुदककर सारे पौधोंको सुफलित करती है, उसी तरह साधु भी अंक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें भ्रमण करके संस्कृतिका लेन-देन करनेवाले बनजारे बनते हैं, और देश-देशमें संस्कृतिकी मण्डियाँ खोल देते हैं । समाजके अशुच और संस्कारी वर्गके लोग गृह-लोहप बन गये, अन्तमें संयमका स्वाद न रहा, और उसके फल-स्वरूप साधुओंमें भी अच्छे लोगोंकी संख्या कम होने लगी । समाज निठल्ला, विषयासक्त और लालची बन गया; साधुओंका पालन सिर्फ़ इसी गरज़से होने लगा कि उनकी कद्र किये बिना धर्मका पुण्य पछे पड़ता रहे; फलतः समाजके साथ-साथ वह वर्ग भी गिर गया । अब हम दूसरोंकी टीका-टिप्पणीसे प्रभावित होकर उस वर्गका नाश करनेपर अतारू हो गये हैं ।

इस तरह हमने अपनी संस्कृतिकी प्रत्येक अशुच और अुदात्त संस्थाको प्राणोंके अभावमें सड़ने-गलने दिया है, और आज उसे सुधारनेके बदले उसे नष्ट करके हम असंस्कारी और असंगठित स्थितिसे ही चिपटे रहना चाहते हैं । यूनान, रोम, मिस्र आदि राष्ट्र मिट चुके हैं; अकेला

हिन्दुस्तान ज़िन्दा है; इस बातपर गर्व करनेवाले हम लोगोंको याद रहे कि हिन्दुस्तानके ज़िन्दा होनेका अर्थ यह है कि अबतक हिन्दुस्तान अपनी पुरानी मगर ताज़ी संस्कृतिसे पैदा हुई सस्थाओंको टिकाये हुआ है, और अन्हें सुधार रहा है। जहाँ ये संस्थायें टूटीं, वहीं यह समझिये कि हिन्दुस्तानने क़त्रस्तानमें प्रवेश किया !

मेरे मनमें इसी तरहके विचारोंकी धमाचौकड़ी मच गयी। फलतः हम खगमरा पहाड़ीसे वापस कब आये, रास्तेमें लाला बदरीशा ने क्या पूछा, पोस्ट मास्टरके साथ और कौन-कौन थे, वगैरा बातोंकी तरफ़ मेरा ध्यान बिलकुल ही न गया। हिमालयकी हवा ध्यानके लिये अनुकूल है, लेकिन उस ध्यानका भंग करनेवाली दो बड़ी ज़बरदस्त चीज़ें वहाँ हैं— एक ठण्ड और दूसरी भूख। दोनोंने मुझपर एक-सा हमला किया था, इसलिये उन दोनोंसे एक साथ अपनी रक्षा करनेके लिये हम दीड़ते-दीड़ते अपने रसोभीघरमें दाखिल हुअे।

१५

पदमबोरी

साधुओंमें भी जीवनके दो आदर्श होते हैं। लेखरवाज़ीके लिये हमें फटकार सुनानेवाले खाकी बाबा गरीबोंको अन्न-दान करके, बीमारोंको दवा-पानी देकर और दूसरे कअी प्रकारोंसे समाज-सेवा करते थे। कुछ साधु अिन दोनों कामोंको भी अुपाधिरूप मानते हैं। अुनके विचारमें साधुओंको तो केवल आत्मनिष्ठ रहना चाहिये। परोपकारके लिये भी किसी तरहका परिग्रह न करना चाहिये। अुनका सूत्र है—

धर्मार्थ यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥

दान करनेके लिये वित्तकी अच्छा रखनेकी अपेक्षा बेहतर यह है कि अुसका नाम ही छोड़ दें। कीचड़में हाथ डालकर फिर अुसे धोनेकी अपेक्षा कीचड़से दूर रहना क्या बुरा है ?

यह नहीं कि जैसे लोग समाजके प्रति अुदासीन होते हैं, या अनर्में दयाका अभाव होता है। वे कहते हैं—‘तुम प्रवृत्तिको भली-भाँति पहचान नहीं पाये हो। प्रवृत्तिमात्र बन्धनकारी है। और वह जितनी सात्विक, अतनी ही अधिक बन्धनकारी होती है। क्योंकि अुसका बन्धन बन्धनके रूपमें प्रतीत ही नहीं होता, और जल्दी छूटता भी नहीं। प्रवृत्तिके ही साधनों द्वारा तुम दुनियाका भला किस तरह कर सकोगे? केवल अुपदेश करनेके लिये न जानेमें भी दयाका अभाव नहीं। प्रवृत्तिमें फँसे रहनेके कारण आप अिस बातको देख नहीं पाते कि आपका अुपदेश अधिकतर निष्फल होता है। जिस आदमीको आपके अुपदेशकी ज़रूरत होगी, वह खुद आपके पास चला आवेगा। यह अीश्वरी योजना है। आपके अुपदेश देते फिरनेमें अथवा समाज-सेवाका पेशा लेकर बैठ जानेमें अनादि कालसे विश्वकी यथातथ्य रचना करनेवाले प्रभुके विषयमें कितनी अश्रद्धा है, सो आपकी समझमें क्यों नहीं आती? प्रसंगवश जो अुपदेश करना पड़ जाय या किसीकी जो सेवा करनी पड़ जाय, अुसे सुचारु-रूपसे करके छुट्टी पानी चाहिये। लेकिन जबतक आप त्रिगुणोंमें फँसे हैं, तबतक स्नेह, दया आदि सात्विक गुणोंके विकासके लिये चाहे थोड़े दिन समाज-सेवा करें, लेकिन यह साधन है, चित्त-शुद्धिका अुपाय है। याद रहे कि अिसके द्वारा हमें मोहसे मुक्ति नहीं मिल सकती। अपने सौभाग्यसे ऐसी वृत्तिवाले अेक साधुके दर्शन हमें हुअे। यहाँ वह प्रसंग देता हूँ।

अलमोड़ेमें हम लगभग पन्द्रह दिन रहे। पन्द्रह दिनोंमें हमने खूब देखा, कअी अच्छे-अच्छे आदमियोंसे मिले और कुदरतसे भी बातचीत की। स्वामी विवेकानन्द यहाँ जिनके पास रहते थे, अुनसे मिलकर स्वामीजीके विषयमें बहुतसी बातें जानीं। लेकिन वह सब यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

‘साधु चलता भला’; अिसी तरह यात्रा-वर्णन भी झट-झट आगे-आगे न बढ़े, तो तबियत अुक्रता जाती है। हमें भी अुत्तराखण्डकी यात्रा करनेकी जल्दी थी, अिसीलिये अनुकूल समय देखकर हम अलमोड़ेसे खाना हुअे। अलमोड़ेसे वापस काठगोदाम जाकर वहाँसे रेल द्वारा हरद्वार और हरद्वारसे अुत्तराखण्डकी यात्रा; यह क्रम हमने अपने लिये निश्चित किया

था । लौटते हुअे मुक्तेसर होकर जानेका हमारा विचार था । क्योंकि मुक्तेसरके पास सोमवारगिरि बाबा नामक अेक साधु रहते थे । अुनके दर्शन करनेकी मनीषा थी ।

सोमवारगिरि जहाँ रहते थे, अुस स्थानको पदमबोरी, कहते हैं । जगह सब तरहसे काव्यमय है । तीनों तरफ बड़े-बड़े पहाड़ और बीचमें बहती हुअी अेक नन्हीं-सी नदी । ये तीनों पहाड़ अितने अूँचे और अितने सटे हुअे हैं कि नदीके किनारे बैठकर अूर देखिये, तो आकाशकी विशालता नष्ट होकर वह अेक त्रिकोणाकृति छत-सा प्रतीत होता है ।

साँझ होते-होते हम पदमबोरी पहुँचे । रास्तेमें हम अुस घुमक्कड़ लड़के हरखदेव, गीता सीखनेवाले भिखी, भले वकील हरिशम पाँडे, बूढ़े बदरीशा, गद्गद कण्ठवाले सार्जीजी दरजी, और बुढ़ापेमें पुत्र-प्राप्तिके आनन्दमें दीवाने बने हुअे पोस्ट मास्टर आदिके विषयमें बातें करते गये । अितनेमें हमारे धोड़ेवालेने (हमारा सामान-असबाब अिस धोड़े पर लदा था) कहा — “ यह जो सामने नदीके अुस पार छोटासा मन्दिर दिखाअी देता है, वही महाराज रहते हैं । ” हम पहले तो धर्मशालामें गये । वहाँ सारा सामान तरतीबसे जमा दिया, और फिर बाबाजीके दर्शनोँको निकले ।

बाबाजीका नियम था कि दर्शनार्थीको हाथ-पैर धोकर व शुद्ध होकर दर्शनोँको जाना चाहिअे । लेकिन चूँकि वे नदीके अुस पार रहते थे, अिसलिअे अिस नियमका पालन अनायास ही हो जाता था । हम हाथ-पैर धोकर नदीके प्रवाहमें ही अेक बड़ी-सी चट्टानपर बैठ गये । संध्या-चन्दन धोड़ेमें निपटा लिया और आगे बढ़े । सामनेवाला किनारा चढ़कर बाबाजीके दर्शन करने गये । बाबाजी तो प्रकृतिकी ही मूर्ति थे । अुनके शरीरपर अेक लँगोटीके सिवा कुछ भी न था । सिरके बालोँकी जटायें बन गयी थीं, और अुनकी छोटी-छोटी लटें आँखों और माथेपर खेले रही थीं । हाथमें अेक चिलम थी ।

हमने जाते ही भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । बाबाने भी अुतनी ही नम्रतासे प्रतिप्रणाम किया और मन्दिरके आहातेकी दीवारपर जाकर बैठ गये, और हम लोगोँको भी अपने पास आकर बैठनेको कहा । हम अुनके साथ समान आसन पर कैसे बैठते ? नीचे अेक सीढ़ी थी, अुसी-

पर जाकर हम लोग बैठ गये। यह अुच्चनीच-भाव बाबाजीसे सदा न गया। वे तुरन्त सीढ़ीपर आकर बैठ गये। जिसपर हम लोग नीचे पड़ी हुअी अेक चटाअीपर जाकर बैठे। मगर बाबाजी यों हार माननेवाले न थे! वे विलकुल खाली जमीन पर जाकर बैठे गये। अब क्या किया जाय? हमने भी चटाअी हटा दी। जिस पर बाबाजी बोले — “हे प्रमु, मैं तो तुममें अीश्वर देख रहा हूँ। मैं सबेरेसे बाट जोह रहा हूँ। ब्रह्मा-विष्णु-महेश — तुम मुझे दर्शन देने आये हो!”

सोमवारगिरिबाबासे हमारी जान-पहचान तो थी ही नहीं। हमारे आनेकी खबर भी अुन्हें किसीने नहीं दी थी। तिसपर, भी अुस दिन सबेरेसे ही वे अपने पास बैठे हुअे लोगोंसे कह रहे थे — “आज कुछ लोग मुझसे मिलने आनेवाले हैं। मैं अुनकी बाट जोह रहा हूँ।” हमसे वहाँके अेक किसानने कहा कि अुस दिन दोपहरसे ही वे अपनी जगहसे अुठ-अुठकर दूरतक देखते और निराश होकर अपनी जगह आकर बैठ जाते। निराश होनेपर भी कहते — “नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आज तो अुनको आना ही चाहिये।” हमने कहा — “महाराज, हमारा घंड़ेवाला देरसे आया, वरना हम यहाँ कबके पहुँच गये होते।” बादमें यात्राकी बातें चलीं। सोमवारगिरिबाबाने कअी यात्रायें की थीं। जिसलिअे खाकीबाबाकी तरह वे भी जीते-जागते विद्वकोष थे। चाहे जिस प्रान्तका जिक्र कीजिये, वे वहाँका ब्यौरेवार वर्णन सुना देते थे। भाषा शुद्ध हिन्दी ही होती थी, जिसलिअे वे साधु कहाँके निवासी थे, जिसका अन्दाज़ा कअी लगा न पाता था।

फिर भी खाकीबाबा और सोमवारगिरिबाबामें अुत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुवका-सा अन्तर था। दोनों अेक ही जून खाते, दोनोंको लँगोटीके अलावा दूसरे कपड़ेकी ज़रूरत ही न पड़ती थी। लेकिन दोनोंके जीवन और जीवनके आदशोंमें बहुत फ़र्क था। खाकीबाबा अपना अेक मठ बनाकर रहते थे; अिधर सोमवारगिरिबाबा किसी जगह ज़्यादा दिनतक रहते ही न थे। वे कहते — “अेक जगह रहनेसे अुस स्थानके प्रति और वहाँकी परिस्थितिके प्रति अेक तरहकी आसक्ति पैदा हो जाती है। खाकीबाबा तरह-तरहकी जड़ी-बूटियाँ अपने पास रखते थे। अतिथि, अभ्यागत और पथिकोंको

खिलाते-पिलाते थे; लेकिन सोमवारगिरिबाबा पूरे अपरिग्रही थे। न तो कुछ लेते थे, न देते थे। वे मानते थे कि यह प्रवृत्ति उनके-जैसे विरक्तोंके लिखे है ही नहीं। जब हम खाकीबाबाके पास गये थे, तो उन्होंने पहले हमें मिठाई दी थी, और मेरे यह कहनेपर कि मैं चीनी नहीं खाता, उन्होंने मेवा दिया था। यहाँ सोमवारगिरिबाबाने अपनी बाटीका एक-एक टुकड़ा हमें दे दिया। अतना पवित्र अन्न खानेका भाग्य हमेशा थोड़े ही प्राप्त होता है? उसका स्वाद कुछ और ही था। सचमुच अतनी स्वादिष्ट रोटी मैंने और कहीं खायी नहीं। सोमवारगिरिबाबा उसी दिन सबेरे आसपासके दो-चार गाँवके निष्पाप किसानोंसे भिक्षा माँगकर ताज़ा आटा लाये थे। उसमें शुद्ध घी और शुद्ध पानी मिलाकर जंगलकी लकड़ियों पर बाबाजीने खुद अपने हाथों वे बाटियाँ बनायी थीं। उस बाटीकी पवित्रता और उसकी मिठासका बखान कौन कर सकता है? अपने ही आहारमेंसे अतिथिको हिस्सा देनेकी वृत्ति सोमवारगिरिबाबामें थी, जब कि खाकीबाबामें अतिथिके अनुकूल साधन रखनेकी वृत्ति थी। खाकीबाबा देशी शकरके बोरे खास कारखानेसे माँगते थे; और अधर जिस वक्त्र हम सोमवारगिरिबाबाके पास पहुँचे थे, उस वक्त्र वे चोरीसे विदेशी शकरका उपयोग करनेके अपराधके लिखे एक हलवाओको खूब खरी-खोटी सुना रहे थे।

जब हमने खाकीबाबाका अल्लेख किया, तो उनका नाम सुनते ही सोमवारगिरिबाबाने उनके नामको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया, और कहा — “वे तो श्रेष्ठ साधु हैं। तपस्वी हैं। खूब लोक-कल्याण करते हैं।” बादमें फिर कहा — “हाँ! वे राजयोगी हैं। खूब प्रवृत्तिमें पड़ते हैं। यहाँ तो निःसंगी आदमी ठहरे। यह एक व्याघ्रचर्म और यह कमण्डलु — बस, यही मेरा परिग्रह है। अगर यहाँ मिलने-जुलनेवाले ज़्यादा आने लगेंगे, तो यहाँसे भी गायब हो जाऊँगा। जी चाहता है कि इस परिग्रहको भी फेंक दूँ।” इसके बाद उन्होंने अपनी पहचानके अनेक साधुओंकी चर्चा की। उनके कार्योंका परिचय कराया, और अप्रत्यक्षरूपसे यह भी बता दिया कि साधुओंमें भी जुदे-जुदे आदर्श होते हैं।

मैंने उनसे कहा — “आप लोगोंको धर्मोपदेश देते हैं; मैं भी जब पाठशालामें काम करता हूँ, तो लड़कोंको धार्मिक शिक्षा देता हूँ। फ़र्क

अतना ही है कि मैं पढ़ी हुअी बातें कहता हूँ, और आप अनुभवकी। मुझे भी कुछ सूचनायें दीजिये !”

अन्होंने कहा — “मैं जानता हूँ कि तुम लड़कोंको भगवद्गीता सिखाते हो, और उसका अर्थ समझा देते हो। लेकिन अिसमें श्रेय नहीं है। भगवद्गीता जो निवृत्तिधर्म सिखाती है, उसके लायक तो बड़े-बूढ़ भी नहीं होते, तो फिर भला लड़के कहाँसे हों ? ‘कर्मण्यकर्म यः पश्येद-कर्मणि च कर्म यः’ जैसे अथवा

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं, बोद्धव्यंच विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

अैसे श्लोक ‘लड़कोंको तुम किस तरह समझा सकते हो ? लड़कोंके सामने निष्काम कर्मकी बातें करनेसे पहले अन्हें सकाम कर्तव्य कर्मकी अच्छी शिक्षा दो। तुम्हारे वेदान्तसे लड़के निकम्मे हो जाते हैं। अुनकी संकल्प-शक्ति नष्ट हो जाती है। जिस बातका अिरादा करते हैं, अुसे अंजाम नहीं दे पाते, और नाहक सारा दिन बकशक ही किया करते हैं। गीताजीका अपदेश तो योग्य व्यक्तियोंको ही करो।”

यह तो मुझे अेक नयी दिशाका दर्शन हुआ। मैं विचारमें डूब गया। मैंने पूछा — “तो क्या लड़कोंको गीता पढ़ायें ही नहीं ?” अन्होंने कहा — “नहीं, मैं अैसा नहीं कहता। लड़के गीताजीके श्लोक कण्ठ ज़रूर करें। मैं सिर्फ यह कहता हूँ कि अन्हें निवृत्तिधर्मकी दीक्षा न दो।”

अिसके बाद अुत्तराखण्डकी यात्राके विषयमें हमने अुनसे खूब पूछ लिया। जैसे-जैसे बातें होने लगीं, वैसे-वैसे हमें प्रतीति होती गयी कि बाबाजी कितने अधिकारी पुरुष हैं। बड़ी राततक हम वहाँ बैठे, और आखिर वन्दन करके धर्मशालाको लौटे। धर्मशालामें अितनी भीड़ हो गयी थी कि अगर हम पहलेसे ही अपने बिस्तर लगाकर न गये होते, तो हमें सोनेकी जगह भी न मिलती।

सबरे जल्दी अुठकर फिरसे महाराजके दर्शन करके अुनकी आज्ञा लेने गये। बाबाजी ध्यान-विसर्जन करके अुठ रहे थे कि हम लोग पहुँचे। बातचीत शुरू करने ही वाले थे कि अितनेमें वहाँ अेक नेवला आया। बाबाजीने कहा — “यह भगवद्-दर्शन है।” फिर बाबाजीने हमें चाय

दी। मैंने कहा — “मैं तो चाय नहीं पीता।” जवाब मिला — “यह कोअी तुम्हारे मुल्ककी चाय नहीं है। यह हिमालयकी चाय है। इसमें न शकर है, न दूध। यह थोड़ी-सी पी लो, यात्रामें फ़ायदा करेगी।” चायके साथ उन्होंने अेक बादामके तीन टुकड़े करके प्रसादके रूपमें हरअेकको अेक-अेक टुकड़ा दिया। दूसरी भी अेक विचित्र बूटी (भंग नहीं!) चायमें डाली। हमने श्रद्धा-पूर्वक प्रसाद मानकर चाय ली; महाराजको प्रणाम किया और आज्ञा माँगी। उन्होंने प्रेमसे हमारे कन्धोंपर हाथ रखा और कहा — “सर्वत्र परमात्मा है!”

१६

गोहत्या

पदमश्रीसे मुक्तेसर। कितना अन्तर है! अुन्नति और अवनति! जैसा कि पहले कह चुके हैं, पदमश्री तीन पहाड़ोंके बीच अेक पहाड़ी-नदीके किनारे बसा हुआ महादेवजीका स्थान है। वहाँसे हमें मुक्तेसर जाना था। मुक्तेसर कम-से-कम सात हजार फुटकी अँचाअीपर है। अुसे मुक्तेसर क्यों कहते हैं, इसकी हमने चर्चा की। मैंने कहा — “मुक्तीश्वर अथवा मुक्तेश्वरपरसे यह नाम पड़ा होगा।” बाबाजीने कहा — “वहाँ मोतीके समान कोअी तालाब होगा; अुसपरसे मोतीसर नाम पड़ गया होगा। या मौक्तिकेश्वर भी हो सकता है।” हमारे साथ अलमोड़के भट्टजी थे। उन्होंने कहा — “अक्सर नाम तो सादे ही होते हैं। बादमें आप-जैसे भाषाकोविद अुसी नामको कोअि-न-कोअी सुन्दर रूप दे देते हैं।” मूल नाम क्या रहा होगा, हम नहीं जानते। यहाँ तालाब तो नहीं है, सिर्फ़ मुक्तेश्वर महादेव हैं। ठेठ पर्वतकी चोटीपर बिराजे हैं। वह भैरव घाटी भी है। मुक्तेसरके प्राकृतिक दृश्यको ‘स्वर्गीय’ कहनेमें कोअी अत्युक्ति तो है ही नहीं, अुल्टे अल्पोक्ति हो सकती है। लेकिन — आजकल हिमालयमें भी ‘लेकिन’ कहनेका प्रसङ्ग आता है —

आज यह स्थान नरकसे भी अधिक बुरा हो गया है ! नीचे स्वर्ग और ऊपर नरक — अलङ्कारशास्त्री अिसे कौनसा अलङ्कार कहेंगे ?

मुक्तेसरमें सरकारी बैक्टेरिओलॉजिकल डिपार्टमेण्ट (जन्तुशास्त्र-विभाग) है । अिस विभागके अन्तर्गत भयानक गोहत्या होती है । अिसका क्या कारण है ? गोरी फ़ौजकी गोमांसकी माँग पूरी करना ? नहीं । हिन्दुस्तानकी गरीब गायाँ और बैलोंपर क्रूर मानवका आहार बननेके अलावा तरह-तरहकी बीमारियोंकी दवा करनेकी ज़िम्मेदारी आ पड़ी है । यूरोपियन लोगोंने देखा कि अुनके बहुतसे घोड़े 'रिण्डर पेस्ट' नामकी बीमारीसे मरते हैं । अुसका अुपाय अुन्हें यह मिला कि बैलके बदनसे अुसका खून लेकर अुसका 'सीरम' बनाया जाय और वह घोड़ेके बदनमें दाखिल किया जाय । अैसे फ़ालतू पशु तो हिन्दुस्तानमें ही मिल सकते हैं ! वहाँ मैंने अेक व्यक्तिसे सुना कि शुरूके सोलह वर्षोंमें 'रिण्डर पेस्ट'के टीके की सारी दुनियाकी माँग पूरी करनेके लिये ४० हजार बैलोंका खून निकाला गया था । खून निकालनेकी यह क्रिया बहुत ही क्रूर होती है । पहले बैलको खूब खिला-पिलाकर पुष्ट करते हैं । फिर अुसकी अेक नस काटकर अेक-दो डोल खून निकाल लेते हैं । बादमें मरहमपट्टी करके जानवरको दुस्त करते हैं । थोड़े दिन बाद फिर पहलेकी तरह खून निकाल लेते हैं । तीसरी बार सारा खून निकाल लिया जाता है, क्योंकि अुस वस्तुतक जानवर अितना निःसत्त्व हो जाता है कि चौथी बारके लिये अुसके शरीरमें खून ही नहीं रह जाता !

हम साँझके समय मुक्तेसर पहुँचे । वहाँ अेक सज्जनके घर रातको आराम किया । भोजनका प्रबन्ध अुन्होंने बहुत भक्तिपूर्वक और अच्छे ढंगसे किया था , परन्तु भात त्रिलकुल पका न था । बातचीतमें मालूम हुआ कि पहाड़ी लोग अैसा ही भात पसन्द करते हैं । अगर हमें पहाड़ी भूख न लगी होती, तो अितना चावल चबानेकी मेहनत करनेसे दाँतोंने अिनकार ही कर दिया होता । भुजी (भाजी) बड़ी मजेदार बनी थी । अुन सज्जनके दीवानखानेकी चारों दीवारोंका निचला हिस्सा काठका था । सो भी तकियेकी तरह तिरछा । अगर अिस ठण्डे प्रदेशमें दीवारसे टिककर बैठना हो, तो अैसी कोअी-न-कोअी तरकीब आवश्यक है ।

दूसरे दिन सबेरे हम पहले जन्तुशान्त्रिका महकमा देखने गये। हमारे यजमान हमें वहाँकी सारी बातें समझाते थे। मैं शून्यमनस्क होकर सुन रहा था। मेरी दृष्टिके सामने तो गोहत्याका कल्पना-चित्र ही खड़ा होता था। एक पहाड़ीपर एक बुर्ज था। उसपर एक बड़ा भारी घण्टा टँगा हुआ था। मैंने पूछा — “यह किस लिये है?” अन्होंने कहा — “यदि जंगलमें आग लग जाय, कोअी दुर्घटना हो जाय या दूसरा कोअी सङ्कट आ पड़े, तो यह घण्टा बजानेसे सब लोग अिकट्ठा होते हैं।” जहाँ चालीस हजार गोकुलका संहार होता है, वहाँ दूसरे किसी सङ्कटकी ज़रूरत ही क्या है? जी चाहै कि उस बुर्जपर चढ़कर और उस घण्टेको बजाकर मैं बाओस करोड़ हिन्दुओंको वहाँ जमा करूँ, और यदि वे न सुनें तो हिमालयमें अदृश्य रूपसे विचारनेवाले तैंतीस करोड़ देवताओंको गोमाताका आर्तनाद सुनाऊँ।

मनमें यह विचार चल रहा था, अतनेमें हम मुक्तेश्वर महादेवके पास जा पहुँचे। वहाँ मनको कुछ आराम अवश्य मिला। मुक्तेश्वर महादेवके पास भैरव घाटीवाला स्थान है। पहाड़पर जहाँ ऊँचे-से-ऊँचा शिखर हो और पास ही नीचे अेकदम सीधा कगार हो, उस स्थानको भैरवघाटी कहते हैं। प्राचीन कालमें और आज भी भैरव सम्प्रदायके लोग प्रायः अैसे स्थानपर भैरवजीका जप करते-करते ऊपरसे नीचे कूद पड़ते हैं। माना यह जाता है कि अिस तरह आत्महत्या करनेमें पाप नहीं, अपितु पुण्य है। यह मान्यता आजके क्रान्दनेके अनुसार गलत भले ही हो, परन्तु मानसशास्त्री उसके आधारभूत तत्त्वको सहज ही समझ सकते हैं। दुनियासे सब तरह निराश होकर कायरतावश किसी मनुष्यका आत्महत्या करना, और प्रकृतिके विशाल, अुच्च, अुदात्त तथा रमणीय सौंदर्यको देख, तदाकार होकर प्रकृतिके साथ अेक-रूप होनेकी अिच्छाका प्रबल हो अुठना, किसी तरह प्रकृतिका वियोग सहा ही न जाना, और अैसेमें किसी मनुष्यका अिस क्षुद्र देहके बन्धनको भूलकर सात्म्य प्राप्त करनेके लिये अनन्तमें कूद पड़ना — ये दो बातें नितान्त भिन्न हैं। दोनोंका परिणाम चाहे अेक ही हो। हर तरहके विनाशको हम मृत्युके अेक ही नामसे पुकारते हैं; परन्तु वस्तु अेक ही नहीं होती। कअी बार मरण जीवन-रूपी नाटकका

विक्रमक होता है, और कभी बार वह उस नाटकका भरत-वाक्य — जीवन-साफल्य — होता है ।

मनुष्यकी आशा दुरन्त कहलाती है । सचमुच मनुष्यकी आशाका पार नहीं है । मनुष्यकी हरअक आशाको सफल बनानेकी शक्ति जीवनमें नहीं है । जीवन्की समृद्धिकी भी मर्यादा होती है । मनुष्यकी आशाके सामने जीवन दरिद्री है । लेकिन मरणकी समृद्धि आशाको तृप्त करनेमें समर्थ होती है । जहाँ जीवन हार जाता है, वहाँ मरणकी जीत होती है । जीवन असंख्य बार मनुष्यको निराश करता है । मरणके पास निराशा ही नहीं ।

हम भैरव घाटीपर चढ़े । वहाँ भी गोहत्यावाली बात मनको व्यग्र कर रही थी । बेचारे बैल नाहक मारे जाते हैं । अक दृष्टिसे देखनेपर अन बैलोंका आत्मयज्ञ स्वात्मारपणकी पराकाष्ठा सूचित कर रहा था । हिन्दुस्तानके जानवर मरें और दुनियाके — सारी दुनियाके — घोड़े, खच्चर, आदि अनेक प्रकारके प्राणी भयङ्कर रोगोंसे बचें, यह कोअी साधारण पुण्य नहीं कहा जायगा । परन्तु यह कौन स्वेच्छापूर्वक किया गया बलिदान है ? आज मेरा भारत भी अमर्याद आत्माहुति दे रहा है । भारतके भरोसे ब्रिटिश साम्राज्य टिका हुआ है । भारत स्वयं मरकर असंख्य लोगोंको जिलाता है । परन्तु इसका पुण्य भारतके पल्ले नहीं पड़ता । दुर्बलता और अज्ञानवश किया गया त्याग किस कामका ? 'न च तत् प्रेत्य नो अिह' ।

बाबाजीने भैरवके छंटे-से मन्दिरका घण्टा बजाया और लौटनेकी सूचना दी ।

धर्मशालामें ऋषिकुल

मुक्तेसरसे हम काठगोदामके अपने पुराने रास्ते पर आये । भीमतालके फिर दर्शन किये, और हिमालयके पहाड़से अतरकर मानवी सृष्टिमें प्रवेश किया । रास्तेमें पूर्व परिचित स्थान देखकर मनमें कुछ और ही भाव उत्पन्न होते थे । अलमोड़ा जाते समय हिमालयका प्रथम दर्शन हुआ था । अतनी विशालता और अचुंगता पहली बार ही देखी थी । लौटते वक़्त यह सब परिचित-सा लगता था । फिर भी उसका रस कुछ कम नहीं हुआ था । पहलेका रस अपूर्वताका था, अबका रस परिचयका था । जाते समय जिन-जिन झरनों और वृक्षोंने हमारा सत्कार किया था, उनसे फिर मिलते समय हृदयमें कृतज्ञताकी अुमंग अुटे बिना कैसे रहती ? मैं परिचित वृक्षोंसे मिला । परिचित झरनोंका, स्वाभाविक तृष्णासे नहीं, किन्तु प्रेमतृष्णासे, पान किया । जाते वक़्त जिन पुलोंपर बैठकर हमने थकावट दूर की थी, उन पुलोंके फिर आनेपर उनपर अेक-दो मिनट न बैठते, तो अपनेको कृतघ्नता दोषके पात्र समझते ।

रास्तेमें स्वामीके साथ संस्कृत साहित्यकी चर्चा शुरू हुई । मैंने कहा — “ गगनचुम्बी पेड़ोंके झुण्डोंकी यह घनी झाड़ी देखकर मुझे बाणभट्टकी साहित्य शैलीका स्मरण हो आता है । हर स्थानमें अपूर्वता और अुदारता भरी हुई है । परन्तु वह अतिशयताके कारण अपना सौन्दर्य छिपानेमें ही खप जातो है । ” अिसके बाद संस्कृत कवि और राजाश्रय का सवाल छिड़ा । कालिदास राजाश्रयी कवि था, परन्तु भवभूति लोकाश्रयी कवि हुआ । कालिदास पुष्पक विमानमें बैठकर अथवा मेघका वाहन बनाकर विहंगम दृष्टिसे भारतवर्षका अवलोकन करता है । लेकिन भवभूति वल्कलधारी राम, लक्ष्मण और जनक-तनयाके साथ दण्डकारण्य और पंचवटीके अरण्योंमेंसे रास्ता निकालता हुआ धीरे-धीरे पैदल चलता है । दोनोंकी शैलीमें यही भेद है । भवभूतिकी शैली राजकुमारकी तरह

‘धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्’ है, जब कि कालिदासकी वर्णनशैली शकुन्तलाके भावकी नाहीं ‘न विवृतो मदनो न च संवृतः’-जैसी है। वनश्रीको देखकर संस्कृत कवियोंकी याद आयी। और उस प्रसंगसे लोकाश्रयका विचार करते हुआ राजाश्रयकी निन्द्य रीतिसे निन्दा करनेवाले बिल्हणकी याद आयी। परन्तु उसी क्षण स्मरण हुआ कि संसारमें विरक्त साधकोंको संस्कृतका ऐसा काव्य-रस शोभा नहीं देता। दोपहर हो गयी थी। सूर्यनारायणने और अँख आँख खोल दी थी। बाबाजीने कहा — “पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।” नीचे घाटीमें रामगंगा प्रचण्ड गड़गड़ाहट करती हुआ दौड़ रही थी। परन्तु उसका पानी हमारे लिये तो शतकालके मेघके समान दुष्प्राप्त ही था। स्वामी बोले — “अस जंगलकी शोभा देखकर मुझे बाणभट्टकी कादम्बरीका स्मरण नहीं होता, बल्कि मुझे तो रामगंगाकी यह गर्जना सुनकर कुलावा स्टेशनके दस-बीस अँजिनोंका कोलाहल याद आता है।”

अँजिनका नाम निकालते ही तुरन्त स्मरण हुआ कि प्राकृतिक सृष्टि छोड़कर हम मानवी सृष्टिकी तरफ़ अग्रसर हो रहे हैं। यदि वहाँ अग्रिथके समयका ध्यान न रखा, तो काम न चलेगा। मैंने अण्टीसे घड़ी निकालकर देखी और बाबाजीसे कहा — “बाबाजी दौड़ लगाओ, नहीं तो हम समयपर काठगोदाम नहीं पहुँच पायेंगे।” तीनों दौड़े, और मुश्किलसे स्टेशन पहुँचे ही थे कि अितनेमें रेलगाड़ीने सीटी दी और वह हमारे देखते हँसती-हँसती निकल गयी। जरासेके लिये हम गाड़ी चूक गये। हमें रेलगाड़ीके निकल जानेका कुछ भी बुरा न लगा। लेकिन हमें परेशानीसे बचानेके विचारसे हमारा जो कुली आगे दौड़ता आया था उसका मुँह अतुरा देखकर हमें दुःख हुआ। फिर भी हम हँस पड़े, और उससे कहा — “चलो भाजी, अभी तो काफ़ी दिन है। यहाँ पड़े रहनेसे तो बेहतर है कि हलद्वानी चलकर रात वहीं बितायें।” हलद्वानी काठगोदामसे पहला स्टेशन है। व्यापारकी अँक छोटी-सी मण्डी है। वहाँ पैदल जा पहुँचे। ‘खाया-पिया और (स्वप्न-सृष्टिपर) राज किया।’

स्वप्न-सृष्टिमें जानेसे पहले कल्पना-सृष्टिमें जानेका अँक प्रसङ्ग आया। हम धर्मशालामें जगह प्राप्त करके रसोआ बना रहे थे। धर्मशाला यानी

विविधजन-समाज । वहाँ तीनों लोकोंकी चर्चा चलती है । धर्मशालामें बैरागी आते हैं, व्यापारी आते हैं, सरकारी अफसर आते हैं; वे पुराने ज़मींदार घोंड़ेपर पुराना ज़ीन कसकर तीर्थयात्रा करने आते हैं, जिन्हें यह सुध नहीं कि पुराना ज़माना बीत चुका है; ऐसे नवजवान भी आते हैं, जो जानतेतक नहीं कि पुराने जमाने-जैसी कोअी चीज़ थी भी या नहीं; भिखारी भी आते हैं, और भिखारियोंसे भी गये-बीते पुलिसवाले आते हैं । मुसाफ़िर आपसमें अथवा अपने कुलियोंसे, ग्राहक दुकानदारोंसे, दुकानदारकी स्त्री अपने लड़कोंसे, पुलिसके जवान भिखारियोंसे, और कुत्ते अक-दूसरेसे आठ बजेतक लड़ लेते हैं । आठ बजनेपर पहले क्षुधा शान्त होती है, बादमें चुल्हे शान्त होते हैं; अधिकांश दीये भी शान्त होते हैं; (क्योंकि अक पैसेमें दीया, बत्ती और तेल देनेवाले दुकानदारके पास आठ बजेतकका ही बजट होता है ।) और उसके पश्चात् विरोध शान्त होकर वार्त्तालाप शुरू होता है । धर्मशालाका यह अन्तरराष्ट्रीय कानून है कि आठ बजेके बाद अक बार सुलह हो जानेपर कोअी किसीके साथ न लड़े ।

तुरन्त ही मुसाफ़िर-मुसाफ़िरमें वार्त्तालाप शुरू हो जाता है । बाबा लोग देश-देशान्तरका हाल और उसके साथ अपनी टीका-टिप्पणियाँ पेश करते हैं । जहाँ लड़के हों, वहाँ बादशाह और वीरवल तो ज़रूर होंगे ही । स्त्रियाँ हमेशा यात्राकी ही बातें करेंगी, और अगर अक ही गाँव की हों, तो सास-बहूके सनातन संग्रामकी बातें करेंगी । हिन्दुस्तानके किसी भी प्रान्तकी स्त्रियाँ दूसरे किसी भी प्रान्तकी स्त्रियोंसे धर्मशालामें बातचीत कर सकती हैं । भाषाकी अड़चन तो सुशिक्षित लोगोंके लिये होती है । स्त्रियाँ यानी पुरानी दुनिया । यहाँ विचार, भावनायें, वहम, रीति-रिवाज और आदर्श सब अक ही होते हैं । फिर बातचीतमें कौनसी बाधा हो सकती है ? जब दो अंग्रेज़ मिलते हैं, तो वे उस दिनकी हवाके बारेमें चर्चा करने लगते हैं; इसी प्रकार जब दो स्त्रियाँ मिलती हैं, तो तुम्हारे बाल-बच्चे कितने हैं, लड़कियाँ कश-कहाँ ब्याही हैं, उन्हें समुद्रालमें सुख है या दुःख, घरकी पुरखिनने तीर्थयात्रा की है या नहीं, आदि बातें होने लगती हैं । दुकानदारकी स्त्री इस चर्चामें शामिल होकर अपने दुःखकी कहानी पाँच हजार छः सौ बारहवीं बार सजल आँखोंसे सविस्तर, ज्योंकी त्यों,

सुनाती है। और अधिकतर उसका यह वर्णन अकारथ नहीं जाता। प्रेमल यात्री — दुष्ट दुकानदार द्वारा ठगे गये यात्री — दुकानदारकी लीका दुःख देखकर और मनमें इस बातका सन्तोष मानकर कि वह भी अन्हींकी तरह दुकानदारसे द्वेष करती है, विदा होते समय उसे कुछ-न-कुछ दे जाते हैं। दुकानदारोंकी भी हरएक प्रान्तके विषयमें अपनी राय बनी होती है, और वे भी उसे ठीक बाबा-चैरागियोंकी तरह ही स्पष्टतासे प्रकट कर देते हैं, क्योंकि पिनलकोडकी कोअी भी धारा बाबा-चैरागियों तथा दुकानदारोंके लिये नहीं है।

जब देशी रियासतोंके रअीस धर्मशालामें टिकते हैं, तो रियासतोंके तारतम्यकी चर्चा छिड़ती है, और दरबारके भीतरी पङ्क्तियों तथा प्रपंचोंका भेद वे 'सिर्फ आपसे' कहते हैं। वे अितने बेवफा नहीं होते कि चाहे जिससे अपने दरबारकी किम्बदन्तियाँ कहते फिरें, लेकिन 'आप' तो खानदानी आदमी ठहरे। 'आपसे' औसी बातें कहनेमें भला क्या हर्ज हो सकता है?

हमें अेक देशाभिमानी और सनातनधर्माभिमानी व्यापारीसे पाला पड़ा। हस्तिनापुरकी तरफ़ उनका अपना अेक 'गुरुकुल' था — नहीं, नहीं, 'गुरुकुल' नहीं, 'ऋषिकुल'। 'गुरुकुल' तो आर्यसमाजियोंके होते हैं। अतएव सनातनियोंके तो ऋषिकुल ही हो सकते हैं, और वैष्णवोंके आचार्यकुल। बाबा-चैरागी हों, तो उनके 'मुनिमण्डल' या 'साधु-आश्रम' होते हैं। और गंगा-पुत्रोंकी संस्था हो, तो वह होगी 'पण्डाकुमार महा-विद्यालय'। परन्तु यह सब ज्ञान मुझे हरद्वार जानेपर हुआ। हस्तिनापुरके व्यापारीने कहा — "पारसाल ही हमारा ऋषिकुल स्थापित हुआ था। पर अवतक हमें कोअी अध्यापक नहीं मिला है। अेक ब्राह्मण फ़िल-हाल काम चला रहे हैं; परन्तु लड़के अैसे हैं कि उनके कान काट लें। आपके-जैसा कोअी अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा — ग्रेजुअेट — साधु वहाँ आवे, तो लोगोंपर असर पड़े और प्रचारके लिये जानेपर फण्ड भी अच्छा अिकट्टा हो। आप आ जायें तो, हमें रोज़ आपके दर्शनोंका लाभ हो, 'भव बन्ध' कट जायें, और सिद्धी आर्यसमाजी अदरक खाये हुअे चूहेकी तरह चुप हो जायें। हमने ऋषिकुल अिसीलिये स्थापित किया है।

हमारे यहाँ दो आर्यसमाजी प्रचारक आये थे। उन्होंने सनातन धर्मकी निन्दा करना शुरू किया। हमारे ऋषिकुलमें ऐसा कोअी पण्डित न था, जो उन्हें जवाब देता। इसलिये हमने अर्जुन तार देकर हरद्वारसे तीन सनातनी उपदेशक बुलवाये और उन्हें इस क्रूर लड़ाया कि कुछ न पृच्छिये ! तीन दिनतक शास्त्रार्थ हुआ !” मैंने बीचमें पूछा — “किस खास विषयको लेकर ?” उन्होंने कहा — “अजी साहब, आपके शास्त्रकी बातें हम क्या जानें ? हम थोड़े ही संस्कृत पढ़े हैं ? लेकिन आखिर आर्य-समाजियोंको ही चुप होना पड़ा और हमारी जीत हुई। विपक्षी तो नाहक कहते रहे कि जीत तो हमारी ही हुई; लेकिन आप ही बताइये कि अगर उनकी जीत हुई होती, तो भला उनके पंडित चुप बैठते ?”

अस महायुद्धका वर्णन मैंने अुदासीनतासे सुना, यह देख उनका मजा कुछ किरकिरा हुआ। उन्होंने पूछा — “आप आर्यसमाजी तो नहीं हैं ?” मैंने कहा — “जी नहीं, मैं तो कट्टर सनातनी हूँ।” उन्होंने कहा — “तब तो आप जरूर हस्तिनापुर आइये। हम आपके लिअे बढ़िया कुटी बनवा देंगे, अलग रसोअिया रख देंगे, और अंग्रेजी समाचार-पत्र मँगवा देंगे। आपके व्याख्यानोंका लाभ हमें मिलेगा।” मैंने कहा — “दूसरा कोअी संकल्प न होता, तो शायद मैं आ जाता; परन्तु मुझे तो उत्तराखण्डकी यात्रा करनी है और तदुपरान्त पुरस्चरण करना है।”

अपने सारे विचार उनपर प्रकट करनेकी हिम्मत मुझे कहाँसे होती ? और अगर प्रकट करता भी, तो वे कौन उन्हें समझनेवाले थे ?

दूसरे दिन हम रेलमें बैठे और चले। हिमालयकी यात्राके बाद रेलकी यात्रा केवल नीरस ही नहीं, असह्य भी हो जाती है। अक-अक खेतके अन्तरसे चलनेवाले हम तीनों आधी बेंचपर सिकुड़कर बैठे थे। जंगलके वृक्षोंकी खरखराहटके बदले डब्बेके भीतर मुसाफिरोंका शोर सुनाअी दे रहा था ! बरेली होकर हम लुक्खर गये, और वहाँ गाड़ी बदलकर आधी रात बीते हरद्वार पहुँचे।

रामकृष्ण-सेवाश्रम

तीर्थ-यात्रासे पुण्य होता है, लेकिन चाहे जिस ढंगसे यात्रा करनेसे नहीं । जो पैदल चलकर जाता है उसे पूरा सौ फ्रीसदी पुण्य मिलता है । जो आदमीके कन्येपर या पालकीमें बैठकर जाता है, उसे आधा पुण्य मिलता है । जो पशुकी सवारीपर 'तीर्थ' करता है, उसका पुण्य लगभग नहीं के बराबर होता है; और (आजकी स्थितिमें अतना और जोड़ देना चाहिये कि) रेल या मोटरमें बैठकर जो तीर्थ करे उसे पुण्यके बदले पाप ही लगेगा । रेलकी यात्रामें किसी तरहकी अच या धार्मिक भावनाका परिपोष नहीं होता । और आज तो रेलकी यात्राका अर्थ है, स्वाभिमानका नाश । हम पैसे देकर अक 'चिट्' खरीदते हैं, और उसे लगाकर पारसलकी तरह डब्बेमें दाखिल हो जाते हैं । फ्रँक अतना ही है कि दूसरे पारसल मुकाम आनेपर बाहर फेंक दिये जाते हैं और हम अपने आप बाहर निकल आते हैं ! गाड़ीमें बैठे-बैठे हम भविष्यकालकी तरफ नहीं जाते, बल्कि बाहरकी दुनिया ठण्डी साँसें भरती हुआ भूतकालकी तरफ दौड़ती जाती है । जहाँ संयोगवशात् दो आदमियोंके निकट आनेपर भी उनमें प्रेमभाव पैदा नहीं होता, उस स्थानको नरक ही कहना चाहिये । तीर्थस्थान तक रेलगाड़ी ले जाना असुरोंका काम है । रेलमें बैठकर यात्राका पुण्य अर्जन करना गयासुरके दिये हुआ मोक्षके समान है । गुजरातने डाकोर और सिद्धपुरको तो भ्रष्ट किया ही, अब पश्चिमी घाम श्री द्वारकाजीको भ्रष्ट करनेका प्रयास शुरू हुआ है । कलियुग जो ठहरा ! रवीन्द्रनाथ कहते हैं — “कलियुग यानी कल-(यंत्र) युग ।”

हरद्वार अर्थात् गंगाद्वार । भागीरथी गंगा गंगोत्रीसे निकलकर महादेवकी जटामें अर्थात् हिमालयके अरण्यांमें फैस गयी । फिर दो पहाड़ों या पहाड़ियोंके बीचसे ज्यों-त्यों रास्ता निकालकर आगे बढ़ी है । जब टिकट लेनेके लिये लोग सँकरे रास्तेसे निकलते हैं, तब जैसी भीड़ और अड़चन होती है, उसी तरहकी अड़चन पहाड़ोंमें गंगाजीको होती

है। जब कोभी बड़ा भारी जुलूस तंग गलीसे निकलकर विशाल मैदानमें प्रवेश करता है तो लोग छुटकारेकी साँस लेते हुअे स्वतंत्रतासे दसों दिशाओंमें बिखर जाते हैं। वही दशा हरद्वारके पास श्री गंगाजीकी हुआी है। जिस तरह गोशालासे छूटे हुअे बछड़े केवल स्वतंत्रताका अनुभव करनेके लिये ही अधर-अधर चौकड़ी भरते हैं, उसी तरह यहाँ गंगा अनेक धाराओंमें दीड़ती है। उसके प्रत्येक प्रवाहका उल्लास भी बालवृत्ति ही प्रकट करता है। नीलधारा कुछ गम्भीर ज़रूर है, लेकिन जिस तरह छोटे-छोटे लड़के अपने दादाकी पगड़ी बाँधकर, हाथमें लकड़ी लिये, गम्भीरतासे चलते हैं, कुछ उसी तरहकी यह कृत्रिम गम्भीरता है। नीलधारा अपनी गम्भीरताको निबाह भी नहीं सकती। हरद्वार जिस प्रकार गंगाजीके लिये पहाड़ छोड़कर मैदानमें प्रवेश करनेका प्रथम द्वार है, उसी प्रकार यात्रियोंके लिये हिमालयकी यात्राके आरम्भमें तराभी छोड़कर पहाड़में प्रवेश करनेका भी द्वार है। उत्तराखण्डकी यात्रा यहींसे आरम्भ हुआी मानी जाती है। हरद्वारतक रेल है, फिर भी यह तीर्थ-स्थान अपेक्षाकृत बहुत स्वच्छ है। भले इसका एक कारण यहाँकी म्युनिसिपैलिटीकी स्थायी आमदनी हो, परन्तु मुख्य कारण तो यह है कि हरद्वार साधुओंका स्थान है। बाबा और संन्यासियोंमें दूसरी तरहकी गन्दगी चाहे जितनी हो, लेकिन इसमें शक नहीं कि वे शारीरिक स्वच्छता खूब रखते हैं।

हम रातके दो बजे हरद्वार पहुँचे। वहाँ हम किसीको जानते न थे, और न किसी पण्डेके मेहमान ही बनना चाहते थे। इसलिये हमने पहलेसे ही पत्र लिखकर हरद्वारके पास कनखलके रामकृष्ण-सेवाश्रममें ठहरनेका प्रबन्ध कर लिया था। रातके दो बजे हमें स्टेशनसे आश्रम तकका रास्ता कौन बताये? हमने एक कुली लिया, उसे चार आने देना कबूल किया, और अँधेरेमें चल पड़े। हमें आपसकी बातचीतमें अंग्रेज़ी शब्दोंका प्रयोग करते सुनकर वह कुली बोला — “Oh, Sir, you are gentleman. I knows English, Sir. I am gentleman coolie, Sir. I have ten years live in Dehradun, Sir.” हम हँस पड़े। उसका अंग्रेज़ी वाक्-प्रवाह बराबर

चलता रहा। फिर भी हमने उससे हिन्दीमें ही बोलनेकी अरसिकता या असभ्यता दिखायी। पर यह बात तो अब कैसे छिप सकती थी कि हम अंग्रेजी जानते हैं? वह हमसे अंग्रेजीमें ही बोलता था।

जब सेवाश्रमके पास पहुँचे, तो हमारा 'जण्टलमन कुली' बोला — 'Give me four anna bit, Sir. Copper is very heavy Sir.' स्वामीके मुँहसे जवाब निकल पड़ा — 'Oh! I see. But certainly it is not heavier than the luggage you brought!'

रातके ढाँची बजे किसे जगाते? आश्रमके रुग्णालयके एक चबूतरे-पर हम सो गये। सबरे किसीके अठनेसे पहले ही चोरोंकी तरह अधर-अधर घूम-घामकर शौच हो आये, मुँह धोया, और मठपति स्वामी कृष्णानन्दजीसे मिलने गये। अन्होंने प्रेमसे हमारा स्वागत किया, और हमें अपना सामान रखनेके लिये एक कमरा दिखाया।

जब स्वामी विवेकानन्द सारे भारतवर्षकी और बादमें सारी दुनियाकी यात्रा करके लौटे, तो अन्हें यह बात सूझी कि इस नये युगमें साधुओंके लिये नयी अुपासनाकी जरूरत है। जीते-जागते परन्तु भूखे-प्यासे, दीन, अपंग या रोगी-नारायणकी सेवा करना ही आज मोक्षका अुत्तम मार्ग है — दयाभावसे नहीं, किन्तु सेवाभावसे; किसीपर अुपकार करनेके लिये नहीं, किन्तु सेवा करनेके सुयोगके लिये निहोरा मानकर। स्वामीजीके गुरु-भाषियोंने और शिष्योंने काशी, प्रयाग, पुरी, हरद्वार, मायावती, वृन्दावन, आदि तीर्थस्थानोंमें रुग्णालय अथवा सेवाश्रम स्थापित किये हैं।

हरद्वारका सेवाश्रम ब्रह्मदेवकी सृष्टिकी तरह शून्यमेंसे अुत्पन्न हुआ है। मायावतीवाले स्वामी स्वरूपानन्दजीने कहींसे दो सौ रुपये जमा किये थे। अन्हें लेकर स्वामी कल्याणानन्द हरद्वार आये। वे न तो हिन्दी जानते थे और न वैद्यक। सरस्वतीका भी अुनपर कृपा-प्रसाद नहीं था। इसलिये आज भी वे 'मुखदुर्बल' ही हैं। लेकिन अुनकी श्रद्धा अडिग थी। देवदारके एक सन्दूकचेमें कुछ 'होमियोपैथिक' दवाधियाँ रखकर एक झोंपड़ीमें अुन्होंने अपना धन्धा शुरू कर दिया। धीरे-धीरे धन्धेमें बरक़त हुआ। किमी मारवाड़ीने दस हजारका एक मकान बनवा दिया। कल्याणानन्दजीने

वैद्यकका अध्ययन किया। उनके हाथको जस मिला, और काम भी धड़लेके साथ चल निकला। निश्चयानन्द नामके एक महाराष्ट्रीय संन्यासी उनके सहायक हैं। ये स्वामी विवेकानन्दके शिष्य हैं। स्वयं मराठी ठीक-ठीक बोल नहीं पाते। लेकिन उन्हें बँगला अच्छी आती है। ये सज्जन भी मितभाषी ही हैं। सुबहसे लेकर शामतक काम ही काम करते रहते हैं। थकान-जैसी कोआ चीज़ वे जानते ही नहीं। अलबत्ता, दस-पाँच सवालोक़ा जवाब देना पड़ जाय, तो थक जाते हैं। उनके गुरुजीने उनके लिये नाम भी यथार्थ ढूँढ़ निकाला है।

सेवाश्रममें सैकड़ों रोगी — क्या साधु और क्या गृहस्थ — रोज़ आते हैं। उनमें जो ज़्यादा बीमार होते हैं उन्हें रुग्णालयमें रखा जाता है। तपेदिक़के लिये अलग मकान है। धनवान लोग कितनी ही फ़ीस क्यों न दें, पर कल्याणानन्दजी गरीबोंको छोड़ पहले धनवानोंके यहाँ कभी नहीं जाते। जिस समय हम सेवाश्रममें गये, उस समय रामकृष्ण-मिशनके अध्यक्ष और श्री रामकृष्ण परमहंसके प्रिय शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द वहाँ आये हुअे थे। उन्हें 'राखल राजा' अथवा 'राजा महाराज' भी कहते हैं। हमें उनके दर्शनोका अपूर्व लाभ हुआ। दूसरे साधु काशीके अद्वैताश्रमके मठपति शिवानन्दजी थे। स्वामी विवेकानन्दने उनका नाम 'महापुरुष' रख दिया था। उनसे श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और उनके संघ (मिशन)के विषयमें बहुत-सी तफ़्सीलें सुननेको मिलीं। कॉलेजमें स्वामी विवेकानन्दके लेख पढ़कर ही नास्तिकताका मेरा ज्वर और संशयवादका गर्व उतर गया था। रामकृष्ण परमहंसको मैं इस युगके अवतारी पुरुषके रूपमें पूज्य मानने लगा था। ऐसी स्थितिमें जो रामकृष्ण परमहंसके प्रत्यक्ष सहवासमें रह चुके थे, उन पुरुषोंका दर्शन मेरे लिये बहुत प्रभावोत्पादक हुआ हो तो उसमें आश्चर्य क्या? मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दसे अकान्तका समय माँग लिया। उनसे मुझे बहुत आश्वासन मिला। मैं रामकृष्ण-मिशनमें शामिल नहीं हुआ, फिर भी वे मुझे अपना ही मानने लगे।^{*} मुझ घुमक्कड़को भी मानो घर मिल गया। हिमालयकी यात्रा करनेका अपना संकल्प मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दको बतलाया। उन्होंने आशीर्वाद दिया और हमने यात्राकी तैयारी शुरू की।

तैयारी

हमें बदरीनारायणकी यात्रा करनी थी। हरद्वारसे बदरीनारायण कितनी दूर है, किस रास्तेसे जाना पड़ता है, बीचमें कितने 'पड़ाव' आते हैं, साथमें क्या-क्या रखना चाहिये, सामान अुठानेके लिये कुली कहाँ मिलेंगे, वे कितनी मजदूरी लेंगे, रास्तेमें देखने लायक क्या-क्या है, यह सब हमें जान लेना था। कनखलके पास सरकारने एक बाँध बनवाकर गंगा नदीका प्रवाह रोका है। यहींसे गंगाजीकी प्रख्यात नहर कानपुर तक ज्ञाती है। रुड़कीके पास सोलाना नामकी एक नदी अिस नहरके रास्तेमें आती है। परन्तु इंजीनियर लोगोंने सोलाना नदी पर एक बड़ा भारी पुल बनाकर यह सारी नहर अिस पुल परसे निकाल दी है। अिस भगीरथ कार्यका वर्णन मैं अन्यत्र कर चुका हूँ।*

कनखलके पासवाले बाँधके परे एक टापूपर 'दाम्पार' नामका आश्रम है। वहाँके स्वामी केशवानन्दसे कुछ सहायता मिलनेकी सम्भावना थी, अिसलिये हम वहाँ गये। वहाँ केशवानन्द तो नहीं मिले, पर झाड़ीमें, पीपलके चबूतरेपर बैठे हुअे, दूसरे एक संन्यासी मिले। उनके शरीरकी गठन और अंग-कान्तिसे साफ़ मालूम होता था कि वे 'खुशहाल' यानी खा-पीकर सुखी रहनेवालोंमें हैं। वे चबूतरेपर आरामसे बैठे थे। अपनी लम्बी चादर घुटनों और कमरके चारों ओर लपेटकर अुन्होंने अपने शरीरकी 'रॉकिंग अीज़ी चेअर' (झलती आराम कुरसी) बना रखी थी। उनकी फलश्रुति यह है कि अिस आसनसे बैठकर मनुष्य घण्टों बातें करता रहे, तो भी वह थकता नहीं। उनसे हमें कोअी खास जानकारी नहीं मिली। अुल्टे रास्ता विकट है, जाना मुश्किल है, जानेवालोंमेंसे बहुतसे वापस आते ही नहीं, अिस तरह अुन्होंने हमें खूब डराया और यात्राका विचार छोड़ देनेकी बुद्धिमानी पूर्ण सलाह दी। तिसपर भी जब अुन्होंने हमारा

* (अपनी 'लोकमाता' नामक पुस्तकमें।)

अटल निश्चय देखा, तो अेक अुर्दू शेर सुनाया, जिसका अर्थ यह था कि जब कमर कसकर कोअी काम अुठा लो, तो फिर अुसे कभी न छोड़ो — चाहे मौत ही क्यों न आ जाय ।

अिस क्रीमती सलाहके लिअे अुनका आभार मानकर हम लौटे, और हरद्वारके बाज़ारकी ओर मुड़े । अुस समय कोट, कुरता आदि कपड़े पहनना मैं छोड़ चुका था । सिला हुआ कपड़ा मेरे काम नहीं आ सकता था, और ओढ़नेके लिअे मेरे पास काफ़ी न था । अिसलिअे अेक कानपुरी शाल और दो मफलर खरीद लिये । अेक पतला-सा तवा, अेल्युमीनियमकी अेक पतीली, अेक ढक्कन, अेक रकाबी, पीतलकी अेक मोटी लुटिया और अेक छोटी-सी थाली, अितनी चीज़ें और खरीद लीं । (यात्रासे लौटते वक़्त अिसी बाज़ारमें नमदेकी दो बढ़िया ‘धुग्घी’ मिल गयीं । हमने वे धुग्घियाँ लीं । ‘धुग्घी’ यानी माथे से कमरके नीचेतक शरीर ढँकनेवाली नमदेकी लम्बी टोपी । यह सिली हुई नहीं होती ।) अितनेमें मनमें विचार आया कि चौमासेके दिन हैं, अपने पास मोमकण्ठ हो तो अच्छा । मेरा यह विचार बहुत ही अुपकारक साबित हुआ । कपड़े, बिस्तर सब बाँध लेनेके बाद हम अुसपर मोमकण्ठ लपेट लेते थे । फिर चाहे जितनी बारिश हो, और हम चाहे जितने भीगे हों, तो भी रातको हमें बिलकुल सूखा बिछौना मिलता था । कुनैनकी शीशी तो मेरे पास थी ही । मोमबत्तियाँ, दीयासलाअी, साबुन, कामके लायक चिह्नर और बाबाजीके लिअे ठोस बाँसकी लम्बी लाठी, ये चीज़ें हमने रख लीं और यात्राके लिअे सज्ज हो गये ।

सुना कि हरद्वारके बाहर भीमगोड़के पास कुलियोंका अड्डा है । वहाँ जाकर कुलियोंका भी अिन्तज़ाम कर लिया । अेक दिन और हरद्वार तथा कनखल देखनेमें बिताकर यात्राके लिअे प्रस्थान किया । हमें यात्रापर जानेकी जल्दी थी, पर पाठकोंको तो अुसका वर्णन सुननेकी अुतावली हो ही नहीं सकती । वे हरद्वार और कनखलका सविस्तर वर्णन सुने बिना मुझे छोड़ेंगे नहीं, अिसलिअे पहले शान्तिपूर्वक अिनक़ा वर्णन करना ठीक होगा ।

गंगाद्वार

हरद्वार, कनखल, और ज्वालापुर तीनोंकी अपनी अेक समष्टि है। हरद्वार तीर्थ-यात्रियोंका नगर है, ज्वालापुर पण्डोंका धाम है, और कनखलको संन्यासियोंका स्थायी शिविर कह सकते हैं। तीनों पास-पास होनेपर भी अलग-अलग हैं। तीनों स्थानोंमें मिश्र बस्ती है। तीनों जगह बड़ी-बड़ी धर्मशालायें हैं, सदावर्त हैं, और विद्यालय भी हैं। तीनोंमें कनखल और हरद्वार दो पुराने हैं। और, पुराणोंमें दोनोंका माहात्म्य बहुत वर्णित है। कनखलसे थोड़ी दूर नदीके उस पार आर्यसमाजियोंका गुरुकुल है। (अेक बहुत बड़ी बाढ़में यह गुरुकुल बह गया था। इसलिये अब यह संस्था गंगाजीके इस पार कनखलमें आ गयी है।) हरद्वार और ज्वालापुरके बीच सनातनियोंका ऋषिकुल है, और खास ज्वालापुरमें ऋषिकुलके समान सनातनी ढंगका, परन्तु आर्य-समाजी मतका, 'ज्वालापुर महाविद्यालय' है। तीनों संस्थाओंका अुद्देश्य अपने-अपने मतके अनुसार स्वधर्मका अुद्धार करनेवाले, कट्टर धर्मप्रेमी और धर्मोपदेशक तैयार करना है। तीनों संस्थाओंको प्रभावोत्पादक धर्मोपदेश करनेके लिये अंग्रेजी भाषा और लौकिक विद्याके ठोस ज्ञानकी आवश्यकता जान पड़ती है। जब मैं पहले-पहल तीनों संस्थायें देखकर लौटा, तो मेरे मनपर यह छाप पड़ी कि तीनों संस्थाओंमें संस्थापकों या अध्यापकोंकी अपेक्षा विद्यार्थियोंमें धार्मिक आग्रह (धर्मोन्माद) कम था। उनमें मताग्रहकी अपेक्षा स्वदेश-प्रेम अधिक था। आर्यधर्म या हिन्दूधर्मकी अपेक्षा राष्ट्र-धर्मका प्रभाव उनपर कहीं अधिक पड़ा था। अेक यात्रीके नाते मैं केवल अपने दिलपर पड़ी हुअी पहली छाप ही यहाँ बतला रहा हूँ। उसके बाद, अर्थात् यात्रा समाप्त होनेपर, अिन तीनों संस्थाओंसे मेरा परिचय बढ़ा। अुनके विषयमें बहुत-कुल कहा जा सकता है। परन्तु यात्रा-वर्णनमें अुसका समावेश नहीं हो सकता।

एक संस्थाने मेरा ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया। वह है, 'मुनि-मण्डल-आश्रम'। यह संस्था हरद्वार स्टेशन और ऋषिकुल्ले बीचमें है। 'मुनि-मण्डल-आश्रम' विद्यालय नहीं है। वह एक प्रकारका धर्म-तत्त्व-संशोधन-मन्दिर है। वहाँका ग्रंथ-भण्डार सुन्दर है। अकान्तमें बैठकर धर्म-चिन्तन और अध्ययन करनेवालोंके लिये बहुत उपयोगी हो सकता है। इस संस्थामें हरिवंशकी एक बड़ी पोथी है। पोथीके हरएक पन्नेपर एक या अधिक सुन्दर चित्र और उसके आस-पास तरह-तरहकी सुनहरी बेल-बूटी है। अक्षर त्रिलकुल मोतीके दाने-जैसे हैं। चित्रकारी जयपुरी पद्धतिकी अत्यन्त मनोहारी है। प्रत्येक चित्रके नीचे उसका परिचय दिया है। ग्रंथ मराठी भाषामें होते हुए भी उसकी लिखावट मराठी ढंगकी नहीं है। इसलिये मैं समझता हूँ कि यह अपूर्व ग्रंथ किसी मराठा सरदारने जयपुरी कारीगरोंसे लिखवाया होगा। मैंने बड़ौदा, जयपुर और बाँकीपुरकी खुदाबख्श लायब्रेरीके चित्र-संग्रह देखे हैं। काशी-नरेशके महलके भीतरकी दीवारोंपर 'रामचरितमानस'के अनेक प्रसंगोंके जो चित्र बने हैं, वे भी देखे हैं। परन्तु फिर भी हरिवंशमें दिये गये चित्र और विविध प्रसंग देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

कौन जाने भारतीय कारीगरीकी 'आला दरजेकी चीज़ें' कहाँ-कहाँ पड़ी होंगी, कहाँ-कहाँ सड़ रही होंगी, और उनमेंसे कितनी देशसे निर्वासित हो चुकी होंगी! मन इस विचारसे अद्विग्न हो उठा। कितने ही ग्रंथ लन्दन म्यूजियममें या बर्लिनके म्यूजियममें पहुँच गये हैं। कितने ही चित्र और मूर्तियाँ आज बोस्टन-म्यूजियमकी शोभा बढ़ा रही हैं। अपनी ऐसी विडम्बना होती देख भारतकी कला फूट-फूटकर रोती होगी! मनमें इस विचारके आते ही मुँहसे सहसा सुविख्यात मराठी कवि केशवसुतकी यह पंक्ति निकल पड़ी—

‘देवारे!’ मग ती स्फुन्दे

‘अवढा तरीलाभुं दे।’*

* अर्थात् फिर वह सिसकती हुई कहती है—“हे भगवान! कम-से-कम अतिना तो नसीब होने दे!”

वहाँके साधु लायनेरियन मुझसे पूछने लगे — “आपने क्या कहा ?” मैंने जवाब दिया — “कुछ नहीं, स्वामीजी ! मैं यही चाहता हूँ कि ऐसे रत्न देशके देशमें ही रहें । जैसे यशोदा मैया श्रीकृष्णका जतन करती थीं, वैसे ही आज अस हरिवंशका जतन होना चाहिये !”

ये हुआ थोड़ी-बहुत आधुनिक पद्धतिकी संस्थायें । पुरानी पद्धतिके अखाड़े, गुफायें और साधुओंकी कोठियाँ तो यहाँ चाहे जितनी हैं । सिक्खोंकी धर्मशालायें, बुदासीपंथके मकान, और शांकरमतके दशनामी अखाड़े तो ऐसे क्षेत्रोंमें होते ही हैं । अन्नसत्र देखनेके लिये मैं खास तौरपर गया । अहल्याबायी, अर्थात् महाराष्ट्रकी धर्मश्रद्धा, महाराष्ट्रका दान-नैपुण्य ! अहल्याबायी, अर्थात् महाराष्ट्रकी नारी-प्रतिष्ठा ! अस पुण्य-श्लोक रानीने अपनी प्रजाका मातृवत् पालन किया । वैराग्य-साधनामें जीवन व्यतीत किया, कुशलतासे राज्यकी रक्षा की, और आसेतु-हिमाचल तीर्थ-तीर्थमें अन्नसत्र खोलकर अपनी कीर्तिको अजरामर बनाया । आज भी अहल्याबायीके नामसे काशीसे गंगाजलकी एक कौंवड़ भरकर प्रति दिन रामेश्वर जाती है । परन्तु अहल्याबायीने अिनमेंसे एक भी काम अपने नामके लिये नहीं किया । एक ब्राह्मणने अहल्याबायी की स्तुतिमें एक सरस ग्रंथ लिखा, और वह अन्हें दिखाने गया । उस साध्वीने ब्राह्मणको दक्षिणा दी, और वह ग्रंथ लेकर पानीमें डुबा दिया ।

बाबाजीने मुझसे पूछा — “तुमसे किसने कहा कि हरद्वारमें अहल्याबायीका अन्नसत्र है ?” मैंने कहा — “किसीके कहनेकी जरूरत ही नहीं है । मुझे अपने आप लगा कि यहाँ अहल्याबायीका अन्नसत्र जरूर होगा ।” मुझे छुटपनकी एक बात याद आ गयी । बाबाजीसे मैंने कहा — “जब मैं छोटा था, तो एकवार गोकर्ण-महाबलेश्वर गया था । वहाँ भी अहल्याबायीका एक अन्नसत्र था । हम उसके पास ही ठहरे थे । दोपहरको बारह बाजे एक भूखा यात्री अन्नसत्रमें आया । वहाँका व्यवस्थापक अितना श्रद्धालु न था कि यह अतरा हुआ मुटका फिर पहनकर उस अतिथिको भोजन कराता । असलिये उसने मेरी मारफत अतिथिको भोजन करानेकी युक्ति निकाली । मैं मुश्किलसे आठ बरसका रहा हूँगा । तब मेरा जनेअू भी नहीं हुआ था । असलिये मैं

तो आठों पहर पवित्र ही था। मैंने तुरन्त कपड़े फेंक दिये और अन्नसत्रकी रसोत्रीमेंसे अक पत्तल परोस लाया। पत्तल अतिथिके सामने रख दी, और फिर कपड़े पहनकर माँके पास आ गया। मैंने माँसे पूछा — “यह मन्दिर किसका है?” जवाबमें माँने अहल्याबायीके विषयमें अक लम्बा गीत गाया। उस दिनसे मैं अहल्याबायीको पूज्य भावसे देखता आया हूँ। अहल्याबायी धनगर (गडरिया) जातिकी थीं। परन्तु आज गोकर्णमें कट्टर ब्राह्मण भी अहल्याबायीकी मूर्तिकी पूजा करते हैं।”

अरे! लेकिन मैं हरद्वारकी बात छोड़कर गोकर्ण कहाँ जा पहुँचा? यात्रा करनेवाला मनुष्य हमेशा स्थानान्तर करता रहता है। उसी तरह उसे विषयान्तर करनेकी भी आदत पड़ जाती है। प्रवासी बावूनी तो होता ही है। आप हरद्वारके किसी भी अग्लाड़ेमें चले जाइये। वहाँ आपको देश-देशान्तरकी बातें सुनानेवाले संन्यासी मिलेंगे। ज्वालापुरमें आप जैसे पण्डे पायेंगे, जो बिना अक भी लम्बी यात्रा किये आपको सारे हिन्दुस्तानका हाल सुना सकते हैं। संन्यासी आपसे निरपेक्ष भावसे बात करेंगे। पर पण्डे तभी बात करेंगे, जब देखेंगे कि आप मालदार हैं। परन्तु अनुकी बातोंमें माल (तथ्य) होता ही है, सो माननेकी कोअी वजह नहीं।

शामको धूप कम हो जानेपर गंगाजीके घाटपर हज़ारों, बल्कि लाखों, यात्री अकट्टा होते हैं। बम्बयीमें जिस प्रकार चौपाटीपर भीड़ लगती है उसी तरह हरद्वारमें ‘हरकी पैड़ी’के पास लोगोंकी भीड़ लगती है। जगह-जगह साधु-सन्त और धर्म-प्रचारक व्याख्यान देते हैं, भजन कीर्त्तन करते हैं, फेरीवाले अपना व्यापार करते हैं, और स्त्रियाँ मँगतों तथा साधुओंसे होनेवाला सारा उपद्रव सहकर भी अपनी प्रसन्नता क़ायम रखती हुअी गंगाजीके प्रवाहमें दीप-दान करती हैं।

दीप-दान मुग्ध स्त्री-संसारका अक अनुपम काव्य है। असंख्य जीव जीवन-स्रोतमें पड़कर, सुख-दुःखकी लहरोंपर उतराते हुअे, भाग्य-पवनके झोकोंपर अधर-अधर नाचते हैं; कुछ शुरूमें ही डूब जाते हैं, कुछ दूसरे बिना किसी तरहका अनुभव प्राप्त किये ही उस पार पहुँच जाते हैं; कुछ दो-दोकी जोड़ीमें चलते हैं, और कुछ तो अपनी छोटी-सी

नैया ही जला डालते हैं, और इस प्रकार दो क्षणोंकी दीप्ति दिखाकर लुप्त हो जाते हैं; कुछ ऐसे भी होते हैं, जो अपने सौम्य तेजके आस-पास पर्याप्त स्नेहका संग्रह रखकर बहुत दूरतक सही-सलामत जाते हैं, और दूसरोंके लिये दिशा-दर्शक बन जाते हैं। दीप-दान इसका एक प्रतीक है। एक ओरसे असंख्य दीपोंकी विशृंखल पंक्ति भाग्य-स्रोतमें बहती जाती है, और दूसरी ओर मन्दिरोंमें असंख्य घण्टोंकी तालबद्ध झंकार हवाकी लहरोंपर होती हुयी अनन्तके हृदयमें प्रवेश करती है, और गंगा मैया एक-दूसरेसे लड़-भिड़कर चिकने, सुन्दर और अहिंसक बने हुये कंकरोँके साथ खेलती तथा हँसती हुयी यह सब सुनती रहती है। कैसा काव्यमय दृश्य है ! आकाशमें तारे भी एक क्षणके लिये स्तब्ध होकर यह दृश्य देखते हैं। अपना सनातन संगीत स्थगित कर तारे यह घण्टानाद सुनते होंगे, और अपना दिव्य नर्तन स्थगित कर वे इस दीपमालाकी शोभा निहारते होंगे ! गंगा मैया अपने कलरव द्वारा कहती होंगी — “ हिन्दुस्तानमें आयी हुयी देश-देशान्तरकी सन्तानें मेरे प्रिय कंकरोँकी तरह सहिष्णु और अहिंसक बनकर, एकत्र व हिलमिलकर रहेंगी — उसे सिद्ध करनेवाली मैं भारतकी संस्कृति हूँ । ”

चन्द्रमा अस्त हुआ और हम गंगाजीके किनारे-किनारे चलते हुये कनखल आ पहुँचे । रास्तेमें घासकी चटाइयोंके बने हुये कुछ झोंपड़े देखे । झोंपड़ोंकी रचना, उनकी सादगी, सुन्दरता और सुथरापन देख मैं खुश हुआ । साधुओंमें मकानोंके विषयमें कुछ कोटिकी अभिरुचि होती है, और अपनी कुटीके आस-पासकी स्वच्छता वे बहुत परिश्रमपूर्वक रखते हैं । यदि आधुनिक तिरस्कार-भावनाको छोड़कर आप उनसे मिलें, तो आप उनमें पर्याप्त मात्रामें कुलीनता, बहुश्रुतता, तितिक्षा आदि गुण पायेंगे । जिस प्रकार साधुओंकी यह झूठी धारणा होती है कि मोजे, जूते, टोप पहनने और चश्मा लगानेवाले लोग नास्तिक एवं धर्मभ्रष्ट होते हैं, उसी प्रकार आधुनिक सुधारवादियोंकी समझमें प्रत्येक गेरुआ कन्थाके अन्दर एक निठल्ला, धूर्त, अलाल और पाखण्डी व्यक्ति छिपा होता है । यदि बाह्य आकारकी पूजा अज्ञानकी द्योतक है, तो बाह्य आकारपर से क्लायम हुयी तिरस्कार-भावना भी अतनी ही अज्ञानकी द्योतक है ।

मुझे यह देखकर थोड़ा विषाद हुआ कि हरद्वारमें भी अंग्रेजी बोल सकनेवाले साधुओंकी प्रतिष्ठा ज्यादा है। परन्तु हमें तो अंग्रेजीदाँ साधुओंकी अपेक्षा हमारा सामान ढो सकनेवाले कुलीकी ही चिन्ता अधिक थी, जिसलिअे दूसरे दिन हम कुलीकी तलाशमें कनखलसे भीमगोड़की तरफ गये।

२१

प्रस्थान

हरद्वारसे गंगाके किनारे-किनारे चलकर गंगोत्रीकी खोजमें जो सबसे पहला यात्री निकला होगा, क्या हमें उसका इतिहास कहीं मिल सकता है ? मेरी धारणा है कि गंगोत्री, जमनोत्री, केदार, बदरी, अमरनाथ खोजरनाथ, मानसरोवर, राकसताल, अमरकण्ठक, महाबलेश्वर, त्र्यम्बक आदि सारे तीर्थस्थान नदीका अद्गम खोजनेकी प्राकृतिक जिज्ञासाके ही परिणाम हैं। उत्तर ध्रुवके आसपास रहनेवाले आर्य लोग इस बातकी शोध करनेके लिअे बाहर निकले कि हमें अणुता देनेवाला सूर्य कहाँसे अदय होता है और कहाँ अस्त होता है, और चारों महाद्वीपोंमें फैल गये। उसी प्रकार हिन्दुस्तानकी सन्तानें अपने-अपने ढोर-बछेरू लेकर, या अकेले ही, नदीके अद्गमकी शोध करती हुअी घूमि हों, तो कोअी आश्चर्य नहीं।

मैं कह चुका हूँ कि यात्राका अद्देश्य धार्मिकके अतिरिक्त फ़ौजी भी हो सकता है। हमारे आद्य पुरुषोंने सोचा होगा कि सैनिक दृष्टिसे आस-पासके प्रदेशकी रक्षा करनेमें समर्थ कोअी ऊँचा स्थान, अथवा बहुत बड़ी संख्यामें अकत्रित लोगोंके उपयोगमें आने लायक कोअी जलाशय, किसी योग्य अथवा अयोग्य राजाके हाथमें रहनेकी अपेक्षा धर्मनिष्ठ प्रजाकी श्रद्धाका केन्द्र बन जाय, तो अधिक सुरक्षितता रहेगी। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' सूत्रका प्रत्यक्ष प्रमाण वहाँ मिल जाता होगा। केदार और बदरी तिब्बतके साथ व्यापारके नेतिघाटवाले रास्तेपर हैं। यह रास्ता

साल भरमें आठ-नौ महीने तो बर्फ ही बर्फसे ढँका रहनेके कारण बन्द ही रहता है, और सिर्फ़ चौमासेमें खुला रहता है। अन्हीं दिनों शान्तिमय व्यापार या अशान्तिमय आक्रमण हो सकता है। अगर अनि चार महीनोंमें ही हज़ारों यात्री अिस रास्ते आवागमन करेंगे, तो अिसका स्वाभाविक रीतिसे रक्षण होगा, और व्यापार भी सहज गतिसे बढ़ेगा। यही बात कैलाश और मानस-सरोवरकी है। लेपू घाट और ँँटाधुरा घाट हमें मानस-सरोवर और राकसतालके बीचसे ग्यानिमा और गडतोक्-जैसी तिब्बती मण्डियोंकी तरफ़ ले जाते हैं। मानस-सरोवर और कैलाश जानेवाला यात्री यदि वहीं 'कैलासवासी' न हो जाय, तो अवश्य यात्राके पुण्यके साथ-साथ तिब्बतके अमूल्य गालीचे और दूसरी चीज़ें लेकर आयेगा।

अगर पहेलीके साथ अुसका जवाब भी दिया गया हो, तो अुसे बृहन्नेके प्रयत्नका आनन्द जाता रहता है। यही बात आज यात्रियोंकी हो गयी है। आज हिमालयकी यात्रामें भी यात्राके मार्ग बहुत बड़े अंशमें सरल हो गये हैं। पुराने ज़मानेमें गंगोत्री या बदरीनारायणकी यात्रा करनेवाले अपनी जायदाद अपने बेटे-बेटियोंमें बाँट देते, सब सगे-सम्बन्धियोंसे मिलकर बिदा माँगते, और लड़ाहीपर जानेवाले सिपाहीकी तरह मौतका न्यौता स्वीकार करके ही प्रस्थान किया करते। अगर अुन्हें मौत न आयी, तो अुसमें अुनका कोअी क्रस्मूर न होता था। अिसे तो मृत्युकी ही लापरवाही कहना चाहिये ! आज बदरीनारायणसे भी यात्राके दिनोंमें तार भेज सकते हैं, और मनी-ऑर्डरसे पैसा मँगा सकते हैं। गंगोत्री-जमनोत्री की तरफ़ अितनी सुविधा नहीं है। अिसीलिअे अभी वहाँ पुण्यांश शेष रह गया है।

*

*

*

भीमगोबसे ज़रा आगे आनेपर हमें कुलियोंका ठिकाना मिला। हमें ज़रूरत तो अेक ही कुलीकी थी, पर हमें दो भाअी मिल गये। अुन्होंने कहा — “आपका बोझा तो अेक ही कुलीके लायक़ है, लेकिन हम दो जने अुसे अुठायेंगे। बस, आप हमें अेक ही आदमीकी मज़दूरी दीजिये।” वे हमारी भाषा नहीं जानते थे, अिसलिअे स्वामीने मराठीमें कहा — ‘काका, अच्छा तो है। हम अिन्हीं कुलियोंको ठीक कर लें। हमें अेकके

बदले दो कुली मिल रहे हैं। रास्तेमें हम दोनोंको अच्छी तरह खिलायेंगे, तो दोनों जीव खुश रहेंगे। हम हर मुकामपर अन्हें खिचड़ी खिलायेंगे। ये लोग खिचड़ीको हलुआ-पूड़ीसे भी अधिक राज-विलासी भोजन समझते हैं।” हमने अपना बोझा कैरासिंह और बहादुरसिंहके सिरपर चढ़ाया, और अपना भाग्य साथ लेकर खाना हुआ। ‘चराति चरतो भगः!’

२२

हृषीकेशके रास्तेपर

बार्यी तरफ़ घनी झाड़ीमेंसे होकर रेलकी पटरियाँ देहरादूनकी दिशामें अिस तरह जा रही थीं मानो जंगलमें कोई नागिन चल रही हो। जब-तक रेलकी ये पटरियाँ दीखती रहीं, तबतक बहुत चाहनेपर भी मनमें यह भाव पैदा नहीं हो पाता था कि हम किसी पवित्र यात्राके लिये खाना हुआ हैं। परन्तु थोड़ी देर बाद ही हमारे रास्तेने रेलवे लाइनसे असहयोग कर दिया, और एक सुन्दर पुलकी राह जंगलमें प्रवेश किया। हमें खाना होनेमें थोड़ी देर हो गयी थी, अिसलिये सत्यनारायण पहुँचनेसे पहले ही प्रायः दोपहर हो चुकी थी।

यहाँका मन्दिर सुन्दर है। मन्दिरके भीतर लक्ष्मीनारायणकी संगमरमरकी मूर्तियाँ अितनी आकर्षक हैं कि बरबस मनमें प्रेमभाव उपजाती हैं। मन्दिरके पुजारी महाराज दक्षिणाकी आशासे हमारी तरफ़ ताक रहे थे। क्या लक्ष्मीपति सत्यनारायणसे भी हमारे वदन-सरोज अधिक आकर्षक थे? बिल्कुल नहीं। परन्तु मन्दिरमें खड़ी संगमरमरी लक्ष्मीकी अपेक्षा हमारी गिरहमें छपी हुअी रौप्यलक्ष्मी पुजारीके लिये अधिक आकर्षक थी। हमने कुँअपर जाकर हाथ-पैर धोये और ज़रा विश्राम करनेके लिये मन्दिरमें जा बैठे। वहाँ अिस चिरपरिचित गानका स्फुरण हुआ —

आजिचा सुदीन रे सुदीन

आमुचा अुदयला भाग्याचा

आमुचा अुदयला भाग्याचा

आमुचा अुदयला भाग्याचा

लक्ष्मीनारायण पाहिला,

दयाघन देव वैकुंठिचा

दयाघन देव वैकुंठिचा

दयाघन देव वैकुंठिचा

लोकगीतकी रागमें तार स्वरसे गानेवाले मुझ-जैसे संगीत-शत्रुकी पुकार सुन कभी लोग वहाँ अिकष्टा हो गये । मेरा स्वर-तार टूट गया, और लज्जासे कुछ झेंपता-सा मुँह लेकर मैं वहाँसे खिसक गया ।

अिस स्थानसे कुछ ही दूरपर एक छोटा-सा झरना बह रहा था, और उसके आस-पासकी झाड़ीमें कभी लोग पाक-क्रिया सिद्ध कर रहे थे । हमने भी एक पाकानुकूल स्थान खोज लिया और चुल्हिकाकी अुपासना आरम्भ कर दी । रसोअी बनानेका जिम्मा बाबाजीने लिया, क्योंकि वे 'स्वयंपाकी' थे । वे स्वामीके या मेरे हाथका भोजन नहीं कर सकते थे । दक्षिणी देशस्थ ब्राह्मण जो ठहरे ! अिसलिअे हमें सदाके लिअे एक भारी राहत मिल गयी थी । स्वामी अीधन-पानीका अिन्तजाम करते थे । मैं चूल्हा सुलगाकर तैयार कर देता था । ज़रूरत होनेपर बज़ारसे सौदा लानेका काम भी स्वामीके ही सुपुर्द था । हर मुकामपर सामान खोलने और अुसे फिरसे बाँधनेके कौशलमें मैं सबसे प्रवीण था । (अिसमें भी कौशल होता है ।) और जबतक बाबाजी रसोअी बनानेमें लगे रहते थे, हम दोनों अुन्हें कोअी-न-कोअी सुन्दर चीज़ पढ़कर सुनाते थे ।

स्वामीके पास थोरोके निबन्ध थे । आज अुन्होंने अुनमेंसे प्राकृतिक मनुष्यका वर्णन पढ़नेके लिअे चुना था । पत्थरपर घासकी एक हाथ चौड़ी मेरी चटाअी बिछाकर स्वामी अुसपर विराजमान हुअे ! घासकी

चटाभी जंगलके पत्थरपर ठहरनेसे रही । जब मैंने देखा कि स्वामी प्राकृतिक मनुष्य बनकर मेरी प्यारी चटाभीके प्रति क्रूरताका व्यवहार कर रहे हैं, तो मैं चिढ़ गया । मैंने उनसे अुठनेको कहा । लेकिन जो स्वामी होते हैं, वे क्यों किसीकी मानने लगे ? मैं बहुत खीझ अुठा था । मैंने उनकी टाँग पकड़कर अुन्हें खींचनेका विचार किया; अितनेमें अेक सीड़ी-सा आदमी हमारे पास आया । अुसने पासके झरनेका पानी लेकर हमारे पैर पखारे और बोलने लगा — ‘अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफला क्रियाः’ । स्वामीने अुसे कुछ देकर विदा किया और हम लोग भोजन करने बैठे । बाबाजी जब परोसते, तो माँकी तरह प्रेमसे परोसते थे । हमने भोजन किया । कुछ देर आराम किया । और, फिर आगे प्रस्थान किया ।

रास्तेमें कैरासिंहने हमसे गंभीरतापूर्वक कहा — “आप अिस रफ्तारसे चलेंगे, तो हमारी नहीं निभ सकती । अिस तरह चार महीनोंमें भी यात्रा पूरी न होगी । मज़दूरीके सारे पैसे खानेमें ही खर्च हां जायेंगे । फिर हम सालभरकी कमाअी लेकर घर क्या जायेंगे ?” अुस बेचारेको क्या पता कि कुछ दिनों बाद हमारी गति अितनी ज़्यादा बढ़ जायगी कि हमारे पीछे दौड़ते-दौड़ते अुसका दम निकल जायगा ! सौझ होते-होते हम हृषीकेशमें बाबा काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें आ पहुँचे ।

साधुओंका पीहर

एक संन्यासीने किसी निराश व्यापारीको आशीर्वाद और प्रोत्साहन देकर फिर धन्येमें प्रवृत्त किया। धन्येमें व्यापारीके भाग खुले। संन्यासीने व्यापारीकी कृतज्ञताकी भेंट स्वीकारनेसे अन्कार किया और कहा —“तुम्हें पैसा ही खर्च करना है, तो हिमालयके यात्रियोंका कष्ट दूर करके उनके लिये सब तरहकी सुविधायें कर देनेमें भले ही खर्च करो।” व्यापारीने हृषीकेशसे बदरीनारायण तक यात्रियोंके लिये बहुत बड़ी सुविधायें कर दीं। संन्यासीने उनका देख-रेखका भार अपने श्रृंखल लिया। संन्यासी स्वयं अतने विरक्त थे कि अपनी देख-रेखमें चलनेवाले किसी भी ‘अन्नसत्र’में भोजन करनेसे पहले कुछ घड़े पानी लाकर ‘सत्र’के हौजमें डाले बिना न रहते थे। अन्न संन्यासीने ‘पक्षपात रहित अनुभव प्रकाश’ नामक एक ग्रंथ भी लिखा है। संन्यासीकी कफनी काले कम्बलकी बनी हुआ थी। असलिये उनका नाम बाबा ‘काली-कमलीवाले’ पड़ गया।

शामको हृषीकेशमें हम अन्हीं काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें पहुँचे। महाराष्ट्रमें भी धर्मशालायें होती हैं। परन्तु वहाँ मकानकी रखवाली करनेके अतिरिक्त रखवालोंका और कोई काम नहीं होता। पंजाबकी तरफ ‘धर्मशाला’ संस्था ही कुछ और तरह की है। सिक्खोंका ग्रंथसाहब जहाँ रखा और पढ़ा जाता है, उस स्थानको वहाँ ‘धर्मशाला’ कहते हैं। वास्तवमें यही यथार्थ है। ऐसे गुरुद्वारों अथवा धर्मशालाओंमें यात्री और अतिथि सुखसे रह सकते हैं। धर्मशालाके साधु अथवा व्यवस्थापक उनका सुविधाका विशेष ध्यान रखते हैं।

अस आतिथ्यकी मात्रा हमारी धारणा अथवा अच्छासे कहीं अधिक होती है। असलिये पहले अनुभवके अवसरपर मैं बिल्कुल दंग रह गया। धर्मशालामें पहुँचते ही हमारा स्वागत आमन्त्रित मेहमानोंकी तरह बड़े प्रसन्न वदनसे किया गया। दाहिनी तरफके छज्जेपर हमें एक कमरा दिया गया। एक आदमी आकर वहाँ चिराय जला गया। दूसरेने आकर

पूछा — “कौन-कौनसे बरतन-बासन चाहिँ?” हम लेनेको तैयार होते, तो वह हमें सीधा भी दे देता। पर इस तरहके स्वागतके लिये हम तैयार न थे, इसलिये मैं हैरान होकर एक कोनेमें जा बैठा। अनजान समाजके साथ धुल-मिल जानेकी कला स्वामी अच्छी तरह जानते हैं। बाबाजीकी और मेरी एक और कठिनायी थी। हमें हिन्दी नहीं आती थी। इसलिये घूमने-फिरनेके काम सहज ही स्वामीको करने पड़ते थे। वही हमारे ‘मुखिया’ बने। सारी यात्रामें अन्होंने अपना काम बड़ी योग्यतासे किया। कभी-सभी अुनके अुत्साहके कारण हमें कुछ सहना भी पड़ जाता था। लेकिन कुल मिलाकर अुनके नेतृत्वके कारण हमारी सुविधाकी योजना और शान्तिका निर्वाह सुचारु रूपसे होता था।

बाबाजीने रसोयी बनायी। लकड़ियोंके धुअेंने अपना ‘सासपना’ अच्छी तरह किया, इसलिये बेचारे बाबाजीको गूँगी बहूकी तरह खूब रो लेना पड़ा। तीनोंने मिलकर भोजन किया। मुख्य व्यवस्थापक संन्यासी जब हमारी कुशल और आवश्यकतायें पूछने आये, तो अुन्हें जवाब देनेका सुखतारनामा स्वामीको सौंपकर मैं चैनसे सो गया। धर्मशालामें अितने अधिक यात्री अिकट्ठा हो गये थे कि वहाँ तीसरे दरजेके मुसाफिरखानों जैसी ही भीड़-भाड़ थी। इसलिये आस-पास घूमने या निरीक्षण करनेको ज़रा भी जी न चाहा।

सबेरे अुठते ही स्वामीने हमारे सामने वह सादी जानकारी पेश की, जो अुन्होंने रातमें जुटायी थी। यहाँ अितनी धर्मशालायें हैं, अितने सदावर्त हैं; पास ही ‘झाड़ी’ नामका एक ‘बेर-बन’ है, अुसमें साधु लोग मंथैया डालकर रहते हैं; पंजाबी धर्मशालाकी आय बहुत है, आदि आदि सारी बातें सुनायीं। अुठकर शौच हो आये, तो हाथ-पैर धुलानेके लिये भी एक आदमी तैयार था! अितनी आवभगत यात्रियोंके लिये अच्छी नहीं, यह विचार अुस समय जो मनमें आया, सो आज भी क्रायम है।

हमारे काव्यों, पुराणों अथवा आजकलकी अद्भुत कथाओंमें शौचविधिका अुल्लेख कहीं आता ही नहीं। स्मृतिवचनोंके बाहर मानो अिसके लिये कहीं स्थान ही नहीं। अिस धर्मशालाके आस-पास भी अिस आवश्यक क्रियाके लिये कोअो नियत स्थान या किसी प्रकारकी व्यवस्था

नहीं है। दूसरी सारी सुविधायें तो आवश्यकतासे कहीं अधिक हैं। परन्तु यह प्राकृतिक आवश्यकता प्रकृतिके हवाले ही छोड़ दी गयी है। असलिये मैं मन ही मन सोचने लगा — “अगर मैं संन्यासी होऊँ और मेरे आशीर्वादसे कहीं कोअी हताश व्यापारी करोड़पति बने, तो उसे मैं पुण्यका यही मार्ग सुझाऊँ कि वह अेक भी नयी धर्मशाला न बनवाये, बल्कि भारतमें जहाँ-जहाँ धर्मशालायें हों, वहाँ-वहाँ शौचक्रियाके लिये आदर्श स्थान बनवा दे। ऐसा करनेसे वह स्वयं तो स्वर्गको जायगा ही, पर साथ ही, अस देशके लाखों यात्रियोंको सबरेके नरकसे उबार लेगा। मुझे काशीके त्रैलिंग स्वामीका स्मरण हो आया।

जान पड़ता है कि हृषीकेशकी भूमिपर रामचन्द्रजीके भाअी भरतजीका स्वामित्व है। साधुओंको मटैया बनाना हो, तो भरत-मंदिरके व्यवस्थापकों की अिजात लेनी पड़ती है। भरतजीके दर्शन करके हम आगे बढ़े। जब हम किसी स्थानमें अनेक बार जाते हैं, तो उसके प्रथम दर्शनका कौमार्य नष्ट हो जाता है। परन्तु काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें उसके बाद कअी बार जानेपर भी पहले दिनका स्मरण मेरे मनमें आज भी अतना ही ताजा और नया है।

अेक ओर पर्वतकी वृक्ष-राजी और दूसरी ओर गंगाजीके पुलिनकी शोभा देखते हुअे हम आगे चले। बायीं तरफ धनराजगिरीकी कोठी आयी। वैसे उसका रखा हुआ नाम तो ‘कैलाश-कीर्त्ति-आश्रम’ है, लेकिन वह ‘धनराजगिरीकी कोठी’ के नामसे ही पहचानी जाती है। यदि उसे विद्वान् संन्यासियोंका कॉलेज कहा जाय, तो उसके स्वरूपकी पूरी कल्पना आ सकती है। अत्यन्त प्राचीन कालसे संन्यासियोंने अस गंगातटको ध्यान, अध्ययनके लिये चुना है। यहाँ अन्नसत्रकी (सदावर्त) स्थापनासे पहले यहाँके साधु अपनी प्रातःकालकी साधना समाप्त करनेके पश्चात् ग्यारह मील चलकर भिक्षाके लिये हरद्वार जाया करते थे। और वहाँसे अतने ही मील लौटकर अपनी गुहामें प्रवेश करते थे। अुनकी यह मुसीबत देखकर हृषीकेशमें अन्नसत्र खोला गया। वहाँसे झाड़ीमें घूम-घूमकर साधुओंके पास साग-रोटी पहुँचायी जाती थी। बादमें यह व्यवस्थाकी गयी कि साधु लोग ही अन्नसत्रमें आकर भिक्षा ले जायँ। कुछ अन्नसत्रोंमें

एक निश्चित प्रमाणमें ही भोजन दिया जाता है, और कुछमें साधु जितना चाहें उतना। यदि कोअी साधु बीमार हो या बंगाली हो, तो उसे भात मिलता है। पेट्र अन दोमेंसे किसी एक वर्गमें घुसकर भात प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे अन्नसत्रमें जाकर दाल-रोटी लेते हैं, और गंगाजीके तटपर बैठकर उसे आरोगते हैं। रोटीको किनारोंपर तो गंगाजीकी मछलियोंका ही अधिकार होता है।

हृषीकेशकी झाड़ीमें साधु लोग सुन्दर कुटिया बनाते हैं। जंगलसे जो घास लाते हैं, उसीमेंसे थोड़ी घास लेकर रस्सियाँ बना लेते हैं। लकड़ीके लिये दूर जाना ही नहीं पड़ता। गंगाजीमें कितने ही शहतीर चिकने हो-होकर बहते आते हैं। अुन्हींको बेगारमें पकड़ लेनेसे मुफ्तमें मतलब निकल आता है। एक दिनमें एक मढ़ैया तैयार ! दस-बीस मढ़ैयाँके बीचमें एकाध व्याख्यान-मण्डप भी बना होता है। वहाँ बैठकर कोअी विद्वान् आचार्य रोज़ संध्या-समय प्रस्थानत्रयीका विवरण करता है, और साधुओंके छोटे-बड़े दल 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त अनेक प्रकारसे समझ लेनेका प्रयत्न करते हैं। यहाँ निरा चर्वित-चर्वण ही होता हो, सो भी नहीं। नयी-नयी शंकायें अुठती हैं, और अुनके जवाबमें नयी-नयी दलीलें दी जाती हैं। कुछ अर्द्धदग्धोंका पाश्चात्य विचारोंसे समन्वय करनेका बेहंगा प्रयत्न भी यहाँ चला करता है। कुम्भमेलेके अवसरपर ऐसे नये-नये विषयोंका विनिमय होता है, और शास्त्रार्थमें रुचि बढ़ती है। अस प्रकार हमारे साधुओंने हमारे अध्यात्मशास्त्रको जीता-जागता और गूँजता रखा है।

कहते हैं एक बार औरंगज़ेब अध्यात्मके अस विद्यापीठपर अपनी फ़ौज लेकर आया। साधुओंने अपनी झोपड़ियाँ जला डाली और खुद जंगली गाँवोंमें लापता हो गये। सैनिक अुनके पीछे कहांतक दौड़ते ? औरंगज़ेब हारकर लौट गया, और तीन ही दिनोंमें वह विद्यापीठ फिर ज्यों का त्यों तैयार हो गया। जो लोग अपरिग्रह-व्रतका पालन करते हैं, वे परतन्त्र या परास्त कैसे हो सकते हैं ?

यहाँसे आगे जानेपर मार्गमें रामाश्रम मिला। यह छोटी-सी संस्था स्वामी रामतीर्थकी स्मृतिमें आगरेके लाला बैजनाथने स्थापित की है, और इसमें अुन्होंने अपनी एक छोटी-सी लायब्रेरी भी रखी है। लाला बैजनाथने

हिन्दू धर्मका गहरा अध्ययन किया था। उनकी 'प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दू धर्म' नामक अंग्रेज़ी पुस्तक मैंने पढ़ी थी। जब यह सुना कि लालाजी आश्रममें ही हैं, तो उनसे मिलनेकी अिच्छा हुई। उनके साथके वार्तालापसे मेरे मनपर यह छाप पड़ी कि रामतीर्थके इस शिष्यके मनमें कुछ ऐसा खयाल है कि रामतीर्थके निर्माणमें उसका भी कुछ हाथ या हिस्सा था। और, यह सच भी हो सकता है। उन्होंने हमें भोजनके लिये निमंत्रित किया। हमने उनके यहाँ भोजन किया। फिर उनकी रुचि-अरुचिका विचार किये बिना ही उनके दीवानखानेमें थोड़ा सो भी लिया। फिर कुछ बातें कीं, और उसके बाद रवाना हुए।

आजकलके साधु शास्त्राध्ययन नहीं करते। जीवनमें उन्हें जो अवकाश मिलता है उसे वे यों ही नष्ट कर देते हैं। यदि उन्हें उचित शिक्षा दी जाय, तो देशका सर्वांगीण अुद्धार हो। बस, कुछ ऐसी ही धुन लालाजीपर सवार थी। इसलिये शिक्षित विरक्त युवकोंका संग्रह कर इस प्रकारके आश्रमों. द्वारा नये-नये स्वामी रामतीर्थोंका निर्माण करनेके लिये वे उत्कण्ठित थे। मुझसे यह छिपा न रहा कि हमारी तरफ़ वे कुछ लोभकी दृष्टिसे देख रहे थे। लेकिन हम किसी जगह ठहरनेके लिये आये ही न थे। हम तो चलनेकी धुनमें थे। इसके कअी साल बाद अिन्होंने लाला बैजनाथसे मैं आगरेमें मिला। अक्तबरकी मशहूर क़ब्रके रास्तेपर, यमुनाजीके किनारे, उन्होंने जो अेक निवृत्तिस्थान बनवाया था, वह मुझे दिखाया, और उस वक़्त भी मुझे वहाँ रहनेका प्रलोभन दिया। इस निवासस्थानकी रचना बड़े मज़ेकी थी। अेक पहाड़ीपर अेक कमरा बना था। यह कमरा पुस्तकालयके लिये बनाया गया था। इस कमरेके नीचे पहाड़ीके गर्भमें अेक दूसरा कमरा था। उस कमरेमें जमनाजीकी तरफ़से आनेवाली शीतल वायु सदा मिलती थी। प्रकाश भी उसी रास्ते आता था। पास ही अेक कोठरी रसोअियेके लिये बनेवाली थी। उनकी सूचना थी कि इस स्थानमें रहकर संस्कृत तथा अंग्रेज़ी धर्मग्रंथोंका गहरा अध्ययन किया जाय, और देश-विदेशमें धर्मका प्रचार किया जाय।

रामाश्रमसे बाहर निकलते ही दाहिनी ओर चटानकी बग़लमें बहनेवाली गंगाजीके किनारे हमने बड़अियोंको बाँसोंका बेड़ा बनाते देखा। मुझे

तुरन्त रातकी मुसीबत याद आयी। मैं अेक बड़कीके पास गया, और उससे कहा — “भैया, अिन बाँसोंमेंसे हमें अेक बित्ता लम्बी फूँकनी बना दोगे ?” उसने दो फूँकनी बना दीं। अससे बाबाजीको चूल्हा सुलगानेमें बड़ी आसानी हुअी। अस ‘वेणु-धमनी’ ने सारी यात्रामें हमारे लिअे अधन प्रदीप्त करनेका काम किया। आखिर बाबाजीकी गफ़लतसे अेक फूँकनी आधी जल गयी, और बची हुअी किसीके पैरों तले कुचली गयी। दूसरीका क्या हुआ, याद नहीं। बाँसकी फूँकनी साथ रखनेकी यह कल्पना मुझे सूझी, अस कारण बाबाजी और स्वामीपर मेरी सूक्ष्म-शक्तिका खूब सिद्धा जम गया, और आजतक उसमें वृद्धि ही होती गयी है।

यहाँसे हम लक्ष्मणझला पहुँचे। हृषीकेशसे लक्ष्मणझलेतक क्रमशः राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके चार मन्दिर हैं। राम-मन्दिरके चारों तरफ़ बाज़ार है, और सामने छोटा-सा त्रिवेणी-संगम है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भरतजी यहाँकी सारी भूमिके मालिक हैं; शत्रुघ्नजीके सामने टेहरी दरबारकी ओरसे यात्रियों और मज़दूरोंमें अिक्रारनामा लिखाया जाता है, और लक्ष्मणजी गंगापर करनेवाले यात्रियोंपर निगाह रखते हैं।

कुलीके साथका करार महत्वकी चीज़ है। टेहरी राज्यमें शिक्षाका ज़्यादा प्रचार नहीं है। ये ‘जंगली’ कुली यात्रियोंके जान-मालको अक्षरशः ‘शिरोधार्य’ करके भयावने अरण्य पार करते हैं। अनुपर राजका पूरा-पूरा नियंत्रण रहता है। असका कोअी भरोसा नहीं कि धूर्त दुनियासे दूर, पापके प्रायश्चित्तके लिअे तीर्थयात्रा करनेको आनेपर भी, अपनी आदतसे बाज़ न आनेवाले यात्री बेचारे मज़दूरोंको ठगेंगे ही नहीं। असलिअे करारके बिना मज़दूर अेक क़दम भी आगे चलनेसे अिन्कार करते हैं। गंगोत्री, जमनोत्री और केदार तथा बदरी, अिन चार स्थानोंकी यात्रा करके यात्री रामनगर, अलमोड़ा या काठगोदाम पहुँचते हैं। लेकिन मज़दूर वहाँतक नहीं जाते। बदरीनारायणसे लौटते समय मिलचौड़ी अथवा गणाअी नामका अेक गाँव आता है, वहींतक टेहरी राज्यकी सीमा है। असलिअे टेहरीके मज़दूर शायद परराज्यमें न्याय न मिल सकनेके डरसे आगे नहीं जाते। मिलचौड़ीमें नये मज़दूर लेनेके सिवा दूसरा चारा नहीं रहता।

लक्ष्मणझुलेका वर्तमान पुल लोहेकी रस्सी और सीखचोंका बना है, और झल्ला हुआ है। दानवीर सेठ सुरजमलजीने उसे बनवाया है, और यह नियम बना दिया कि उसपर यात्रियोंसे कर न लिया जाय। पहले गंगाजी पार करनेके लिये यहाँ छीकोंका पुल था। अक छीकेपरसे दूसरे पर जानेमें जानका खतरा तो रहता ही था। साथ ही, नीचे गहराईमें प्रचण्ड वेगसे बहती हुआ गंगाजीकी तरफ देखनेसे चक्कर आकर बिना खतरेके भी मनुष्य नीचे गिर सकता था। स्थिर दृष्टिसे प्रवाहकी तरफ देखनेसे ऐसा ही मालूम होता है मानो पुल महान् वेगसे प्रवाहकी विरुद्ध दिशामें दौड़ रहा हो। 'ट्रेनमें बैठे-बैठे जिस प्रकार हमें पेड़ दौड़ते हुअे दिखायी देते हैं, कुछ-कुछ उसी तरहका भास यहाँ होता है। कलकत्तेके दानशूर सेठने यह सुरक्षित पुल बंधवाकर बहुत बड़ा पुण्य कमाया है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु साथ ही हमें यह भी न भूलना चाहिये कि इस तरह यात्राका खतरा कम हो जानेसे यात्रियोंका पुण्य भी घट गया है। जबतक छीकोंके पुलसे गिरकर जल-समाधि मिलनेका पूरा-पूरा भय था, तबतक उस पारके प्रदेशका 'स्वर्गाश्रम' नाम 'अन्वर्थक' था। अब तो अकेले धर्मराजका ही नहीं, बल्कि कोअी भी देहाती कुत्ता इस पुलपरसे स्वर्गको जा सकता है।

लक्ष्मणझुलेके पास गंगाजीकी शोभा कुछ निराली है। आमने-सामने ऊँचे कगार हों, उनके बीचसे स्वच्छ हरा जल बन्धमुक्त होनेके आनन्दमें दौड़ रहा हो, और आस-पासके पहाड़ोंपर खड़े छोटे-बड़े वृक्ष यह दृश्य देख रहे हों, तो कौन किसकी शोभा बढ़ाता है, यह कहना मुश्किल हो जाता है।

कुछ स्थानोंका प्रभाव अद्भुत होता है। जितनी बार मैंने लक्ष्मणझुला पार किया उतनी ही बार यह विचार मनमें अचूक आया कि सृष्टि चैतन्यमय है, अन्तरात्माने ही ये भाँति-भाँतिके आकार धारण किये हैं, और जिस प्रकार लाखों बरसोंसे बहते रहनेपर भी गंगाजीके पानीका अन्त नहीं आता, उसी प्रकार अन्तरात्माकी विभूतियोंका भी कोअी अन्त नहीं। नदीका जल और उसमें खेलनेवाली मछलियाँ, वृक्षोंके पत्ते और उनपर गानेवाले पंखी, पठारकी घास और उसपर

चरनेवाले पशु, और अनि सबका द्रोह करते हुअे भी परमपिताकी विरासत प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवाला मनुष्य, सब अेक ही हैं, द्रोह और पाप केवल माया है, अभेद और प्रेम ही वास्तविक है, अिस प्रकारके विचार, जाने कहाँसे, जब-जब लक्ष्मणझूलेपर पैर रखा, मेरे मनमें आये हैं, और बाबाजीके साथ मैंने अनकी चर्चा की है ।

हिमालयकी सारी यात्रा पूरी करनेके पश्चात् बाबाजीके साथ मैं कुछ समयतक अिस झूलेके पड़ोसमें ही रहा था । अुस समय सुना था कि वहाँसे नीचेकी तरफ़ कोअी दो-अेक मीलपर, कअी साल पहले, अेक साधु रहते थे, जो 'सोऽहम्'का जप किया करते थे । अेक दिन अेक भूखा शेर अनपर झपटा । अुस समय भी 'सोऽहम्'का अनका घोष चलता ही रहा । 'सोऽहम्'का अर्थ ही अभेद है । अिस साधुको मृत्युके समय भी बाघके भय या क्रोधकी बाधा न हुअी । अुसी स्थानपर, अति प्राचीन कालमें, हमारे धार्मिक ग्रंथ लिखे गये थे; अिसकी दन्तकथा भी मैंने यहाँ सुनी थी । परन्तु वह कथा भगवान् व्यासके विषयमें थी या आद्य शंकराचार्यके विषयमें, सो आज याद नहीं ।

यहाँ वेरके पेड़ बहुतायतसे हैं, और नज़दीक ही धानके जो खेत हैं, वे आसपासके सारे प्रदेशमें प्रख्यात हैं । अिस तपोवनके 'बासमती चावल' का भात खानेके लिये, अमीरों और फ़क़ीरोंका तो कहना ही क्या, देवताओं और पितरोंका भी जी ललचायेगा ।

नये-नये अनुभव

मस्तिष्कमें यात्राके चित्र अतने भरे पड़े हैं कि जिनका कोअी पार नहीं । परन्तु अुनके नीचे या पीछे स्थल-काल लिखकर नहीं रखे, असलिअे अुनका क्रमबद्ध चित्र-संग्रह (अलबम) तैयार नहीं होता, और यह डर बना रहता है कि कहीं अेक स्थानका वर्णन किसी दूसरे स्थानपर न जड़ जाय । असलिअे जितना स्पष्ट रूपसे याद है, अुतनेकी ही मर्यादामें रहना अुपयुक्त है । कल्पनाके रंग तो चाहे जितने भरे जा सकते हैं, परन्तु कम-से-कम मूल रेखाचित्र यथादृष्ट होना चाहिअे, तभी वह यथार्थ यात्रावर्णन माना जायगा । स्वामीकी लेख-माला पढ़ता हूँ, तो धुँधली होनेवाली स्मृतियाँ ताज़ा होनेके बदले और अुलझ जाती हैं ।

अिस स्थितिका अनुभव करनेपर अेक नया ही विचार मनमें आया । जो यात्रा हमने साथ-साथ की, अुसके वर्णन पढ़नेपर भी यदि अुस समयके चित्र दृष्टिके आगे अुपस्थित नहीं होते, तो जिन्होंने यात्रा की ही नहीं है, अुन्हें कोरे शब्दात्मक वर्णनसे कितनी कल्पना करा सकूँगा ? यदि सारा वर्णन अेक शब्दजाल ही बन जाय, तो अुससे अुत्पन्न होनेवाला आनन्द सृष्टिका आनन्द नहीं, बल्कि शब्दोंका ही आनन्द होषा । अुसे कोअी शुद्ध या अुच्च आनन्द नहीं कहा जा सकता । किसीको गुदगुदाकर हँसानेके समान ही यह प्रवृत्ति होगी । अिसमेंसे तत्त्वकी बात कितनी मिलेगी ?

परन्तु अिस तरहके विचार बोलनेवालों और सुननेवालों को विषण्ण बना देते हैं । वे अुनका रस-भंग कर देते हैं । असलिअे सयानोंको अैसे विचार अपने पास ही रखने चाहिअें । व्यक्तिगत दुःखके लिअे जिस प्रकार प्रकट रूपसे रोना नहीं चाहिअे, अुसी प्रकार निर्मोह दशा भी प्रकट नहीं करनी चाहिअे । असलिअे, आअिये, यह सब यहीं छोड़कर हम अपनी यात्रापर आगे बढ़ें ।

लक्ष्मणझूलेतक हम सभ्य संसारमें थे । हमने लक्ष्मणझूला पार किया, दाहिनी तरफ़का स्वर्गाश्रमवाला रास्ता छोड़ दिया, और बनमें

प्रवेश किया। यहाँसे रास्ता बहुत ऊँचा-नीचा होने लगा। भयसे अपरिचित होनेके कारण जंगलके कुछ जानवर जिस तरह कभी-कभी मनुष्यके बिलकुल पास आ जाते हैं, उसी तरह पेड़ और लतायें बहुत नज़दीक आने लगीं। और हमें भी अंसा मालूम होने लगा कि अब हम अरण्यक हैं। झम्पानमें बैठनेवाले लोग आस पासके दृश्यसे विसदृश (वे-मेल) और विश्री (वे-ठव) दिखायी देने लगे। 'झम्पान' एक तरहकी पालकी होती है। असे उठानेवाले कहार चौकोन बनाकर नहीं चलते, किन्तु चारों आदमी अकेके पीछे एक, यों, एक क्रतारमें चलते हैं। क्योंकि सँकड़े रास्तेकी विकट पगडण्डी पर उन्हें चलना होता है, जहाँ दो आदमी बराबरीसे खड़े भी नहीं रह सकते। कहीं एक तरफ़के ऊँचे पहाड़से टकरा जायँ, तो चारों कहार, उनकी झम्पान, और झम्पानमें रखा हुआ जीवित बोझ, सभी दूसरी तरफ़की गहरी खातीमें गिरकर स्वर्गको पहुँच जायँ!

कण्डीमें बैठनेवाले लोग अतने बेडौल नहीं लगते। जंगली बेंतके बने हुअे, पानी पीनेके लम्बे गिलासके-से आकारवाले, एक बड़े टोकनेमें आधे तक सामान भरकर यात्री उसपर बैठ जाते हैं। पाँव बाहर निकालनेके लिये टोकनेके ऊपरके हिस्सेमें दरारें बनी रहती हैं। और पाँव लटके-लटके थक न जायँ, अस्के लिये एक काम चलाऊ रक्काब लगी होती है। एक मज़दूर अिस तरहका टोकना (कण्डी) अपनी पीठपर कन्धोंसे बाँध लेता है, अिससे जाकट पहननेके बाद जिस तरह हाथ खाली रहते हैं, उसी तरह मज़दूरके हाथ खाली रहते हैं। कण्डीका सारा बोझ अकेले कन्धोंको ही उठाना न पड़ जाय, अस्के लिये एक पट्टा मज़दूरोंके सिरपर लगा रहता है। जब मज़दूर चलता नहीं होता, उस वक़्त अपने कन्धों ओर माथेको आराम पहुँचानेके लिये वह T के आकारकी कुबड़ी-नुमा एक लकड़ी अपने साथ रखता है। कण्डीके नीचे अिस कुबड़ीको रख देनेपर मज़दूर अुसके बोझसे मुक्त हो जाता है। अिस प्रकार एक मज़दूरके सिरपर एक आदमी जान-मालके साथ चलता है। लेकिन अुसका मुँह पीछेकी तरफ़ होता है। शुरू-शुरूमें यह सारा दृश्य हास्यास्पद मालूम होता है, परन्तु अिसे देखते रहनेका अभ्यास हो जानेपर यह जँचने लगता है कि अिस प्रदेशमें यही ठीक है। जब पड़ावपर पहुँचकर मज़दूर आपसमें

बातें करते हैं, तो कौन कितने मनकी 'लाश' उठा रहा है, अिसका अुल्लेख किये बिना नहीं रहते । यहाँकी यह रीति है कि यदि आपका मज़दूर आपके लिअे, आपके सामने, 'लाश' शब्दका प्रयोग न करे, तो समझिये कि उसने मर्यादा निबाह ली ।

जिन दिनों यात्राका मौसिम पूरे जोर पर था, अुन्हीं दिनों हमने अपनी यात्रा शुरू की थी, अिसलिअे हमें रास्तेमें कहीं कोअी स्थान निर्जन नहीं मिला । चींटियोंकी क़तारकी तरह हम लोग चलते थे । हमारे साथ अहमदनगर या बरारकी तरफ़के अेक सज्जन 'झम्पान' में बैठकर यात्रा कर रहे थे । अुनके साथ आश्रितोंका परिवार भी कम न था । बादमें मालूम हुआ कि दो पत्नियोंके स्वामी होनेपर भी अुनके कोअी सन्तान न थी । अिसलिअे वे बदरीनारायणके दर्शनको जा रहे थे ।

झम्पानमें बैठनेवालोंकी मुद्रापर दो तरहके भाव देखनेमें आते हैं । कुछ लोगोंके चेहरोंपर शर्मका भाव होता है । मानों वे यह कहते-से मालूम होते हैं — “हम स्वयं चल नहीं सकते, अिसलिअे हमें जीते जी मनुष्यके कन्धेपर बैठना पड़ता है ।” दूसरी कोटिके लोग अिस शानमें रहते हैं कि “क्या हम कँगले हैं, जो पैदल चलेंगे ?” अपने चेहरोंपर अिस शानका भाव दिखाकर वे अपना कल्पना-दारिद्र्य ही प्रकट करते हैं ।

हमारा प्रवासी साथी अिस दूसरी श्रेणीका था । वह झम्पानमें मुगेंकी तरह अकड़कर बैठा था, और अँटकी तरह अधर-अुधर देखता था । अुसकी स्त्री पैर बढ़ाये अुसके पीछे-पीछे चलती थी ! अुस भले आदमीसे यह सहा न गया । बादशाह-जैसी आवाज़से अुसने हुक्म दिया — “ज़रा आगे चली जायगी, तो तेरा क्या बिगड़ जायगा ? जा, चट्टीपर कुछ पहले पहुँचकर रसोअी बनाना शुरू कर दे; तबतक हम भी आते ही हैं ।” अुस बेचारीका अुस समयका सम्भ्रम आज भी मेरी आँखोंके सामने आता है । क़द कुछ छोटा, दोहरी हड्डी, फ़ीकी हरी साड़ी, माथेपर पुराने ढबकी बड़ी बिन्दी, नाकमें बड़ी-सी नथ, घुँघराले बाल, जिनमेंसे कुछ अुड़ रहे हैं, और कुछ पसीनेके कारण माथेपर चिपक गये हैं, अैसी अवस्थामें वह सती हिमालयके रास्तेपर, चाहे चढ़ाव हो या अुतार, हाँफती हुआ चल रही है । घड़ीमें पीछे देखती है, घड़ीमें कहीं हमारी नज़रमें अुसकी

फज़ीहत तो नहीं हो रही है, इसकी जाँच करती है, और फिर सिर झुकाकर आगे चलने लगती है, मानो हिन्दू-समाजकी विडम्बना प्रायश्चित्त करने जा रही हो। अरबस्तान अथवा मध्य अशियाके जंगली पुरुष नारी-प्रतिष्ठा जानते ही नहीं। जब ज़ोरोंका तूफ़ान चलता होता है, तो पुरुष खीमोंमें बैठ जाते हैं, और खीमोंको अड़नेसे बचानेके लिये अपनी स्त्रियोंसे कहते हैं कि वे उनकी रस्सियाँ पकड़कर बाहर बैठें। उनके ऐसे वर्णन पढ़कर हम उन लोगोंपर तरस खाते हैं। परन्तु जब हमारे ही यहाँ नौजवान मर्द खुद आराम करते हैं, और स्त्रियोंसे मनमानी मेहनत-मशक्कतके काम लेते हैं, तो हम यह सब चुपचाप सह लेते हैं।

यह बहन उस यात्रीकी पहली स्त्री थी। उसे सन्तान न होनेपर उसके मर्दने दूसरी शादी की थी। अतः यह स्त्री तो उसके प्रेमकी अपात्र मज्जदूग्न ही हुअी न? उसे जल्दी पड़ावपर पहुँचना ही चाहिये, उस अपरिचित प्रदेशमें रसोआके लिये जगह प्राप्त करनी ही चाहिये, और चट्टीवालेसे बरतन-भाँडे माँगकर रसोआकी तैयारी भी कर लेनी चाहिये। एक दिन न जाने क्या हुआ, चट्टीमें हम लोग भोजन कर रहे थे, अतनेमें वह नरपशु आपेसे बाहर हो गया—वह अपनी स्त्रीपर दिगड़ पड़ा। स्त्री बेचारी हाथ जोड़ने लगी। किन्तु उसने उसके माथेपर प्रहार कर ही दिया। वह ज़मीनपर गिर पड़ी। फिर क्या पृथना था? उसने उस बेचारीकी पीठपर अपने पैरोंकी खुजली मिटायी। साथवाले आश्रित पत्तलपर बैठे-बैठे यह सारा दृश्य दुकुर-मुकुर देख रहे थे। आखिर वह नर-नैल मारते-मारते थका या भूखसे व्याकुल हो गया, कहना मुश्किल है। परन्तु उस दिन उसने खूब डटकर भोजन किया, और बादमें उस स्त्रीकी तरफ़ देखकर बोला—“अब आरामसे बैठकर भोजन कर ले!” बेचारीने कहाँके साथ भोजन किया, और सबके जूठे बरतन उठाकर माँजने ले गयी।

आर्य परिवारके झगड़ेमें बाहरी आदमीका बीच-बचाव करना ठीक नहीं, इस विचारसे हमने यह सब सह लिया। आज मुझे अपनी उस कायरता पर घृणा आती है। उस समय भी मनमें विचार अठा था कि क्या यही हमारा आर्यधर्म है? जब मनुने ‘यत्रनार्यस्तु पूष्यन्ते’ लिखा था, क्या

अस समय असने अिसी तरहकी 'पूजा' की कल्पना की होगी ? माना कि पति पत्नीका देवता है, लेकिन क्या स्त्री पतिकी गुलाम है ? या मवेशी है ? किसी सनातनी शास्त्रीसे पूछा जाय तो वह अिसके लिअे भी शास्त्रसे कोअी-न-कोअी प्रमाण अवश्य निकाल देगा । अपनिषद्में लिखा है कि मनुष्य देवोंका पशु है । पति देव है । अतः पत्नी असका पशु ही हुअी न ? यदि अपनिषद्-कालीन ऋषि यह तर्कशास्त्र सुनें, तों बेचारे अपनी निर्दोष काव्य-रचनापर असंख्य बार पछतायें । पतिकी सेवा करना पत्नीका धर्म है । अैसा अेकांगी धर्म चाहे मान भी लिया जाय, परन्तु सेवा, और सो भी अस तरहकी सेवा, लेनेका पतिको अधिकार है, अैसा तो कहीं भी लिखा नहीं है ।

बात यह है कि हमारा धर्म आर्य आदर्शों और अनार्य वृत्तियोंका विचित्र मिश्रण बन गया है । और हीन वृत्तिके संस्कृतज्ञ तार्किकोंने धर्मको शुद्ध रखनेके बदले हर अेक रिवाजका बचाव करनेका बीड़ा उठाया है । व्याकरणकार जिस प्रकार 'छन्दसि बहुलम्' कह कर काम चला लेते हैं, अुसी प्रकार हमारे ज्ञातिभिन्न समाजने यह तय किया है कि कोअी किसीके काममें दखल न दे । असका परिणाम यह हुआ है कि आखिर नामर्द ज़बरदस्त शहज़ोर बन गये हैं । शास्त्रियोंके मनमें यह विचार नहीं आता कि अगर धर्मके शुद्ध स्वरूपकी रक्षा न की गयी तो सारे धर्मकी दुर्दशा हो जाती है, जीवन विकृत बन जाता है, और परधर्मियोंकी जीत हो जाती है । जब-जब हिन्दू धर्मपर परधर्मियोंने विजय प्राप्त की है, तब-तब अुस विजयकी जड़में हमारे लोगोंका रूढ़ि-दास्य और असावधानी ही रही है । सामना करनेमें हम हमेशा कायर साबित हुअे हैं । अन्याय सहनेमें हम जिस धीरज और बहादुरीसे काम लेते हैं, अुसका अुपयोग अन्यायका मुकाबला करनेमें करें, तो हमारे सभी दुःख दूर हो जायँ ।

मन-ही-मन अस तरहकी बातें सोचते हुअे हमने भोजन समाप्त किया, और बिना आराम किये ही आगे बढ़े । अेक-दो दिनके ही अनुभवसे हमें पता चल गया था कि चट्टीपर देरसे पहुँचनेमें लाभ नहीं । जिस प्रकार स्टीमरपर पहले पहुँचनेवाला मीर होता है, वह जितनी जगह रोक ले, सब अुसीकी हो जाती है, अुसी तरह चट्टीपर भी होता था । यह चट्टी

है क्या चीज़ ? यात्रियोंके लिये जंगलमें दुकानदारोंकी बनायी हुयी कामचलाऊ दुकानें । यहाँ ऐसा कोयी कानून नहीं कि घरकी फ़र्श गीली न रहे या दीवालें अँची हों । छप्परपर घास-फूस या पत्ते छाये होते हैं । और यह सारी कारीगरी 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट' (बारीक मास्टरी) की न होनेसे पहाड़में जैसा रास्ता, वैसा दुकानका आकार होता है । इस प्रकारका स्थापत्य शहरी आँखोंको शुरू-शुरूमें भले ही अच्छा न लगे, परन्तु जंगलकी सम्पूर्ण शोभासे मेल खानेकी दृष्टिसे वहाँ इसकी अपेक्षा दूसरी कोयी पद्धति उपयुक्त न होगी ।

अस चट्टीके अेक कोनेमें दुकानदार अपना माल जमाकर रखता है । मालमें क्या-क्या होता है ? गेहूँका आटा, नमक, मिर्च, घी, आलू, और अगर दुकान बड़ी हो, तो दाल और चावल भी । दुकान बड़ी हो या छोटी, उसमें तमाकू तो होती ही है । परन्तु वह उस किस्मकी नहीं होती, जो हमारे यहाँ मिलती है । हिमालयमें तमाकूका पौधा नहीं होता, इसलिये वहाँ गुड़में बनाया हुआ गुड़ाकू अधिकतासे विकता है । फिर, अेक बोरेमें रसोआँके बरतन भरे होते हैं, जिनसे यात्रियोंको बहुत बड़ा सुभीता होता है । यदि यात्री अपने-अपने बरतन साथ लेकर यात्रा करने लगें, तो मनुष्योंकी अपेक्षा बरतनोंका ही पुण्य बढ़ जाय, और उनके बोझसे दबकर यात्री असमय ही स्वर्ग पहुँच जायँ !

हिमालयके ग्रामीणोंकी रसोआँमें विलक्षण स्वावलम्बन होता है । उनके पास बोहरोंकी टोपी-सी अेक मोटे लोहेकी पतीली या तसली होती है । पहले वे उसमें आटा गूँध लेते हैं, फिर गूँधे आटेको पत्थरपर रख देते हैं, बादमें तीन पत्थरोंका अेक चूल्हा बनाकर उसकी आँचपर उसी तसलेमें रोटियाँ सेंक लेते हैं । फिर उन सारी रोटियोंको गमछेपर रखकर उसी तसलेमें शाक बना लेते हैं । चूँकि तसला लोहेका होता है, इसलिये उसमें हर तरहके शाकका अेक ही रंग आता है । इससे अधिक उन्हें और क्या चाहिये ? वे डटकर साग-रोटी खाते हैं, और तसला माँज लेते हैं । फिर वही तसला पानी पीनेके काम आता है । भोजनके बाद वे दोपहरमें ज़रा देर वामकुक्षी (आराम) कर लेते हैं, और फिर उसी तसलेको सिरपर रखकर उसके ऊपर साफ़की तरह पिछोरा बाँध लेते हैं ।

अब यदि आकाशसे आम की गुठलीके बराबर ओले गिरें, तो भी अुनका सिर सलामत समझिये । अनमें अितनी सूझ और हिकमतके रहते भी शहरी यही कहते हैं कि पहाड़ी लोग जंगली होते हैं । जंगली नहीं तो और क्या ? जो जंगलमें रहते हैं वे अपंग नहीं होते । और अपंगता तो सभ्यताकी नींव और शिखर भी है । असंख्य साधनोंके बिना जिनका निर्वाह नहीं हो सकता वे तो सभ्य, और जो थोड़े-से साधनोंसे गुजर करनेकी सिफत रखते हैं वे जंगली — क्या यह व्याख्या ठीक नहीं है ?

हम ज़रा कदम बढ़ाकर सबसे पहले मुक्कामपर पहुँच जाते, अच्छी-से-अच्छी चट्टी खोज लेते, और साफ़ चूल्हा बनाकर रसोअी शुरू कर दिया करते । यहाँ ' हम ' से मतलब स्वामीसे है । क्योंकि अुनकी चाल घोंड़ेकी चाल थी । दूसरे नभ्वरपर बाबाजी पहुँचते । मैं हमेशा आखिरमें पहुँचता । क्योंकि मेरे सिरपर सबसे ज़्यादा भार था — रास्तेमें जितने भी पेड़-पौधे मिलते अुन सबकी कुशल पूछना मेरा काम था । जितने फल, फूल, पक्षी नज़र आते वे सब मुझे बुलाते । जहाँ ये सब न हाँते वहाँ आकाशके बादल तो होते ही थे । फिर अुन दिनों मुझे हाथमें छोटी-सी माला लेकर जप करनेकी भी आदत पड़ गयी थी, अिसलिये जगत् और जगदम्बाके बीच मेरा ध्यान अितना बँट जाता था कि मैं बिना चूके तीसरे नभ्वरसे ही पहुँचता था । पहुँचनेपर मैं अुठता न था, बैठे-बैठे सारा काम करता था । सामान बाँधना, खोलना, जमाना यह सब मेरा काम था । जब लकड़ियाँ कम द्रोतीं, तो बाबाजीका चूल्हा भी सुलगा देता था । भोजनके बाद बरतन भी मैं ही माँजता था । मेरे माँजे हुअे बरतन देखकर पहाड़ी दुकानदार .खुश-खुश हो जाते थे । स्वामीके पैरोंमें और बाणीमें असाधारण बल था । अिसलिये वे सर्वत्र पहुँच जाते थे । अिस प्रकार हमारा संघ चलता था । जल्दी-जल्दी चलनेका निश्चय करनेके कारण हमने अुस दो गायोंवाले बलीवर्दकी संगतिसे भी छुटकारा पाया ।

ज्यों-ज्यों हमारी यात्रा बढ़ती गयी, त्यों-त्यों हमारी भूख भी बढ़ती गयी । अेक पतीली भरकर दाल बनाते थे, और अुसे तीनों अेक-दूसरेका मुँह देखते-देखते खा जाते थे । बादमें रातकी दो-चार रोटियाँ रख छोड़ते, और अुन्हें सबेरे गुड़के साथ खा लेते । देखते ही देखते हमारे

गाल गाजरकी तरह लाल दीखने लगे। वज्रन तो बेचारा बढ़ता ही कैसे ? रोज़ाना बीस-तीस मीलकी रपटके साथ वज्रनका मेल नहीं बैठता। वह बेचारा राह देखता बैठे होगा कि कब अवकाश मिले और कब बढ़ूँ। हमने जो कुछ आराम लिया, वह इस तरह हमारे लिये बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ।

२५

देवप्रयाग

रेलकी यात्रामें जब गाड़ी किसी सुरंगमें डुबकी लगाती है, तो पाँच-दस मिनटतक अँधेरेके सिवा और कुछ दिखायी ही नहीं देता। उसी प्रकार पुरानी स्मरण-यात्रामें विस्मरणकी सुरंगें आ जाती हैं। बम्बईसे घुना जाते समय खण्डाला घाटकी या बेलगाँवसे गोआ जाते समय तिनो घाटकी लम्बी-लम्बी सुरंगोंके बीच-बीचमें कुछ श्रोत्रे आते हैं, जिनमें प्रकाश ज़रा-सी झाँकी दिखाकर लुप्त हो जाता है। विस्मरणमें भी इसी तरह स्मृतिकी अक किरण — केवल अक ही किरण — चमककर विस्मृतिको और भी घनी बना देनेका काम करती है।

जिस दिनका वर्णन आज लिख रहा हूँ, वह दिन इसी प्रकार विस्मृतिमें डूब गया है। महादेव चट्टीका रूप ज़रा भी याद नहीं आ रहा है। संसार नाम-रूपका बना है। उसमेंसे यदि रूप जाता रहे, तो नाम ही शेष रह जाता है। मेरे लिये महादेव चट्टी 'नामशेष' हो गयी है।

मुक्कामपर पहुँचते ही मैं आरामसे बैठ गया; नहीं, मैं थिलकुल पैर फेलाकर लेट गया। यह अक मेरी सुभीते की आदत थी। मौक़ा पाते ही मैं यथेष्ट आराम कर लिया करता था। इसलिये सारी शक्तिका उपयोग चलनेके काममें होता रहता था। स्वामीको आगे जाना था। मुझे लेटते देखकर पूछा — “क्या थक गये हो ? मैं आगे जाना चाहता था।” मैंने कहा — “अंठकर फ़ज़ूल अधर-अधर टहलना ही हो, तो यह मुझसे न होगा; लेकिन अगर पाँच-दस मील चलकर नयी चट्टीपर पहुँचना हो,

तो मैं ज़रा भी थका नहीं हूँ। यह देखो, मैं चला।” कहकर मैं अठ खड़ा हुआ और चल पड़ा।

हम नयी चट्टीपर पहुँचे। पर वह बहुत ही छोटी निकली। रेलवे टाउमिन्टेबलमें गोरे लोगोंके लिअे भोजनका स्टेशन, चायका स्टेशन, वगैरा स्टेशन मुक़रर ही होते हैं। यात्रामें भी सोनेकी चट्टियाँ हमेशा बड़ी होती हैं। हर रोज़ अमुक मील चलनेका यात्रियोंका क्रम बँधा होता है। उसके अनुसार सुविधायें प्रस्तुत हो जाती हैं, और बादमें फिर सुविधाके कारणसे भी यात्राके पड़ाव तय हो जाते हैं। दिनवाली चट्टीमें हमने रात बितायी। दिनके दुकानदारको रातके यात्री बहुत कम मिलते हैं। असलिअे वे अैसे अवसरपर यात्रियोंका विशेष ध्यान रखते हैं।

यहाँसे हम आगे चले। चलते-चलते देवप्रयाग नज़दीक आया। मेरी अण्टीमें घड़ी थी। वह मुझसे अुम्रमें बड़ी और समय-पालनमें वफ़ादार थी। परन्तु मैंने ही अुसे कअी दिनोंका अपवास कराया था। असलिअे समयकी बात तो सूर्यनारायणसे ही दरियाफ़्त करनी पड़ती थी। रास्तेके किनारे अेक डाकघर मिला। अुसे देखते ही स्वामीको वहाँसे समय लाकर मेरी घड़ीमें भरनेकी सूझी। घड़ीको जीवित और चालू करके हमने देवप्रयागमें प्रवेश किया। अगर मेरी स्मृति ठीक है, तो यहाँ माधवानन्द नामके बंगाली साधु हमें पहले-पहल ही मिले। अिनके विषयमें बहुत-कुछ लिखने योग्य है। अुसमेंसे थोड़ा-बहुत यथास्थान लिखा जायगा।

देवप्रयाग पंच प्रयागोंमेंसे अेक है। वह अेक पहाड़ी चट्टानपर बना पक्षियोंका अेक घोंसला-सा लगता है। अुसके दो हिस्से पड़ते हैं। नदीके अस तरफ़ अंग्रेज़ी (खालसा) है, और अुस पार टेहरी राज है। बीचमें केदारनाथसे आनेवाली अलकनन्दा पीली मिट्टी लिये बहती है। और नीचे भोडलकी विलकुल महीन रेतसे चमकती हुआ भागीरथी, गंगोत्रीसे आकर, अलकनन्दासे मिलती है। बाबाजी कहने लगे — “यात्रामें अपने साथ अेक लोटा ज़रूर होना चाहिअे। चौड़े मुँहका हो, तो हाथ डालकर अन्दरसे साफ़ किया जा सके। किसी दिन दूध मिल जाय, तो वह भी गरम किया जा सके।” स्वामी बाज़ारमें गये और अेक लोटा लेकर मुक़ामपर लौटे। क्योंकि अब जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे हमें बाज़ार न

मिलेंगे, और मिले भी, तो वहाँ लोटे कहाँसे आयेंगे ? मैंने लोटेमें पानी भरकर देखा । लोटा फूटा निकला । बाबाजीने स्वामीसे कहा — “ असे तुरन्त वापस करो, और दूसरा लेते आओ । ” लोटेमें पानी भरकर स्वामी दूसरी बार बाज़ार गये । दुकानदार भला आदमी था । जिस प्रकार हमारे यहाँ दुकानदार भोले ग्राहकको धमकाते हैं, उस तरह धमकाना वह सीखा न था । उसने दूसरा लोटा निकालकर दे दिया । बग़ैर देखे-दाखे लोटा लानेके लिये हमने स्वामीको दोष दिया था, अिसलिये अिस बार स्वामी वही भूल फिर कैसे करते ? अुन्होंने नये लोटेमें पानी भरा । पानी चूने लगा । दुकानदारके तीसरा लोटा निकाला । उसमेंसे भी गंगा वह निकली । चौथा, पाँचवाँ, छठा, अिस प्रकार बेचारेने कितने ही लोटे निकाले । हरअेककी दशा पहले लोटे-जैसी ही थी । वामनावतारके दिनोमें बहनेवाली झारीको बन्द करनेका सामर्थ्य अेक ब्राह्मणने दिखाया था, परन्तु कलियुगमें सभी लोटोंको चूनेवाला बना देनेकी अद्भुत शक्ति तो देवप्रयागमें स्वामी आनन्दने ही दिखलायी । बेचारा दुकानदार हक्का-बक्का रह गया । उसने समझा, हो-न-हो, स्वामी कोअी जादूगर है ! वह गिड़गिड़ाकर स्वामीसे अपनी माया समेटनेके लिये अनुनय-विनय करने लगा । स्वामी बड़े परेशान हुअे । निदान लोटेके दाम वापस लेकर वे मुक्कामपर लौट आये । मध्यकालीन लोक-साहित्यमें अिन्द्रजालकी अनगिनत कहानियाँ प्रचलित हैं । उनमेंसे अधिकांशकी तहमें कुछ अिसी तरहके किस्से तो न होंगे ?

सबरे अुठकर मैं अकेला ही अलकनन्दाके तीरपर जा बैठा । बहुत नीचे अुतरना पड़ता था । अलकनन्दाकी वह शान्त शोभा देख मैं तो सुध-बुध भूल गया, और न जाने कितनी देरतक वहीं बैठा रहा । अाखिर जब बाबाजी या स्वामी बुलाने आये, तब सुध हुअी कि हम यहाँ यात्राके लिये आये हैं, और तीन जने अेक साथ हैं ।

शामको स्वामीने कहा — “ चलो, हम संगमपर चलें । ” पुल पार करके हम मन्दिरकी ओर गये । वहाँसे अुतरकर संगमतक पहुँचे । यहाँ चट्टानमें लोहेकी जंजीरें जड़ी गयी हैं; अुद्देश्य यह है कि यात्री गंगाजीमें नहाकर स्वर्गके अधिकारी तो बनें, पर तुरन्त स्वर्गको न जायँ; क्योंकि भागीरथीका प्रवाह यहाँ बहुत वेगवान है । यहाँ ‘ गंगातरंगकणशीकर-

शीतलानि' वाला श्लोक मैंने स्वामीको समझाया। शामका समय था। हम दोनों भागीरथीके किनारे बैठ गये। अक छोटा-सा पक्षी उस पारके किनारेपर बैठा था। बीचमें पानीकी धारा जोरसे बह रही थी। हम दोनों उस पक्षीकी तरफ देखने लगे। शुरूमें वह पक्षी अपनी गरदन घुमाता था, सिर हिलाता था, पर थोड़े ही समयमें प्रकृतिने उसपर अपनी मोहिनी डाली, और वह भी अक टक देखने लगा। वह हमारी भाषा नहीं जानता था। उसका हृदय हम नहीं जानते थे। फिर भी भागीरथने हम तीनोंका हृदय अक बना डाला था। अपूर मन्दिरकी घण्टा भक्तोंको दर्शनका निमंत्रण दे रही थी। हमें तो यही आत्मोपम्य द्वारा भगवान्‌के दर्शन हो रहे थे।

हम तो आदमी ठहरे; अंधेरेमें चिराग जलाकर भी चलेंगे, और रात घरके भीतर सोयेंगे। परन्तु उस पार बैठा हुआ हमारा वह भाभी अंधेरा होनेपर रात किस तरह बितायेगा? भारी पैरोंसे या भारी पंखोंसे वह उठा और अनन्त आकाशमें न जाने कहाँ चला गया। हम हर रोज़ हजारों पक्षी देखते हैं। उनकी दुनिया जुदी, हमारी जुदी। उनके और हमारे बीच खेतोंके अनाज और पेड़के फलोंके बँटवारेकी तकरार होती है। उनका हमारा अितना ही सम्बन्ध है। परन्तु देवप्रयागका वह द्विजराज आज भी मेरे हृदयमें अपना स्थान बनाकर बैठा है। विषादके समय मनमें विचार आता है कि यदि वह पक्षी लौट आये, तो हम तीनोंके हृदय अक हो जायँ।

मन्दिरका जीर्णोद्धार अमुक व्यक्तिने अमुक समय किया था, अिस आशयका कोअी लेख स्वामीने वहाँ खोज निकाला। हम दर्शन करके लौटे। रातमें उस पक्षीके ही सपने आये। वह पूर्वजन्मका कोअी साथी होगा, भाभी होगा, या प्रेमी होगा। वह फिर मिलनेवाला नहीं। किस कारण वह हमारी मानस-पूजाका अधिकारी बना, सो कौन बता सकता है? पर यदि मानस-पूजामें कोअी शक्ति है, तो वह अवश्य फिर आयेगा। यदि उसे मालूम हो जाय कि हम उसे कितना चाहते हैं, तो जहाँ कहीं वह होगा वहाँसे उड़कर आये बिना न रहेगा।

सबेरे अठकर हमने बदरीनारायणका रास्ता छोड़ दिया । और चूँकि हमें गंगोत्री जाना था, असलिअ हमने टेहरीका रास्ता लिया । जिधर पैर ले जायँ उसी तरफ जानेकी हमारी आदत थी । अलकनन्दाकी दोनों तरफसे दो रास्ते जाते थे । नदीकी बायीं तरफ, या अुद्गमकी ओर जानेवाले यात्रियोंकी दृष्टिसे देखा जाय, तो दाहिनी तरफ बदरीनारायणका रास्ता है । असलिअ बायीं तरफवाला रास्ता टेहरीका ही होना चाहिये, असा स्थिर करके हम आगे चले । हम काफ़ी दूर निकल चले थे । अतनेमें नदीके उस पारसे अेक दिनकी पहचानवाले कुछ मज़दूर ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाकर अिशारे करने लगे । पहले स्वामीने उनकी पुकार सुनी । उनके अिशारोंका अर्थ भी स्वामी ही समझ सके । हम रात रास्ते चल पड़े थे । भूल मालूम होनेपर असे सुधारनेमें देर ही कितनी लगती है ? हम जहाँ थे वहींसे, बगैर रास्तेके, सीधे अूपर ही अूपर चढ़ते चले गये, और आखिर टेहरीके रास्तेपर जा पहुँचे । रास्तेमें कुछ छुरमुटोंपर नारंगी रंगके राअी बराबर छोटे-छोटे फलोंके गुच्छे लगे थे । आठ-दस दानोंका अेक गुच्छा बड़े चनेके बराबर होता था । प्रत्येक दानेके बीचमें बाल-सा कुछ दिखाअी देता था । मैंने वे दाने तोड़कर चखे । ठीक नारंगीके रसका स्वाद था । फिर तो पृछना ही क्या था ? मैं दोनों हाथसे फल आरोगने लगा; फिर विचार आया कि मैं कोअी जंगली लुटेरा नहीं हूँ, जो अेक-अेक पेड़को विलकुल निष्फल बनाकर छोड़ जाऊँ । सच्चा राजा जो कारभार लेता है, असे प्रजा निःसत्व नहीं होती । मुझे भी अेक ही पेड़के पाख खड़े न रहकर चलते जाना चाहिये, और चलते-चलते सहजमें जितने फल हाथ आयें अतने अुदरस्थ करने चाहिये ।

कअी दिनोंतक वह स्वाद चखनेको मिलता रहा ।

श्रीनगर नहीं गया

देवप्रयागसे हम टेहरी जा रहे थे। स्वामी, बाबाजी और मैं। हम हिमालयकी प्राणदायिनी वायुका मज़ा लूटते, आनन्द मनाते, जा रहे थे। परन्तु मेरे मनमें एक गुप्त विषाद घर कर बैठा था। मैं घरसे जो चला था वह अिसलिअे नहीं कि हिमालयके सारे तीर्थोंकी यात्रा करता हुआ मारा-मारा फिर्लूँ। मेरा विचार था कि अिस प्रदेशमें बसे हुअे पुराण-प्रसिद्ध श्रीनगरमें साधनाके लिअे बैठूँ। काश्मीरका श्रीनगर अलग है, और केदारके रास्तेका यह श्रीनगर अलग है। यह श्रीनगर सिद्धपीठ कहलाता है। यहाँ की हुअी साधना व्यर्थ नहीं जाती, और शीघ्र फलदायी होती है। देवी भागवतमें अिस स्थानका माहात्म्य बहुत बतलाया है।

पहले यहाँ एक पत्थरपर श्रीचक्र खुदा हुआ था, जिसकी पूजा हुअा करती थी। कहते हैं, प्राचीन कालमें अिस जगह हर रोज़ अेक नरमेध होता था। आद्य शंकराचार्य जब श्रीनगर आये, तो मनुष्य-वधका यह अनाचार देखकर अुनकी धर्म-भावना अकुला अुठी। अुन्होंने अेक सन्बल लेकर श्रीचक्रवाले पत्थरको औंधा कर दिया और आज्ञा दी कि आजसे नरमेध बन्द !

प्रस्थानत्रयीपर भाष्य लिखकर और नितान्त रमणीय स्तोत्र बनाकर शंकराचार्यने हिन्दू-धर्मकी जो सेवा की है, अुसकी अपेक्षा नरमेध बन्द करनेकी यह सेवा कहीं अुत्कृष्ट है। क्या अिसके विषयमें कोअी शंका हो सकती है ? भाष्य लिखनेके लिअे बुद्धि-वैभव चाहिअे। स्तोत्रोंके लिअे भक्ति न हो, और केवल कल्पनाका अुल्लास ही हो, तो भी काम चल सकता है। परन्तु धर्मान्ध समाजका विरोध सहकर परम्परागत घातक रूढ़िको बन्द करनेके लिअे तपस्तेज, धर्म-निष्ठा और हृदय-सिद्धिकी ज़रूरत होती है।

जबसे नरमेध-प्रतिबन्धका यह क्रिस्ता सुना है तबसे शंकराचार्यकी वह टिंगनी और भरी हुअी मूर्ति — गेरुअे वस्त्र, रुद्राक्षकी माला और भस्मलेपसे मण्डित तथा 'आगलात् मुण्डित' — दृष्टि-पथसे हटती ही नहीं। कर्मकाण्डी, निर्दय शाक्त चारों तरफ़ हा-हा-कार कर रहे हैं, और सामने सन्बल

लिये उस संन्यासीकी तेजस्वी मूर्ति खड़ी है। एक भी कर्मवीरकी ताब नहीं कि नज़दीक आये। और वह तपस्वी, ज्ञानवीर फड़कते हुअे ओठोंसे अक-अकको अथवा अक साथ सबको शास्त्रार्थके लिअे ललकार रहा है। लेकिन किसीकी बुद्धिप्रभा उस धर्ममूर्ति, दिग्विजयी संन्यासीके आगे प्रकाश नहीं डाल सकती। उपनिषत्कालीन याज्ञवल्क्यकी तरह श्री शंकराचार्यने भी शास्त्रार्थके लिअे ललकारा होगा ! 'ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु, सर्वे वा मा पृच्छत, यो वः कामयते तं वः पृच्छामि, सर्वान् वा वः पृच्छामीति।' लेकिन 'ते ह ब्राह्मणा न दधुः।'।

श्रीनगर जानेसे पहले 'स्वामीसे मिल लेनेकी' एक फुनगी मूल संकल्पमें फूटी और मैं अलमोड़ा चला गया। वहाँसे लौटते समय हरद्वारमें गंगोत्री जानेका संकल्प पक्का हुआ। और देवप्रयागसे केवल अठारह मीलकी दूरीपर बसे हुअे श्रीनगरकी तरफ जाना छोड़कर मैं गंगोत्रीकी ओर चला। मनमें यह आनन्द तो था ही कि हिमालयके नये-नये पुण्यधाम देखनेको मिलेंगे। परन्तु मैं मूल संकल्पसे दूर जा रहा हूँ, इसका पछतावा कुछ भी किये दूर नहीं होता था।

टेहरीके रास्तेपर चीड़के वृक्षोंकी बहुतायत है। अिन वृक्षोंके लम्बी-लम्बी सलाभियों जैसे हरे-हरे पत्ते जब ज़मीनपर बिछ जाते हैं, तो उनपर चलनेमें पैर सहज ही फिसल जाता है। यहाँ मैंने अक सुन्दर आविष्कार किया। बहुत चलनेसे और ठण्डकी वजहसे मेरे पैर फट जाते, और उनमें नदीके पानीसे ज़मीनमें पड़नेवाली दरारों-जैसी दरारें पड़ जाती हैं। चिन्ता यह थी कि अगर अिनका कोअी अिलाज न मिला, तो यात्रा किस तरह पूरी होगी? कोकमका थोड़ा-सा मोम हमारे साथ था, परन्तु मैंने उससे कोअी फ़ायदा होते नहीं देखा। सड़कमें पड़नेपर मनुष्य आविष्कार करता है। चीड़के पेड़से निकलनेवाला ताज़ा गोंद पैरोंकी बिवाअीमें भर दिया, और दूसरे ही दिन उसका सुन्दर परिणाम अनुभव किया। चमड़ी अैसी भर गयी, मानो कभी फटी ही न हो। उस दिनसे मैं दीयासलाअीकी अक डब्बीभर चीड़का गोंद अपने साथ रखने लगा। अिसी गोंदसे राल बनती है, और टरपेण्डाअिन भी अिसी पेड़से निकलता है।

श्रद्धा-भक्तिका स्पर्श

देवप्रयागसे हम कोअी सात मील आये होंगे । दोपहरका वक्त था । भूखने हकदारकी तरह पेटमें डेरा जमा लिया था । बाबाजीने रसोअी बनाअी । पास ही खड़े अेक पीपलके पेड़के पत्ते बटोरकर स्वामीने या मैंने पत्तलें बनाअीं । बस, असपर हममें शास्त्रार्थ छिड़ गया । बाबाजी कहने लगे — “पीपलके पत्तोंकी पत्तल नहीं बनाअी जाती । असपर भोजन करना पाप है ।” मैं भी यह मर्यादा जानता था । पीपल प्रत्यक्ष परमात्माकी विभूति है — ‘अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्’ । बाबाजीने दलील दी कि पीपलके पत्तोंकी पत्तल बनाकर अुन्हें जूठा करना नास्तिकता है । मैंने कहा — “पीपलकी पत्तलपर गृहस्थाश्रमी भोजन न करें, अैसा प्राचीन दण्डक है । पर जिसने घर-बार छोड़ दिया, जो विरक्त हो गया, वह पीपलकी पत्तलका अधिकारी है । अुसके लेखे तो सर्वत्र परमात्मा ही भरा हुआ है । अन्न भी ब्रह्म है, पत्तल भी ब्रह्म है, और खानेवाला भी ब्रह्म है । ‘तत्र को मोहः कः शोक अेकत्वमनुपश्यतः ।’

‘मतलब-सिन्धु’की पद्धतिसं दी हुआ यह दलील भूखकी मददसे गले अुतरी, और मैंने तथा स्वामीने ‘ब्रह्मार्पणम् ब्रह्म हविर्व्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्’ श्लोक पढ़कर भोजन शुरू कर दिया । रसोअी बनानेका काम बाबाजीका था, असलिअे आर्य-परिपाटीके अनुसार वे हमें भोजन करानेके बाद आप खाने बैठे । बाबाजी कटर कर्मकाण्डी सनातनी थे । पवित्र और अपवित्रका विवेक बहुत किया करते थे । स्वामी अिसे समझ नहीं पाते थे । मैं यह सब समझता तो था, लेकिन असका पालन नहीं करता था । अतअेव बाबाजीके लिअे यही सुरक्षित मार्ग था कि वे पवित्र वस्त्र पहनकर अलग स्वतंत्र रूपसे भोजन करें । वे हमारे लिअे परोसकर रखते, और हमें खानेके लिअे बुलाते । हमारे खा चुकनेके बाद आप निश्चिन्त होकर भोजन करते । अस तरह बाबाजीका मातृ-हृदय भी सन्तुष्ट होता था । आज जब बाबाजी पीपलकी पत्तलपर भोजन कर रहे थे, तभी अगले दिन देवप्रयागमें जिस मारवाड़ी वणिक् यात्रीसे भेंट हुआ थी, वह वहाँ आया, जहाँ हम बैठे हुआे थे । प्रेम-भक्तिकी अुमंगमें अुसने हम

तीनोंका चरणस्पर्श किया। बाबाजी अकाअक चौंक अठे। अधर अउस मारवाड़ीकी आँखें भक्तिके आनन्दसे छलक रही थीं। बाबाजीकी वह लम्बी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी जटायें, नहानेसे शुचिर्भूत काया, पास ही पड़ा हुआ दासबोध ग्रन्थ और भजनकी माला, यह सब देखकर मारवाड़ीने सोचा — “मैं कितना बड़भागी हूँ, जो ऐसे पावन ब्राह्मणके फिर दर्शन पा रहा हूँ।” और बाबाजीके जीमें क्या चल रहा था ?

साधारणतः मैं बाबाजीकी रूढ़िनिष्ठ धार्मिकताका हमेशा आदर किया करता था। अुनके कारण मुझे कभी बार असुविधा सहनी पड़ती थी। लेकिन वह सब मैं सन्तोषपूर्वक सह लिया करता था। अेक बार जब हम गंगाजीमें नावसे यात्रा कर रहे थे, बाबाजीने मुझसे पूछा — “मेरे कारण तुम्हें कितनी असुविधा होती है ! मैं पवित्रता-अपवित्रताके ये नियम छोड़ दूँ ? यात्रामें चाहे जिस तरह निवाह लूँगा।” अिसपर मैंने अुनसे कहा था — “नहीं, यह बात नहीं बनेगी। जब मुझे विश्वास हो गया कि यह पावित्र्यवाद निरर्थक है तभी मैंने अिसका त्याग किया है। ‘मागें शूद्रवदाचरेत्’ अिस वचनके अनुसार आप भी पावित्र्यका विचार छोड़ सकते हैं, लेकिन मुझे यह अच्छा न लगेगा। जिस दिन आपकी अन्तरात्माको विश्वास हो जायगा अुसी दिन ये विधि-निषेध अपने-आप छूट जायँगे। तबतक अुन्हें निवाहते रहनेमें ही आपका श्रेय है।”

मारवाड़ी यात्रीका स्पर्श होते ही बाबाजी मेरी ओर देखने लगे। अेकाध दिन भूखों रह लेना बाबाजीके लिये कोअी आपत्ति न थी। अुन्हें वैसा अभ्यास भी था। बेचारा मारवाड़ी चौंका बनानेके लिये अधर-अुधर जगह तलाशने लगा। अितनेमें मैंने बाबाजीसे कहा — “आज आप पत्तलपरसे अुठ न सकेंगे। आप निश्चिन्त होकर खाअिये। आज आपको किसी मारवाड़ी वैश्यने नहीं, बल्कि सूर्तिमन्त श्रद्धा-भक्तिने स्पर्श किया है। भक्तिके आगे कर्मकाण्डकी क्या चलाअी ? अुन्हें अेक ओर रखना ही चाहिये। ज़रा सोचिये कि अगर आप खाना छोड़ देगे, तो अिस भक्त-हृदयको कितना आघात पहुँचेगा ? और हिचकिचाते हुअे नहीं, बल्कि प्रसन्न मनसे खाअिये।” बाबाजीकी आँखें डबडबा आयीं, संकोचसे

नहीं, किन्तु भावनाके अद्रेकसे । बाबाजीने भोजन ऐसे भक्तिभावसे पूरा किया मानो मन्दिरका प्रसाद पा रहे हों ।

यहाँ ज़्यादा आराम किये बिना ही हम आगे चले । आसपासकी वनशोभा तो 'प्रति पर्व रसावहम्' न्यायसे बढ़ती ही जाती थी । चीड़के पेड़ गये और बाँझके आये । बाँझ ओककी एक जाति है । इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है । शामको हम चट्टीपर आ पहुँचे । दुकानके पास एक सुन्दर छोटा-सा पेड़ था । मैं वहाँ जा बैठा । स्वामी जगहकी तलाशमें गये । दुकानदारने जगह नहीं दी । इसलिये पास ही झाड़ोंके एक मण्डपमें रात बितानेका निश्चय किया । इस मण्डपमें हम ज़रा बैठे ही थे कि अितनेमें हमारे दोनों कुली आ पहुँचे । दो कुलियों और उनके साथके सामान-असबाबके कारण दुकानदारकी दृष्टिमें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी, और उसने हमें रातमें सोनेके लिये ठण्डसे सुरक्षित एक जगह दे दी । स्वामीने स्टोव सुलगाया । इस अद्भुत यज्ञको देखनेके लिये आसपासके लोग अिकट्ठा हो गये ।

हम लोगोंके मण्डपमें घड़ीभर बैठनेका मेरे यात्रा-क्रमपर भारी असर हुआ । इस मण्डपमें एक दक्षिणी साधु बैठा था । उसने काश्मीरके अमरनाथका जिक्र किया । कहा — वहाँ निर्जन और निर्वन पर्वतमें एक गुफा है । उस गुफामें हर पूर्णिमाके दिन बर्फ़का एक शिवलिंग अपने आप बन जाता है, और अमावसतक पिघल जाता है । उस साधुसे सृष्टि-चमत्कारकी यह बात सुनकर मेरे मनमें यह दृढ़ संकल्प हुआ कि किसी-न-किसी दिन अमरनाथ जाना चाहिये । इस संकल्पके परिणाम स्वरूप मैं बाबाजीको साथ लेकर अमरनाथ कैसे गया इसका अपना एक स्वतंत्र अतिहास है ।

मनमें काश्मीर जानेके संकल्पका सेवन करते-करते मैंने भोजन किया, और थकी हुअी हड्डियोंको चटाअी-कम्बलकी गरमी दी । परन्तु उस रात हमारे दुकानदारके यहाँ कोअी जलसा था । शायद कोअी पहाड़ी चारण आया था । सारी रात पहाड़ी कानोंको आनन्द देनेवाला संगीत हमारी नींदमें खलल पहुँचाता रहा । इस संगीतकी गति अितनी विलक्षण थी कि वीच-वीचमें जो सपने आते उनमें भी वह प्रवेश कर जाता ।

टेहरी

जब-जब हिमालयके पहाड़ी लोगोंका संगीत सुननेकी बात याद करता हूँ तब-तब वर्डस्वर्थ की 'दी सॉलिटरी रीपर' कविता याद आती है। क्योंकि पहली बार मैंने पहाड़ी पोशाकवाली एक भरे बदनकी कन्यकाको हाथमें हँसिया लिये घास काटते और गाते हुअे देखा। हिमालयकी शुद्ध, तेजस्वी हवा, गेहूँकी खुराक और कड़ी मेहनत; फिर भला मुँहकी लालीका पृच्छना ही क्या था ? उसकी वह विचित्र पहाड़ी पोशाक देखकर मेरे मुँहसे कालिदासका वचन निकल पड़ा — 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।' मैं एक अर्धचन्द्राकार घाटी पार कर रहा था, और नीचेसे उसका गाना बराबर सुनायी दे रहा था। मेरे मनमें वर्डस्वर्थकी ये सतें आयीं —

"Will no one tell me what she sings ? —

Perhaps the plaintive numbers flow

For old, unhappy, far off things,

And battles long ago :

Or is it some more humble lay,

Familiar matters of to-day ?

Some natural sorrow, loss, or pain

That has been, and may be again ?

मुझे भी लगा कि इस कन्यकाके गीतका अन्त आयेगा ही नहीं। एकका एक सुर बराबर निकल रहा था; दूर-दूरके वृद्ध पर्वत उसे प्रतिध्वनित करके उसके साथ खेल रहे थे। वर्डस्वर्थकी तरह मैं निश्चेष्ट खड़ा तो न रहा, फिर भी आजतक उसकी वह शंकार हृदयमें सहेज रखी है।

पहाड़ी संगीतमें विशेष विविधता नहीं होती। उत्तराखण्डकी यात्रा समाप्त करके जब हम बदरीनारायणसे गणगी पहुँचे, तो वहाँ भी सारी रात गीत सुने थे। उनमें भी ऐसा ही लगा मानो रातभर एक ही पंक्ति

चलती रही हो । लगता है, सामवेदके समयसे अनि पहाड़ी लोगोंने बहुत थोड़ी प्रगति की है, नहीं तो अिस अेकश्रुति संगीतमें अुन्हें अितना मज्ञा न आता । दूसरे दिन सोलह मीलकी यात्रा करके हम टेहरी पहुँचे । रास्तेमें वनश्रीकी शोभा कुल अपूर्व थी । परन्तु अुसका वर्णन किस प्रकार किया जाय ? सुललित शब्दोंके लम्बे-लम्बे वाक्य लिखनेसे न तो लेखकको सन्तोष होगा, और न पाठकको कोअी बोध होगा । अिसलिये यह मिथ्या प्रयास छोड़ देनेमें ही औचित्य है । किसी अँचे पहाड़की पगडण्डीसे नीचे आनेवाले बन्दरोंकी तरह पहाड़ अुतरकर हम टेहरीमें दाखिल हुअे । पहाड़ी लोगोंकी दृष्टिमें टेहरी अेक बड़ी सौन्दर्यनगरी है, और क्लॉक-टॉवर (घटिगोपुर) अुसका सबसे बड़ा आभूषण है । परन्तु 'टेहरीके रास्तेपर गाड़ियाँ चलती हैं', यह कहनेमें अुसकी प्रशंसाकी परिसीमा है ।

हमने कड़ी भूख लेकर टेहरीमें प्रवेश किया । जाते ही अेक सिक्ख धर्मशाला पर नज़र पड़ी । धर्मशाला यानी मुसाफिरखाना नहीं, बल्कि धर्मग्रन्थ, — ग्रन्थसाहब — रखने, पढ़ने और श्रवण करनेका स्थान । अिसमें मन्दिर और मसजिद दोनोंके गुणोंका समावेश होता है । अिसका प्रबन्ध करनेवालेको ग्रन्थी कहते हैं । टेहरीकी धर्मशालाका ग्रन्थी भला आदमी था । अुसने हमें सब प्रकारकी सुविधायें कर दीं । सीधा-सामग्री जुटानेका काम स्वामीने किया था । बाबाजीने रमोअी बनाअी । श्रम-विभागमें मेरे हिस्से तो अँचा घाट अुतरकर भागीरथीमें नहाने और फिर भोजन कर लेनेका परिश्रम ही आया । अुस दिन मैं बहुत थक गया था । टेहरीमें डाकखाना था । अिसलिये स्वामीको बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखनी पड़ी थीं । मुझे विश्वास है कि डाकखानेके अस्तित्वको कृतार्थ करनेके लिये ही स्वामीने अुस दिन अनेक पत्र लिखे थे । मैं अुनके पत्र पढ़ता ही न था, अिसलिये मुझे अपने विश्वासपर सन्देह करनेका कभी मौक़ा ही न मिला । बाबाजीने धर्मशालाके ग्रन्थोंके साथ सिक्ख धर्मकी चर्चा छेड़ दी । दोनोंने माना कि वे हिन्दीमें बातचीत कर रहे हैं । ग्रन्थीकी भाषा हिन्दी चाहे न हो, पर शुद्ध पंजाबी थी । बाबाजीने कुछ मराठी और गुजराती शब्द बटोरकर अुनमें दस-पाँच हिन्दी प्रत्यय लगा दिये, और राष्ट्रीय अैक्य साध लिया । मेरे जैसा, चुस्त साधु अैसी प्रवृत्तिमें क्यों

पढ़ने लगा ? मैंने तो दोपहरकी धूपकी सहायतासे खासी अंक घण्टेकी 'समाधि' लगायी ।

हिमालय आनेसे पहले मैं भारत-धर्म-महामण्डलके स्वामी ज्ञानानन्दसे मिला था । उन्होंने टेहरीके अंक हाकिम पण्डितका नाम बतलाया था । हम लोग उनसे मिलने गये । हमें यात्रा-सम्बन्धी जानकारी हासिल करनेका शौक था, और उस पण्डितको अपना पाण्डित्य प्रकट करनेकी अभिलाषा थी । स्वामी जबरदस्त अश्विहारवाज ठहरे । जब उस पण्डितका मालूम हुआ कि मैं ग्रैज्युअट हूँ, तो उसने मुझे जमीनसे उठकर कुर्सी पर बैठनेको कहा । स्वामीने छूटते ही कहा कि हमारे कानके सारे धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया है । पण्डितने मुझसे सवाल किया कि समाधिमेंसे मनुष्यका व्युत्थान किस कारण होता है ? मैं अपनी दोपहरकी समाधिमेंसे व्युत्थान करके ही उनके यहाँ गया था । पर जानेका प्रयोजन तो गंगात्रीके रास्तेकी जानकारी प्राप्त करना था । शास्त्रार्थकी इस चुनौतीसे मैं काफ़ी असमंजसमें पड़ गया । यदि कहता हूँ कि मैंने कुछ पढ़ा-गुना नहीं है, तो स्वामी झूठे पड़ते हैं, और यदि जवाब देता हूँ तो शास्त्रार्थ छिड़ जाता है, इसलिये मैंने कलि-विडम्बना प्रकरणमें सूचित युक्तिका प्रयोग किया । मैंने कहा — “मैंने जो कुछ भी पढ़ा है, सो सब अंग्रेज़ीमें पढ़ा है । अगर आप अंग्रेज़ीमें प्रश्न करें, तो सारा विवरण भली-भाँति कर दूँगा ।” बेचारा पण्डित निराश हो गया, और मेरी जान बची; अन्यथा मेरा अदृष्ट मुझे इस शास्त्रार्थमेंसे व्युत्थान न करने देता ।

यहाँसे हम स्वामी प्रज्ञानन्द नामक अंक दक्षिणी साधुके दर्शन करने गये । कहते हैं, ये दक्षिणी पण्डित सन् सत्तावनके गढ़में ठीक-ठीक फँसे थे । वहाँसे साधुके भेसमें हिमालयमें भटकते-भटकते आखिर यहाँ आ पहुँचे थे । जिन दिनों यहाँ टेहरीमें हैजेका जबरदस्त प्रकोप हुआ था, उस वक़्त अिन साधुने कोअी साधना करके और पंचमुखी हनुमानकी स्थापना करके विलक्षण रीतिसे उसका निवारण किया था । फलस्वरूप राजाको उनपर बड़ी भक्ति हुई, और स्वामीजी राजगुरु बने । उनके प्रखर पाण्डित्यकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली थी, इसलिये दूर-दूरके

विद्यार्थी अंनके पास संशय-निवृत्तिके लिये आते थे । हमें कोअी शंका तो थी ही नहीं, कुतूहलभर था, अिसलिये हमने साँझका थोड़ा समय अंनके पास बिताया । अंनकी कोअी विधवा शिष्या ताँबेकी चद्दरपर खुदे हुअे श्रीचक्रकी पूजा करती थी । मेरा ध्यान अुस ओर गये बिना न रहा । अिस बहनने चिराग जलाकर हमें स्वामीजीके सामने बैठाया । हमने स्वामीजीसे खूब बातें कीं । बहुत-सी बातें जानीं और पंचमुखी हनुमानके व मुख्य मन्दिरके दर्शन करके लौट आये ।

टेहरीकी मुख्य शोभा तो भागीरथीपर बना तारका झलता पुल है । अिस पुलके अिस छोरपर बने बरगद और पीपलके चबूतरे विशेष रूपसे ध्यान आकर्षित करते हैं । यात्रियों और साधुओंके लिये छाँहकी यह जगह धर्मशालासे भी ज्यादा सुभीतेकी है । जहाँ बड़ और पीपलकी छाँह अेकत्र पड़ती है वह स्थान पवित्र समझा जाता है । वह जप वगैरा विशिष्ट साधनाके लिये अुपयुक्त होता है ।

वटवृक्ष हमारे गृहस्थाश्रमके आदर्शका सूचक है । अुसकी जटायें बार-बार ज़मीनमें प्रवेशकर अेक विशाल अविभक्त कुटुम्ब बनाती हैं, और पीपल हर साल अपने सब पत्ते झड़ा डालता है । वह अपनी छालपर पपड़ी भी नहीं जमने देता । यह संन्यास-धर्मका सूचक है । अुसके पत्तोंकी अखण्ड जाग्रति भी संन्यास धर्मकी ही द्योतक है । जहाँ अिन दो आश्रमोंका मिलाप होता हो, वहाँ हिन्दू-समाजको विशेष पावित्र्य दिखाअी दे, तो आश्चर्य क्या ?

टेहरी अेक प्रसिद्ध पहाड़ी रियासत है । किसी ज़मानेमें अिस राज्यका विस्तार और अिसकी प्रतिष्ठा अितिहास-प्रसिद्ध थी । हिमालयके अुस पार-तक यहाँके राजाओंकी हुक्मत चलती थी । आज तो यह सिर्फ जंगलोंकी अपनी आमदनीके लिये विख्यात है । अिसकी दूसरी ख्याति यहाँकी जनताका अज्ञान और भीरुता समझी जा सकती है । शिक्षाके लिये यहाँके राजाके मनमें तनिक भी अुत्साह नहीं । वह समझता है कि शिक्षासे प्रजामें असन्तोष जड़ पकड़ता है । अंग्रेज़ी पाठशालाके अेक शिक्षकसे हमें यह बात मालूम हुअी । मैंने सोचा तो फिर यह शिक्षक यहाँ क्यों बेगार होता है ?

हम राष्ट्रीय संस्थाओंके लिये साधन और सुविधायें खोजते फिरते हैं । हम सोचते हैं कि अगर पैसोंकी अफ़रात होती, तो यह करते और वह करते । पर तनिक पराक्रमी पूर्वजोंके अिन राजवंशीय अुत्तराधिकारियों को देखिये । अिनके पास सब प्रकारकी सुविधायें होते हुअे भी ये किसी बातका विचार ही नहीं करते, और करते भी हैं, तो आड़ा-टेढ़ा । चूँकि सन् सत्तावनका प्रयत्न व्यर्थ हो गया, अिसलिये अुपर्युक्त पण्डित गेरुआ वस्त्र धारणकर घटत्व और पटत्वके अवच्छेदकावच्छन्नत्वकी चर्चामें डूब गये । राजा लोग किन-किन बातोंमें मगन हो गये हैं, अिसकी तो गिनती करते भी जी अुकताने लगता है । अरे, अेक बार हार गये तो हुआ क्या ? हरअेक हारको नये प्रयत्नके लिये ज़रूरी खाद समझना चाहिये । हारसे मिलनेवाली शिक्षा कम महत्त्वकी नहीं होती । विज्ञान-शास्त्रियोंके सफल प्रयत्नोंके वर्णन हम पढ़ते हैं, परन्तु हम यह क्यों भूल जाते हैं कि अिन सफल प्रयत्नोंसे सौगुने निष्फल प्रयोग अुन्होंने धैर्यपूर्वक किये होंगे ? अेकके बाद अेक असंख्य पराजयोंको जो सह सकता है वही पुण्यवान है । सन् सत्तावनमें पराभूत होनेके बाद बुद्धिमान और पुरुषार्थी लोगोंको तुरन्त अेकत्र होकर सोचना चाहिये था कि हम क्यों हारे ? किन-किन राष्ट्रीय दुर्गुणोंकी बदौलत हमने अपनी जीतपर पानी फेर दिया ? हमारी पद्धतिमें कौनसी त्रुटि थी ? अब अपनी समाज-रचनामें क्या हेर-फेर करने चाहिये ? नये प्रयत्नमें सारी प्रजाको अेक दिलसे सम्मिलित करनेके लिये क्या करना चाहिये ? जिन लोगोंने हमें परास्त किया अुनका देश कैसा है ? वहाँकी प्रजाका स्वभाव कैसा है ? अुस स्वभावकी सिद्धिके लिये अुन लोगोंने क्या-क्या किया है ? हममें भी अैसे तत्त्व भिन्न रूपमें, सुप्त स्थितिमें हैं या नहीं ? अिन तत्त्वोंको हम कैसे पहचानें, कैसे विकसित करें ?

अिस प्रकारका सोच-विचार करनेके बदले राजाने संन्यासी पण्डितके लिये वृत्ति नियत कर दी । संन्यासी पण्डितने राजाको आशीर्वाद दिया, और दोनोंने मिलकर प्रजाको पंचमुखी हनुमान दिये ! और राष्ट्रीय जीवनके पचास बरस यों ही बीत जाने दिये ।

परन्तु जिस तरह पूर्वजोंकी कीर्तिपर ही निभनेवाला नामदर्द है, अुसी तरह जो मौक़े-बेमौक़े पूर्वजोंके दोषोंको ही गिनते बैठते हैं वे भी नामदर्द

हैं। मैं हिमालय आया हूँ। यहाँ आकर अन्तर्मुख बना हूँ। न कोअी बन्धन है, न जवाबदेही है। फिर मुझीको अिन सारी बातोंका विचार क्यों न करना चाहिये? मुझे अवश्य ही यह सब सोचना चाहिये। अैसे अनेक विचार मनमें चक्कर काट रहे थे और थके हुअे गात्रोंपर निद्रादेवीकी सत्ता स्थापित हां रही थी।

सबरे अुठकर हम धरासुकी ओर चल पड़े।

२९

बादरूका गाँव

हिमालयकी यात्रा खतम करनेके बाद फिर अेकवार मैं दूसरे रास्तेसे टेहरीकी तरफ़ आया था, और पासके मालदीवल नामक गाँवमें स्वामी रामतीर्थके मठमें अेक नियत समयतक साधनाके लिये रहा था। अुस समयका अनुभव केवल काव्यमय ही नहीं, अपितु दो-तीन बातोंमें मेरी मनोवृत्तिमें स्थायी परिवर्तन करनेवाला मिद्ध हुआ। जिस यात्राका वर्णन हां रहा है अुस मूल यात्राके समय अिस छंटे-से गाँवके विषयमें हमने कुछ भी नहीं सुना था, परन्तु स्मरण-यात्रामें टेहरीके बाद मालदीवल और वहाँका अत्यन्त भीड़वाला अेकान्त यथाक्रम आता ही है। यदि अिस अनोखे अनुभवका संक्षेपमें वर्णन किया जा सकता, तो वह सारा-का-सारा यहीं दे दिया जाता। स्मरण-यात्रामें यही अुचित होता; परन्तु जिस तरह अित्रकी शीशी खोलते ही अुसकी सुगन्ध पूरे वेग से बाहर निकलकर कमरेमें भर जाती है, अुसी तरह मालदीवलका नाम लेते ही कषाय-मधुर संस्मरणोंके अितने अधिक फुहारे छूटते हैं कि अुन्हें अेक-दो लेग्योंके प्यालोंमें भर देना अशक्य नहीं, तो कठिन अवश्य है। अिसलिये स्मृतिके किवाड़ बन्दकर धरासुका रास्ता लेनेके सिवा दूसरा चारा नहीं।

टेहरीके राजाकी तालीम पाये हुअे पण्डित हाकिमने गंगोत्री-जमनोत्रीकी जानकारी देते-देते अेक प्रश्न छेड़ा। जमनोत्रीकी तरफ़के लंग शीघ्र हो आनेपर पानीका अुपयोग नहीं करते। अुनकी अैसी धारणा है कि

गंगा-यमुना सरीखी पवित्र नदियोंका — माताओंका — जल अपवित्र कामके लिये बरतनेमें अधर्म होगा । हम कभी-कभी उन्हें स्वच्छताके बारेमें उपदेश देते हैं, पर अक्सर मनमें शंका होती है कि चाहे यह श्रद्धा अज्ञान-जन्य ही क्यों न हो, क्या उसे नष्ट करनेका हमें कोई अधिकार है ? जमनोत्रीकी तरफ़के लोग झूठ क्वचित ही बोलते हैं । वहाँ चोरी नहीं होती । उन्हें झूठसे काम लेना आता ही नहीं । सच कहनेमें चाहे हिचकें, पर उसके बदलेमें दूसरा कुछ कहा जा सकता है, यह बात उनके स्वप्नमें भी नहीं आयेगी । उस हाकिमके ठीक शब्द मुझे याद नहीं हैं, पर उनका आशय और अत्युक्ति ऐसी ही थी । उन्होंने मुझसे पूछा — “तो बतलाइये हम क्या करें ? उन लोगोंका यह धन्य अज्ञान दूर करें और उन्हें अपने समान बनावें, या उन्हें जैसे-के-तैसे निर्बुद्धि और निर्दोष रहने दें ? ” मैंने जवाब दिया — “मैं ऐसी किसी स्थितिको ओर्ष्याकी चीज़ न मानूँगा । गाय असलिये पवित्र नहीं है कि वह झूठ नहीं बोलती । चूँकि पत्थर बोलता ही नहीं असलिये उसकी गिनती मुनियोंमें नहीं होती । और ये मछलियाँ गंगाका अखण्ड स्नान करती रहती हैं, इस कारण ये स्वर्गको जानेवाली नहीं हैं । ” वे सज्जन कुछ बोलना चाहते थे, पर उससे पहले कि वे कुछ बोलें, मैंने फिर कहा — “हाँ, वह स्तोत्र मुझे याद है, लेकिन वह कविकी कल्पना मात्र है । मछलियाँ जिस दशामें रहती हैं, उसे आप स्वर्ग भले ही कह लें, परन्तु गंगा-स्नानके पुण्य-प्रतापसे उन्हें वह स्वर्ग नहीं मिलनेवाला है, जिसे आप सदाचार-पालनके बलपर मरनेके बाद प्राप्त करना चाहते हैं । आपको चाहिये कि आप अिन लोगोंको ज्ञानसे कदापि वंचित न रखें । अिनकी जड़ता श्रद्धा नहीं है । मनुष्यमें झूठ बोलनेकी शक्ति है, उस शक्तिका वह प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, और अन्तमें झूठ बोलनेकी शक्ति होनेपर भी अपने लिये झूठ बोलना असम्भव कर देता है, तब कहीं उसे सत्य-पालनका आनन्द, उससे होनेवाली वाचा-सिद्धि और क्रिया-फलाश्रयत्व प्राप्त होता है । मनुष्यका स्वयं अज्ञान रहना बड़े ही दुर्दैवका विषय है । अज्ञान-जन्य सुरक्षितता भयानक है, अनर्थकारी है । जो सुना सो सच मान लिया यह वृत्ति श्रद्धा नहीं; भोलापन है, बुद्धूपन है । ”

टेहरीसे आगे चढ़ाव-अुतार बहुत कम था । असलिअे हम ज़रा फुर्तीसे चलने लगे । रास्ता कैसा ही क्यों न हो, अपने कुलियोंसे हमारी चाल तेज़ रहती थी । पर आज देखते क्या हैं कि हमारे कुली हमसे आगे-आगे चलते थे । अस असाधारण घटनाकी तरफ़ मेरा ध्यान गया । मैंने स्वामीसे कहा — “मालूम होता है, बादरू और कैरासिंह आज कुछ विशेष जवान हो गये हैं । हमसे भी आगे चलते हैं ।” स्वामी कहने लगे — “आज रास्तेमें अिन लोगोंका गाँव पड़नेवाला है । घर जानेकी अुत्कण्ठासे ये लोग आज अितने तेज़ चल रहे हैं ।” फिर स्वामीने अिन मुग्ध पहाड़ी लोगोंकी अस गृहनिष्ठ वृत्तिका खूब बखान किया । “होम ! स्वीट होम !” वाली अंग्रेजी कविता स्वामीको याद आयी । हमने यह भी चर्चा की कि हमारे यहाँ यह भाव क्यों नहीं है ? मैंने कहा — “देशभिमान शब्द नया है । हम अभिमानको दोष समझते हैं । देशभक्ति शब्द कुछ अच्छा है, पर हमारा पुराना शब्द तो है जन्मभूमि-वात्सल्य ! वह कितना सुन्दर लगता है ! ठीक है कि अस वात्सल्यका बयान कुछ कवियोंने दुर्बलताके रूपमें किया है, परन्तु श्रीकृष्णके जीवनमें गोकुल-वृन्दावन सम्बन्धी जो अुत्कट भावना प्रौढ़ वयमें भी दिखायी देती है, वह अस देशभक्तिका ही घरेलू संस्करण है ।”

मैं सोचने लगा कि यदि पहलेसे मालूम होता कि बादरूका घर आज आनेवाला है तो टेहरीसे ही अुसके बाल-बच्चोंके लिअे थोड़ी मिठाअी रख लेते । स्वामीको मेरी यह सूचना अच्छी लगी पर जंगलमें मिठाअी कहाँसे आती ! अितनेमें हमें अेक धर्मशाला मिली । वहाँ मिठाअीकी अेक दुकान थी । बादरू वहाँ तक जाकर रुक गया था—वह सिर्फ़ यह तय करना चाहता था कि हम अुस धर्मशालामें न ठहरें । अुसने कहा — “अभी दिन बहुत बाक्री है । ज़रा और तेज़ चलेंगे तो हमारा गाँव आ जायगा । यात्राके रास्तेसे बहुत दूर भी नहीं है ।” और वह गिड़गिड़ाने लगा । स्वामीने मिठाअी खरीदी और हँसते-हँसते अुसे आश्वासन दिया—“आज रातको हम तुम्हारे घर ही भोजन करेंगे ।”

यात्राकी पगडण्डी छोड़कर हम तेज़ीसे अपने कुलियोंके गाँवकी ओर चले । शवरी या विदुरको जितना आनन्द हुआ होगा अुतना आनन्द

हमारे अिन कुलियोंको हुआ । रास्तेमें अेक जगह मैंने सुना कि वहाँ अेक साल पहले अेक आदमीको घास काटते समय साँप काटा था और वह आदमी मर गया था । साँपकी चर्चा छिड़ते ही अक्सर वह बड़ी देर तक चलती रहती है । कुछ विषय विशेष रूपसे मनुष्यको प्रिय होते हैं । चोरोंका अपद्रव, अकालका अनुभव, भूत देखनेके प्रसंग आदि जैसे अक्षय विषय हैं, वैसे ही साँपकी दुनिया भी बहुत लम्बायमान है । साँपकी-सी वक्रगतिसे खेतके किनारे-किनारे जानेवाली अपनी पगडण्डी हम काटते चले और बादरू हमें अपने घरकी बातें कहता चला । रास्तेमें खेतोंके बीच पत्थरोंके अँचे-अँचे बाँध देखकर मैंने कुछ सवाल पूछे । ज्यों-ज्यों सवाल पूछता था, त्यों-त्यों बादरू खिलता था । यों करते-करते बादरूका गाँव आ लगा । फिर उसे हमसे बात करनेमें कोअी मजा न रहा । साँझ हो चुकी थी । किसान खेतसे घर जा रहे थे । बादरू जिसे देखता उसीसे अपने स्त्री-बच्चोंके बारेमें पूछता । सगे-सम्बन्धियोंकी याद करता । वह तो बिल्कुल मतवाला हो गया था । आखिर हमने उसके घरके सामने खलियानमें ही बैठकर रसोअी बनाअी, भक्तिभावपूर्वक दिये हुआे घी-दूध-दहीका भोग लगाया, और वहाँ अेकत्रित लोगोंके साथ गपशप लड़ाने बैठे ।

कैरासिंह और बादरू शहरी मज़दूरोंकी तरह भुक्कड़ मज़दूर नहीं थे । वतन, बाड़ी, ढोर, खेती और सामाजिक प्रतिष्ठा उनकी स्थितिके अनुरूप उन्हें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त थी । पर्वतीय लोगोंके पास दुर्भिक्ष होता है पैसेका । इसलिये यदि यात्राके मौसिममें अेकाध महीने कुलीका काम करके पचास-पौनसौ रुपये कमा लें तो उनका सारा साल सुखमें बीतता है, और हाथ पैसेसे तंग न होनेके कारण घरका माल चाहे जिस भावसे बेचनेकी नौबत आनेका डर नहीं रहता ।

हमने उन्हें बताया कि हमारे प्रान्तमें अैसे बड़े-बड़े पहाड़ नहीं होते । रास्ते सीधे होते हैं । उनपर गाड़ियाँ दौड़ती हैं । गाँवकी बृद्धी औरतें पूछने लगीं — “अेकदम सीधा रास्ता ? थोड़ा भी चढ़ाव-अुतार नहीं ? अफसोस, तब तो तुम्हारे पैर थक जाते होंगे । और वहाँ धूप भी कड़ी पड़ती होगी ! तुम लोग कैसे चल लेते होंगे ? ” पर जब मैंने कहा कि

हमारे यहाँ ढाँची-तीन पैसोंमें नारियल मिल जाता है, तब तो उस गाँवके बालक-बूढ़े सभीका जी हमारे प्रदेशमें आनेके लिये ललचाया। हिमालयमें छोटे-से-छोटा नारियल भी चार आनेसे कम दाममें नहीं मिलता। उसे कोई फोड़ता नहीं। लोग खरीदकर मन्दिरमें चढ़ा देते हैं। मन्दिरका पुजारी फिर वही नारियल बाज़ारमें लाकर बेचता है। इस प्रकार एक ही नारियलके नसीबमें सारा अंश अखण्ड बार चढ़ाया जाना बड़ा होता है। इसकी कोई गारण्टी नहीं कि फोड़नेपर उसके भीतर खोपरा निकलेगा ही।

फिर घरमें पानी लानेका विषय छिड़ा। मैंने कहा — “हमारे देशमें दूरके किसी तालाब या झीलसे पानी नहीं लाना पड़ता। वहाँ घर-घर कुओं होते हैं।” उस गाँवकी मुग्ध कन्यायें तो इस बातकी कल्पना भी न कर सकती थीं कि कुआँ कैसा होता होगा। सयानी औरतें दया खाती हुआ कहने लगीं — “हाय-हाय, तुम्हारे यहाँ स्त्रियोंको यह कितना बड़ा कष्ट है? अतनी गहराईसे पानी खींचकर निकालनेकी हिम्मत तो तुम्हारी स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। हमारे यहाँ ऐसी कोई मुसीबत नहीं। तालाबमें गगरिया भरकर सिरपर धरी, और चले।” लेकिन यह चलना कैसा होता है? कहीं-कहीं तो खासा आधा मील पहाड़ चढ़ना या उतरना पड़ता है! अनि लोगोंके लेखे उसकी कोई विसात नहीं, जब कि ज़मीनके अन्दरसे रस्सीके ज़रिये बीस-पच्चीस हाथ गहरे पानीको ऊपर खींचना उनके खयालसे एक बड़ी झंझट या कड़ी सजा ही समझी जायगी।

दूसरे दिन बादरू बोला — “अब मैं यहीं रह जाऊँगा। मेरा लड़का आपके साथ जायगा। बहुत तगड़ा है। आपके ख़ूब काम आयेगा।” वैसा सब प्रबन्ध भी हुआ। परन्तु अैन वक्रतपर उस बाईस सालके बालक (!) की माँ उसे ‘परदेस’ भेजनेकी हिम्मत न कर पायी, और आखिर हमारा बादरू ही हमारे साथ झल्लाता और बकता-झकता लदा।

राठीकी सीमापर

बादरूके गाँवसे धरासु तकका रास्ता कुछ भी किये याद नहीं आता । जब तक हमने बादरू और कैरासिंहकी पहुनगीका स्वीकार नहीं किया था, तब तक उनका हमारा सम्बन्ध सेठ-नौकरका-सा था । उनके घरका घी-दूध खानेके बाद और उनके आँगनमें अेक रात निवास करनेके बाद हमारे बीच समान भाव जाग्रत हुआ । विश्रामके दिनकी खीचड़ी और रोज़के चने-चवैने याने गेहूँकी फूलीके लिअे चखचख करनेकी बात फिर उन्हें कभी न सूझी । हम भी उनसे अधिक बोलने-बतलाने लगे; और अस बातकी चौकसी रखने लगे कि उन्होंने कब और क्या खाया-पिया ? यों हमारे हृदय कुछ अधिक निकट आने लगे । यह भी नहीं कि अस परिचयके कारण उन्होंने हमारी सेवा पहलेसे कुछ कम की हो । अल्टे अस विश्वाससे कि हम नाराज़ न होंगे, अपनी बुद्धि चलाकर हमारी सुविधाका ध्यान रखनेकी ही वृत्ति उनमें बढ़ती गयी । नौकरों और मज़दूरोंके साथ सखती करके काम लेनेकी अपेक्षा प्रेम और सद्भावसे काम लेनेसे काम अधिक अच्छा होता है । सेवा अधिक मिलती है । पर अससे भी बढ़कर लाभ तो यह होता है कि नौकरोंकी घबराही हुआ बुद्धि आश्वासन पाकर विशेष खिलती है और नौकर भी बुद्धिमान जीव बन जाते हैं ।

धरासुमें रातको मज़दूरोंमें खूब चर्चा चल रही थी । दंगाल तरफ़का कोअी बड़ा ज़मींदार वहाँ पड़ाव डालकर ठहरा था । उस राजाके मुनीम और मज़दूरोंमें बहुत चखचख चला करती थी । घण्टों शान्ति नामको भी न मिलती थी । मुझे कुछ-कुछ स्मरण है कि यहीं हमें कुछ गुजराती यात्री मिले थे । स्वामीने उनके साथ बातें कीं । आगे ये ही लोग हमें गंगोत्रीमें मिले थे, और वहाँ मुझे अिनके रसोअियेको खाने-पीनेके धार्मिक नियमोंके सम्बन्धमें 'व्यवस्था' देनी पड़ी थी

धरासुसे जमनोत्री जानेवाला रास्ता फूटता है । वहाँ पहुँचने तक हमने जमनोत्री जाने या न जानेके बारेमें कुछ भी निश्चय नहीं किया

था । आखिर तय हुआ कि जाना चाहिये । वहीं हमने अपने कुलियोंसे अधिक मजदूरीका करार किया, और हम आगे चले । कैरासिंह बोला — “हम जमनोत्रीके प्रदेशमें शायद ही कभी जाते हैं । इस राई पहाड़के उस पारका मुल्क अच्छा नहीं है । वहाँ बहुत खतरा है । ”

पहाड़ी-लोगोंकी मनोदशाका यह द्योतक है । जब कोअी बड़ा पहाड़ सामने आ जाता है तो वे सोचते हैं, मानो संसारका अन्त आ गया । वैसे, पहाड़ लॉघना अुनके लिये खेल है । पर उस पारकी दुनिया जुदी और अपनी जुदी । अुधरके लोग कुछ और, हम कुछ और; अैसी कोअी गाँठ अुनके मनमें बँध जाती है । हाअीस्कूलमें था तब कवि कूपरकी अेक कविता कण्ठ की थी; यहाँ अुसकी दो पंक्तियाँ याद आती हैं —

Lands intersected by a narrow firth
Abhor each other. Mountains interposed
Make enemies of nations who had else
Like kindred drops been mingled into one.

जमना मैयाका नाम लेकर हम चल पड़े । माधवानन्दजीने भी हमारा साथ देनेका निश्चय किया । यहाँसे हमने अेक घने जंगलमें प्रवेश किया । जिधर देखिये, छाया ही छाया थी । न कोअी पेड़ हिलता था, न डोलता था; मानो ध्यानस्थ ऋषियोंका सम्मेलन हो । हम अुत्साहसे आगे बढ़े जा रहे थे । बेचारे माधवानन्द हमारी बराबरी कैसे करते ? वे पिछड़-पिछड़ जाते थे । अुन्हें बंगालीके सिवा दूसरी कोअी भाषा भी नहीं आती थी । असलिये स्वामी बोले — “यदि अस जंगलमें ये कहीं रास्ता भूल गये, तो बाघ-बघेरुओंका भक्ष्य बन जायँगे । हम ज़रा ठहरें और अुनकी बाट जोहें । ” भला, यात्रामें ठहरनेकी सूचना किसे नहीं भाती ? पर मैं बैठनेसे अिन्कार कर देता । नागबेतकी अपनी लकड़ीपर शरीरका सारा भार डालकर मैं खड़े-खड़े ही आराम ले लिया करता । अेक बार बैठे, और पैरोंमें रक्तका अभिसरण होने लगा कि पैर फूल जाते, और चलना मुश्किल हो जाता । असलिये मैं मुक्कामपर पहुँचकर ही बैठना श्रेयस्कर समझता था ।

क्या किसी भी लड़ाअीके लिये यही नियम सही नहीं है ?

माधवानन्द धीरे-धीरे रास्ता काटते आ रहे थे । मुझे प्रणव-गर्जनाकी सूझी । अेक अँचे शिखरपरसे अँची आवाज़में मैं चिल्लाया — “ ॐ शान्ऽऽऽतिः शान्ऽऽऽतिः शान्ऽऽऽतिः । ” दूरसे माधवानन्दका जवाब आया — “ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । ”

अिस तरह ठहरनेमें हमारु बहुतसा वक़्त बीत गया । रात हो गयी । और हम पहाड़ अुतरनेके बदले अभी पहाड़के माथेपर ही पहुँचे थे । घनघोर अँधेरा था । बीचमें अेक छोटी-सी पगडण्डी पास ही चरवाहोंके अेक गाँवकी तरफ़ जाती थी । अुसने भी हमारु समय लिया । कौनसा रास्ता मोक्षकी ओर ले जानेवाला था, और कौनसा ग़लत रास्ते ले जाकर “सिद्धि”के फेरमें डालनेवाला था ? हमने आसपास देखा, अूपर देखा, नीचें देखा, और प्रवासीकी सहज बुद्धिसे अचूक निर्णय किया कि पगडण्डीवाला रास्ता छोड़ देना चाहिये । अँधेरेमें तो भगवानके भरोसे ही चलना होता है । शान्तिकी गर्जना करते हुअे हम शिखरपर पहुँचे । अितनेमें रजनीकान्त प्रकट हुअे, और आसपासका अँधेरा कुछ-कुछ छँटने लगा ।

अैसेमें खानेको क्या मिलेगा ? यह सवाल तो मनमें अुठता ही कैसे ? तक्रदीरसे रहनेको जगह भी मिल जाय, तो बड़ी बात हो ! हमने सुन रखा था कि जंगल-विभागका अेक दफ़्तर रास्तेमें पड़ता है । हम अुसीको लक्ष्य करके चले; वह दफ़्तर तो आता ही न था । अितनेमें बाबाजीको अैसा लगा मानो कहीं कुछ निठल्ले लोग बैठे गपशप लड़ा रहे हैं । जिधरसे अुन्होंने यह आवाज़ सुनी थी अुस दिशामें जाकर स्वामी समाचार लाये कि ज़रा और अँचेपर जंगलके सिपाहियोंका अेक थाना है और वहींसे यह आवाज़ आ रही है । हम वहाँ पहुँचे । पर जंगलके वे दोपाये बाघ भला हमें अपने पास क्यों फटकने देते ? वे गुरायें, बरायें, हमारी तरफ़ झपटे, पर हम टस-से-मस न हुअे । अँधेरेमें भी स्वामीकी वाणीकी मोहिनी काम कर गयी । और वे द्विपद बाघ कुछ नरम पड़े । अुन्होंने हमें चबूतरेपर भी आने दिया । फिर बातें होने लगीं । पहले तो अुन्होंने जंगलके कानूनकी कड़ाअी और अुसका महत्व समझाया । कहा — “कोअी ग़लतीसे बीड़ी फेंक दे, तो समूचा जंगल जल जाय । लोगोंकी जान

जोखिममें पड़ जाय, और अिससे भी बढ़कर बात यह है कि सरकारका बेहद नुकसान हो जाय ” ।

अितनेमें माधवानन्द भी आ पहुँचे और उनुकी बंगाली वाग्धारा बहने लगी । मैंने उनुसे दो-तीन बार कहा कि मैं बंगालीका ब्रह्माक्षर भी नहीं जानता । हाँ, आनन्दमठके कुछ पन्ने पढ़े थे; लेकिन आखिर बंगाली अुच्चारण तो बंगाली अुच्चारण ही हैं । उनुका ज्ञान तो गुरु-मुखसे ही हो सकता है । मैंने उनुसे मराठीमें कहा, हिन्दीमें निवेदन किया, निष्काम कर्मके रूपमें अंग्रेजीमें भी अनुनय किया, परन्तु माधवानन्दजीकी वाग्धारा किसी अुपायसे कुण्ठित न होती थी । किसी कविने कहा है — “आअि सिंग् विर्काज्ज आअि मस्ट” (मैं गाता हूँ क्योंकि बिना गाये मैं रह नहीं सकता ।) माधवानन्दकी प्रतिभा अिसी तरहकी थी । मैं समझूँ या न समझूँ उनुकी बलासे ! उनुके लिअे यही काफ़ी था कि मेरे कान मनुष्यके कान थे । अुन्होंने अपने श्रवणाजलिपुटपेय वाचामृतका पान सुसे बरबस कराया । मैं भी जी कड़ा करके निष्काम कर्म समझकर शान्तिसे सब सुनता रहा, मानो भैसेकी पीठपर वृष्टि हो रही हो ।

चन्द्रमा अुगा तो, पर आकाश जितना चाहिअे अुतना स्वच्छ न था । और हम थके-माँदे थे । अिसलिअे किसी प्रकारकी छेड़छाड़ किये बिना ही सो गये ।

स्मृति धोखा दे रही है । परन्तु बहुत करके वह अदभुत अनुभव धारासुसे खाना होनेके दिन ही हुआ था । रास्ता चलते-चलते अेक स्थान आया जहाँ पहुँचते ही हृदयमें अैसा भाव पैदा हुआ कि यह तो कोअी पूर्व-परिचित स्थान है । मानो किसी समय मैं यहाँ रह चुका हूँ । वह भाव कैसे और क्यों पैदा हुआ कुछ समझमें नहीं आया । कअी बार कअी प्रकारसे अिसपर विचार किया, पर कोअी निर्णय न हो पाया । निश्चय ही अैसी किसी जगहमें पहले कभी गया नहीं था । तो फिर हृदयमें अैसा भाव क्यों अुत्पन्न हुआ ? क्या अिस रमणीय स्थानको देखकर कोअी अस्पष्ट कल्पना या वासना भूतकी तरह अिससे चिपट गयी ? कालिदास होते, तो तुरन्त कहते —

“तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि ।”

जो हो, जी चाहने लगा कि आगे-पीछेका सारा विचार छोड़कर यहीं रह जाऊँ। परन्तु क्या मनुष्य-निवाससे शून्य उस महारण्यमें केवल काव्यमय कल्पनाके भरोसे रहना सम्भव होता ?

३१

यामुन ऋषि

सबरे उठकर हमने गंगाजीका रास्ता लिया। बर्फ़के दर्शनसे चित्त प्रसन्न हुआ ही था। उसे अप्रसन्न करनेवाली एक भी चीज़ प्रकृतिके अिस प्रान्तमें न थी। हाँ, एक मुश्किल ज़रूर थी। पहाड़पर चढ़ते समय जितना सृष्टि-निरीक्षण हो सकता है, उतना उतरते समय नहीं हो सकता। चढ़नेमें हम धीरे-धीरे बढ़ते हैं। चारों तरफ़ देख सकते हैं। और, शरीरको कितना ही ज़ोर क्यों न लगाना पड़े, तो भी उसकी तरफ़ ध्यान नहीं देना पड़ता। पर उतरते समय पहाड़का उतार ही हमसे जल्दी कराता है। आसपास देखनेकी बनिस्वत पैरके नीचेकी ज़मीनको देखना बहुत ज़रूरी हो जाता है। हर कदमके साथ सारे शरीरका भार घुटनों और टकनोंपर आ पड़ता है, और पैर सँभालनेकी कसरत तो कभी प्रकारसे करनी पड़ती है। पर महादेवजीकी तीसरी आँखकी तरह, हमारे पास लकड़ीका तीसरा पैर था, अिसलिअे हम सुरक्षित थे।

जंगलमें देखने योग्य तो बहुत-कुछ होता है। तरह-तरहके वृक्ष और पत्ते, छोटी-बड़ी पहाड़ियोंकी व्यवह रचना, और ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी चढ़ा-अूतरी। परन्तु अिस सबकी अपेक्षा मेरा ध्यान तो वृक्षोंके तनोंकी तरफ़ ही अधिक जाता है। छुटपनसे मुझे पेड़ देखकर विश्वामित्र आदि ऋषियोंका स्मरण होता है। अैसा लगता है, मानो अखाड़ेबाज बैरागी मलखम कर रहे हों, और अुनके पैरोंमें अनेक प्रकारकी आँटियाँ पड़ रही हों। पेड़की अैसी डालियाँ देख मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। पेड़ोंके

तने और डालियोंके आकार, उनकी छाल और रंग देखकर मैं उनमेंसे हरएकके स्वभावकी कल्पना कर सकता हूँ। कुछ पेड़ स्वयं अपने प्रति कठोर होनेमें जीवनकी सार्थकता मानते हैं। कुछ खा-पीकर सुखसे बैठने-वाले लोगोंकी तरह गोलमटोल होते हैं। कुछ विलकुल झुकी हुई शाखाओंवाले पेड़ जैसे लगते हैं, मानो मराठा इतिहासके राजाराम-कालीन वीरोंकी तरह विपत्तिके कारण असहाय होनेपर भी अविचल भावसे लड़ रहे हों। और कुछ जैसे प्रतीत होते हैं, मानो सारे वनका इतिहास प्रस्तुत करने, सामग्री जुटाने और उसे सँभालनेका काम कर रहे हों! कुछ पेड़ोंकी त्वचा अतनी सुकुमार होती है कि उन्हें देखकर शकुन्तलाको तपस्या करते देख जिस प्रकार दुष्यन्त बेचैन हो उठा था उसी प्रकार हमारा मन भी अस्वस्थ हो जाता है। और दूसरे कुछ पेड़ोंके कोटर देखकर ऐसा मालूम होता है, मानो वे पेड़ मधुमक्खियोंको या तोतों-जैसे पक्षियोंको आश्रय देनेके लिये अपना हृदय चीरकर खोल रहे हों। पेड़ोंकी असली शोभा देखनी हो तो वर्षाके बादकी धूपमें देखनी चाहिये, या फिर उस समय कि जब पक्षियोंके छुण्डके छुण्ड फूलोंकी तरह पेड़ोंपर आकर बैठे हों। चीड़के पेड़के तनेमें रस्सीके बलकी-सी रेखायें होती हैं। इससे ऐसा भास होता है, मानो इस तनेको मजबूत बनानेके लिये प्रकृतिने कुछ विशेष मेहनत की है।

अस प्रकारकी विविध सुन्दरता देखता-देखता मैं नीचे उतर रहा था, अतनेमें निगाह ऊपरसे नीचे गयी और जमुनाजीके दर्शन हुआ। जमुनाजीको पहचाननेमें देर न लगी। हो न हो यही वह काली कालिन्दी है जिसके जलमें मैं प्रयागराजमें नहाया था, जिसके कल्लुवोंको वृन्दावनमें बन्दरोंसे जूझते देखा था, जिसके दर्पणमें ताजमहलका प्रतिबिम्ब देख मैं आश्चर्यचकित हुआ था, और जिसके नामके साथ छुटपनसे मेरे मनमें कालियामर्दनके चित्र संलग्न थे। इस स्थानपर जमुनाजी ऐसी लगती हैं, मानो कोअी दोहरे हाड़की मजबूत काठीवाली सोलह-सत्रह वर्षकी सुन्दर, निरागस बाला यौवनके भानके अभावमें दौड़ती, अछलती-कूदती, पैजिनियों और घुँघरुओंके नादकी धुनमें सारी दुनियाको भूल रही हो। जब हम पहाड़ उतरकर नीचे आये तो उनके विविध रंगोंवाले निर्मल

जलका दर्शन हुआ । कभी वह नीली-काली स्याही सरीखा दिखायी देता है, तो कभी, जब पत्थरोंपरसे वहता है, तो नीलेश्वरके रंगका हो जाता है । जब लहरें पत्थरपर टूक-टूक होकर हँस पड़ती हैं तब वह बिल्कुल शुभ्र बन जाता है, और तिसपर उसे पुनः नील-गम्भीर होते भी देर नहीं लगती । निर्मल जलकी अनि अठखेलियोंसे तपोवृद्ध और महाकाय पत्थर मानो धन्य-धन्य हो रहे थे । पानी अपनी एक तरहकी मस्तीमें नाच रहा था, और पत्थर दूसरी तरहकी मस्तीमें चूर थे । भला, उनके मनमें क्या चल रहा होगा ? और मेरे मनमें जो कुछ चल रहा था, उसका उन्हें क्या पता था ? कुछ दूर तक सफेद बालूपर चलकर हम जमुनाजीके किनारे जा बैठे । अतनेमें कुछ पर्वतीय लड़कियाँ अधरसे गुज़रीं । उन्हें यह देखकर अचम्भा-सा हुआ कि हम वहाँ बैठे-बैठे क्या देख रहे हैं । जिधर हमारी दृष्टि दौड़ती अधर ही वे यह जाननेके लिये देखने लगतीं कि आखिर वहाँ ऐसी कौनसी खास चीज़ है । जब कुछ न मिला तो अपनी आँखोंसे यह संकेत-सा करती हुयी कि वहाँ तो कोसी खास चीज़ नहीं दीखती, वे चली गयीं । भला, वे भी कैसे जानतीं कि मेरे मनमें क्या अधेड़-बुन चल रही है ?

यह स्थान गंगाणी कहलाता है । गंगाणीका अर्थ क्या गंगा-आनी (लायी गयी) ?

एक ऋषि था । वह गंगा और यमुना दोनों लोकमाताओंकी निर्विशेष भावसे भक्ति करता था । दोनोंके दर्शन किये बिना उसका एक भी दिन न जाता था । वह जमुनाजीके तीरपर रहता और खाता, पर रोज़ नहाने गंगाजीपर जाता । बीचमें राक्षसके समान राढ़ी पर्वत खड़ा था । उसने कभी एक क्षणके लिये भी उसकी परवाह न की । पन्द्रह-बीस मीलका अन्तर काटना उसके लिये खेल था । जब तक शरीरने साथ दिया, उस व्रतनिष्ठ ऋषिने इस नियमका बराबर पालन किया । पर जब शरीर नितान्त क्षीण हो गया, तो उसने गंगाजीकी स्तुति की । गंगाजीको उसपर दया आयी । फल यह हुआ कि जमुनाजीके तीरपर उसके आश्रमके निकट श्वेत जलके झरनेके रूपमें गंगाजी प्रकट हुईं । ऋषि कृतार्थ हुआ । इस नूतन गंगामें नहानेके लिये ऋषि कितने दिन

जिया, 'माहात्म्य' में इसका कहीं अुल्लेख नहीं है। हम उस झरनेको देख आये। मेरे मनमें ऋषिके लिये ऐसी भक्ति पैदा हुई, मानो वह मेरे ही गोत्रका कोआ पूर्वज रहा हो। वह जितना बड़ा तपस्वी था उससे भी बढ़कर कवि था। कविकी यह व्याख्या कि 'जो काव्य लिखता है वह कवि है' अव्याप्त भी है और अतिव्याप्त भी। पर यथार्थ व्याख्या यह है कि 'जिसका जीवन ही काव्य है, वही कवि है।' उस ऋषिने अधिक नहीं, तो कम-से-कम तीस-चालीस वर्षों तक गंगा और यमुनाकी अुपासना अवश्य की होगी। अिसे अपने जीवनका अेक नियम बनाते समय उसके हृदयमें कैसे-कैसे भाव अुद्भूत हुअे होंगे? और उस नियमके पालनमें प्रतिदिन अुसे कितना आनन्द आया होगा? चारों धामोंकी यात्रा करते हुअे प्रतिदिन नये-नये अनुभव करनेमें अेक प्रकारकी संस्कारिता निहित है, परन्तु प्रतिदिन दोबार अुसी रास्तेका चक्कर लगानेपर भी अुससे रोज़ नये-नये आनन्दका अनुभव करनेमें अेक दूसरे प्रकारकी, निश्चित स्वरूपकी और गहरी संस्कारिता निहित है। प्रतिदिनके अिस क्रमके कारण अिस ऋषिका अुस पहाड़के पेड़ोंसे ही नहीं बल्कि अेक-अेक बादलसे भी परिचय हो गया होगा। अुसके सामने न जाने कितने पौधे पेड़ बने होंगे। अुसने न जाने कितनी बार जमुनाका जल घटते और बढ़ते देखा होगा, और कुतूहलके योग्य कुछ भी न रह जानेके कारण अुसकी रोज़की यात्रा अुसे अपने चित्तको अन्तरमुख बनानेमें सहायक हुई होगी। यह अेकाग्रताका फल है। संसारका अनुभव है कि बड़ी-से-बड़ी व्यावहारिक और आध्यात्मिक समस्या हल करनेमें ऐसी अेकाग्रता पत्थर फोड़नेवाली सुरंग से भी अधिक परिणामकारी सिद्ध होती है।

अुन 'यामुन' ऋषिका ध्यान विसर्जन कर ज्यों ही मैं अपने आसपास देखने लगा, तो न स्वामी दिखायी दिये और न बाबाजी ही। वे कुछ दूर अेक झोंपड़ीमें ताज़ा मक्खन खरीदनेमें मशगूल थे। मैं भी वहीं पहुँच गया। अुस गोरसको हमने अुन ऋषिका ही प्रसाद समझा, और अुसी भावनासे अुसे 'पाकर' हम आगे बढ़े।

राणागाँव

गंगाणी छोड़ हम आगे चले । नित्यकी तरह स्वामी तेज़ीसे सबके आगे चल रहे थे । बाबाजी अुनके पीछे-पीछे अुनकी बराबरीपर आनेकी कोशिश करते हुअे चल रहे थे और स्पर्धामें दिश्वास न होनेके कारण मैं अपनी चालसे धीरे-धीरे रास्ता तय कर रहा था । फुर्ती और थकावट दोनोंसे मेरी दोस्ती कम-से-कम थी । कुछ आगे जानेपर हमने विचित्र पोशाकवाले पहाड़ी स्त्री-पुरुषोंकी अेक छोटी-सी छावनी देखी । यह कोअी स्थायी गाँव न था । किसी खानाबदंश टोलीका कामचलाअू निवास था । अिन वनजारा जातियोंकी स्त्रियोंकी पोशाकमें, हाव-भावमें और आँखोंमें अेक प्रकारकी अुग्रता और लुटेरापन होता है । ‘ अवला ’ या ‘ ललना ’ नाम अिनके लिअे होता ही नहीं । पाससे होकर अिस जातिकी स्त्रियोंके गुजरते समय मनमें अेक तरहका डर-सा बना रहता है । वनजारोंकी दूसरी विशेषता है अुनका आलस्य । जो कुछ करना होता है, सो अचूक कुशलता पूर्वक फ़ौरन कर डालते हैं और फिर आलस्यमें मग्न हो जाते हैं । अुन्हें देखकर अैसा लगता है मानो वे अिस चिन्तामें पड़े हों कि अीश्वरने अितना सारा फ़ालतू समय क्यों पैदा किया है ? आखिर अूबकर और जमुहाअियाँ ले-लेकर वे अुसकी पूर्ति करते पाये जाते हैं । अिस छावनीके पाससे रास्ता अेकाअेक दाहिनी तरफ़को मुड़ता था । अिसलिअे सही रास्तेका निश्चय करनेके लिअे हमें वहाँ ठहरना पड़ा, और जवरदस्ती अिन लोगोंका निरीक्षण करना पड़ा । आगे चलकर रास्ता बहुत विकट आया । स्वामी, बाबाजी और मैं तीनों अिकट्टे होकर अिस विचारमें डूब गये कि आखिर रास्ता किस दिशामें हो सकता है । आगेका प्रदेश बड़े बड़े, बिखरे हुअे, हड्डी होकर पड़े हुअे पत्थरोंसे भरा हुआ था, मानो पाँच-दस पहाड़ोंके बीच घमासान युद्ध होगया हो, और अब रणभूमिपर विनाशके अवशेषोंके सिवा कुछ भी न बचा हो ! जिधर नज़र दीड़ाअिये पत्थर ही पत्थर ! दूर नज़र डालनेपर अेक पहाड़की बाजू दीखती थी मगर

वह भी पत्थरोंके ढेरोंक ही बनी थी। हम सहज ही अनुमान कर सके कि पृथ्वीके पेटमें कोअी उत्पात हुआ होगा और किसी पहाड़के चूर-चूर हो जानेसे पत्थरोंकी बाढ़ आ गयी होगी।

अब अिस पहाड़ी रणक्षेत्रमेंसे रास्ता किस तरह निकालें ? रण-नदी-सी जमुना बीच-बीचमें 'मत जाओ' कहती थी। आखिर स्वामीने अेक जगह अेक कामचलाअू पुल खोज निकाला। हरअेक पहाड़ी मनुष्यको पुल बाँधना आना ही चाहिये। फ़ौजमें कामचलाअू पुल बाँधनेमें कुशल लोगोंकी अेक अलग टुकड़ी ही होती है। पहाड़ी लोगोंके लिये पुल बाँधनेकी कला अेक जीवन-कला है। अुस पुलपरसे अपने शरीरको भली-भाँति साधते हुअे हम आगे गये। आगे चलकर अेक पत्थरके नीचे दबा हुआ कागज़का अेक टुकड़ा मुझे मिला। अुसपर अंग्रेज़ीमें जो कुछ छपा था अुसे ध्यानसे देखा, तो त्रिकोणमितिके कुछ अंक अेक कोष्टकमें लिखे हुअे दिखायी दिये। मैंने अुस कागज़से अुसकी जीवन-कथा बार बार पढ़ी, परन्तु त्रिकोणमितिके अंकोंके कोष्टकोंकी पुनरावृत्तिके सिवा और कुछ बतलानेसे अुसने अिनकार किया। अुसने सोचा होगा, 'जो गणित नहीं जानता, अुससे बात क्या करें ?' कोअी सरकारी अधिकारी अथवा साहसी यात्री अिस रास्ते गया होगा। वह बर्फ़में दब गया होगा, या बाघ भेड़ियेका शिकार बना होगा — कौन जाने क्या हुआ होगा ? अुसका सामान आँधी और पानीसे तितर-बितर हो गया होगा या गल गया होगा। अथवा यहाँ जो पहाड़ ढह गया था अुसके नीचे कोअी यात्री दब गया होगा, और अुसके कागज़ोंमेंसे यह अेक अवशेष अुड़ता-अुड़ता आकाशमें विहार करता रहा होगा, और अन्तमें कुछ न सूझनेके कारण यहाँ आकर गिरा होगा। 'यों बार-बार क्यों अुड़ता फिरता है ? चुपचाप बैठा रह न भाओ !' अैसा कह कर कोअी पत्थर अुसकी छातीपर सवार हो गया होगा, और अब यह कागज़ किसी अुद्धारकके आगमनकी राह देखता यहाँ पड़ा होगा। यहाँके 'लेण्डस्लिप'के स्मृतिचिन्हके रूपमें कअी दिनों तक मैंने कागज़के अुस टुकड़ेको सँभालकर रखा था, परन्तु बादमें अुसका क्या हुआ, कुछ पता नहीं। अगर कागज़का वह टुकड़ा मुझसे बोला होता, तो कदाचित् मैंने

अुसे किसी पदार्थ-संग्रहालयमें रख दिया होता । घनघोर जंगलमें, जहाँ मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान नहीं, जहाँ पर्वतके अुत्पात और जल-प्रवाहके प्रगतकी ही लीला छाओ हो, वहाँ मनुष्यके दिमागसे पैदा हुओ त्रिकोण-मितिके कागजका टुकड़ा मिल जाय, तो किसे असका विस्मय न होगा ?

बड़ी मुसीबतसे रास्ता निकालते-निकालते हम आगे चले । अितनेमें दो पहाड़ोंके बीचसे निकलकर गूढ़ भावसे आती हुओ जमुना हमें दिखाओ दी । पानीका रंग और अुसकी स्थिरता देखकर मनमें निश्चय हुआ कि यहाँ गहरा दह है । आगे जानेका कोओ रास्ता न था । दाहिनी तरफ़ खड़ा पहाड़ था और बायीं तरफ़ पर्वतके पैर पखारनेवाला पानी । जब निश्चय हो गया कि पानीमें पैर डाले बिना आगे बढ़ा ही नहीं जा सकता, तो पहाड़ी पगडण्डी पकड़कर हम पानीके किनारे-किनारे पानी काटते हुओ आगे बढ़े । अिस तरह पानी ही पानीमें बहुत दूर तक जानेकी बात नहीं थी, फिर भी पानीने हमारी खासी खातिरदारी की । पानीकी ठण्डक घुटनों और कमरसे अुपर चढ़कर कलेजे तक पहुँच गओ ।

अब चढ़ाव लगा । अँधेरा बढ़ चला । ज्यों-त्यों करके राणागाँव पहुँचे । यहाँ शनैश्चर महाराज ग्रामदेवताके रूपमें पूजे जाते हैं । हम अुनके काठके मन्दिरमें जा पहुँचे । थकावट अितनी आ गओ थी कि कड़ाकेकी सरदी होनेपर भी पैर फैला करके ही सोनेकी अिच्छा होती थी । गाँवके लड़के कुतूहलपूर्ण नज़रसे हमारा स्वागत करते थे । अगर लड़के शहरके हैं, तो वे यात्रीसे अेकाध कहानी सुनानेका आग्रह जरूर करेंगे । और अगर शहरसे लगे हुओ किसी गाँवके लड़के हैं तो वे सलाम करके पैसा माँगेगे । हमारी तरफ़के देहाती बालक तरह-तरहके सवाल पूछते हैं — “ आप कहाँसे आये हैं ? आपके गाँवमें अमुक क्या है, तमुक क्या है ? ” अिस तरफ़के लड़के यात्रीसे अेक ही चीज़ माँगा करते हैं — “ सुओ दो, धागा दो, बिन्दी दो ! ” पहाड़ी बिर्यौ और लड़कियाँ कपालपर रोरीका तिलक लगाकर अुसपर अवरक या ‘बेगड़’की टिकिया अथवा छोटी-सी टिकुली लगा लेती हैं । अुसे अुधरके लोग ‘बिन्दी’ कहते हैं । पहाड़ी लड़कियाँ अिस बिन्दीपर निछावर हो-हो जाती हैं । हिन्दुस्तानका कोओ यात्री पहाड़ीमें जाये और अपने साथ सुओ, धागा और बिन्दी ले जाये, तो हर किसी

गाँवमें उसका सत्कार ज़रूर होगा । मन्दिरके सामनेवाले कमरेमें अंक गड़्ढा था — ठीक वैसा जैसा हमारे यहाँके अखाड़ोंमें कुश्तीका होता है । हम उसीमें सो गये । अंक पहाड़ी कुत्ता गुर्राता हुआ सारी रात हमारी रखवाली करता रहा । आमतौरपर यह कहा जा सकता है कि पहाड़की गायें भेड़-बकरियोंके बराबर छोटी-छोटी होती हैं; जब कि पहाड़ी कुत्ते बाघकी तरह बड़े होते हैं ।

आधी रातको थकान अतृप्ति और मैं लघुशंका करने बाहर गया । सामने पहाड़का अंक प्रचण्ड शिखर अनन्तकालसे बर्फ आँढ़कर सो रहा था और उसपर चन्द्रमाका शीतल प्रकाश सोनेके पानीकी तरह चमक रहा था । आधी रातकी बे-सिर-पैरकी कल्पनाने उस पहाड़में महादेवजीका माथा देखा । सामने विशाल भाल प्रदेश था, उसके नीचे दो आँखों-सी वे दो घाटियाँ, उनके बीचमें वह चपटी नाक, उसके नीचे मुँहके साथ अंकाकार बनी हुई विचित्र-सी टोड़ा और दोनों कान तो ऐसे लगते थे मानो रूठकर दूर जा बैठे हों; और महादेवजीका वह माथा तना हुआ न था, बल्कि ऐसा मालूम होता था, मानो थकनेके बाद आराम लेनेके लिये अंक ओर ढल पड़ा हो । आसपासकी ठण्ड फ़ौजी कानूनकी तरह मन्दिरके अन्दर जानेका हुक्म दे रही थी, फिर भी पहाड़का वह विशाल दृश्य किसी भी तरह पैरोंको अुठाने नहीं देता था । जब कि चारों तरफ़का पानी जमकर बर्फ़ बन चुका था, ऐसे समय काव्यकी प्यासी कल्पना उस दृश्यका पान करनेमें लीन थी । आकाशमें बृहस्पतिका तारा बृश्चिक राशिपर विराजमान था ।

सबेरा हुआ और गाँवके भक्त लोग लम्बे-लम्बे और मोटे चोगे पहनकर मन्दिरमें आने लगे । यह सोचकर कि अब यहाँ और अधिक रहनेकी ज़रूरत नहीं, हम आगे बढ़ गये ।

जमनोत्री

जब पहाड़ोंमें कुहरा छा जाता है तब अक्सर यात्रियोंको अद्भुत दृश्य देखनेको मिलते हैं। चारों तरफ़ गाढ़े दही-सा कुहरा फैला होता है, जिससे आदमी अपने आगे-पीछे एक हाथसे ज़्यादा दूरकी कोअी चीज़ देख ही नहीं पाता। अगर आमने-सामनेसे लोग दौड़ते हुअे आयें तो आपसमें टकराये बिना न रहें। यदि अस बीच बादल बिखर जायें और सूर्यकी किरणें अपना प्रताप प्रकट कर सकें, तो वही कुहरा बातकी बातमें गायब हो जाता है, और विशाल व व्यापक सृष्टि फिर यकायक प्रकट हो जाती है। आश्चर्यमग्न होकर हम अधर-अधर देखने लगते हैं कि अितनेमें और्षालु बादल फिर आकाशके कपाट अेकदम बन्द कर लेते हैं, और हम तुरन्त ही कुहरेके क्षीरसागरमें निमग्न हो जाते हैं, और फिर कहीं कुछ दिखाअी नहीं देता। अस अिन्द्रजालको देखनेमें अेक अनोखा मज़ा आता है। जब स्मृतिके आकाशमें विस्मृतिके बादल छा जाते हैं तो स्मरण-यात्राकी भी यही दशा होती है। यात्राके कुछ संस्मरण कुतूहल या निरीक्षणके कारण बरसोंके पटल भेदकर ताज़ेके ताज़े दिखाअी देते हैं, जब कि कअी बड़े-बड़े भू-प्रदेश विस्मृतिके कुहरेमें अदृश्य हो जाते हैं। हमने राणागाँव छोड़ा और हम जमनोत्री पहुँचे। पर अन दोनोकि बीचका प्रदेश कैसा था, असमें क्या-क्या देखा था, सो सब आज स्मृतिकी पहुँचसे बाहर हो गया है। वह सब गया। सफलतापूर्वक गया। सदाके लिअे गया। पाँच-पाँच, दस-दस क़दमपर थकान अुतारनेके लिअे ठहरना पड़ता था। परन्तु आज तो अितना ही याद पड़ता है कि ज़रा देर ठहरते ही ठण्डी हवा हमें सहलाकर फिर तरौताज़ा बना देती थी।

विस्मृतिके पटलसे बाहर निकलनेपर दृष्टिके सामने यह चित्र खड़ा होता है कि हम जमनोत्रीकी घाटीमें नदीकी दाहिनी ओर वाले अूँचे पर्वतपरसे जल्दी-जल्दी नीचे अुतर रहे हैं। और साथ ही यह भी याद

आता है कि उस समय मैं अपनी आत्मकथाके कुछ महत्त्वके प्रकरण बाबाजीके सामने खोल रहा था ।

पहाड़ोंकी भयानक भूमिमें हर एक नदीके दोनों किनारोंपर अनुकी रखवाली करनेवाले पहाड़ होते ही हैं । पर जमुनाजीने जमनोत्रीके आसपास रखवालोंका जैसा साथ जमाया है वैसा तो शायद ही कहीं दूसरी किसी नदीको नसीब हुआ होगा । हिमालयके असंख्य भव्य दृश्योंमें जमनोत्रीके निकटका दृश्य अपने शैत्य, पावनत्व और भीषण गाम्भीर्यके कारण कुछ निराला ही नज़र आता है । ‘लोकमाता’ नामक अपनी एक पुस्तकमें मैंने ‘यमुनारानी’ नामसे जो लेख लिखा है उसमें इसका थोड़ा वर्णन किया है । जिस दृश्यने हृदयके एक-एक कोनेको झकझोर डाला हो, उसका वर्णन एक बार एक प्रकारसे करनेके बाद फिर दूसरे प्रकारसे उसका वर्णन करना हमें अच्छा ही नहीं लगता । फिर एक ही बातको बारबार एक ही तरहसे कहते रहना भी उचित नहीं ।

परन्तु उस शीत प्रदेशमें कालिन्दीके किनारे बसनेवाले असित ऋषिकी याद आये बिना रहती ही नहीं । चारों तरफ़ फैले हुए बरफ़ीले पहाड़ोंके बीच उन दिनों वे असित ऋषि कैसे शोभते होंगे ? जिसकी जीवन-भेदी कल्पनाओंके विकासके लिये जमनोत्रीसे नीची कोअी जगह काम नहीं आयी, उस ऋषिकी साधना कितनी अग्र रही होगी ? यहाँ रहकर उस ऋषिने भूत और भविष्य कालके अतिहासमें कितनी सदियों तक नज़र दौड़ाई होगी ? उसने यहाँ बैठकर मानव-कल्याणके अनेक संकल्प सेये होंगे । अगर उसीका प्रभाव हमारी आजकलकी राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें सूक्ष्म रूपसे काम कर रहा हो, तो भी हम उसे जानें कैसे ? यह माननेके बजाय कि यहाँ गरम पानीके कुण्ड देखकर ऋषिने इस स्थानको चुना होगा, मेरा झुकाव यह माननेकी तरफ़ है कि ऋषिके यहाँ रहनेका निश्चय करने पर उसके संकल्प बलसे विवश होकर प्रकृतिने अपने निश्वासके रूपमें यहाँ अुष्ण झरने प्रकट किये होंगे । यहाँके पानीमें गन्धककी गन्ध तक नहीं है । किसी बड़े अिजनकी चालकी तरह छक्-छक्, फक्-फक् का उसका गाना निरन्तर चलता ही रहता है ।

हमने वहाँ रात अतने आनन्दसे बिताओ, मानो किसी लम्बे सफ़रके बाद घर पहुँचे हों । गरमी और ठण्डके बीच करवटें बदलते हुअे हम रातके अेक-अेक क्षणका माधुर्य चख सके । हमने अपना अेक घण्टा भी गहरी नींदमें नहीं खोया । क्या प्रकृतिने अैसे स्थान किसी अुद्देश्यके बिना ही निर्मित किये होंगे ? आज न तो कोओ बड़ा संकल्प करता है, और न अुसकी साधना ही । आज तो अैसे स्थान भक्तिकी तृप्ति और काव्यके अुन्मादके लिअे ही अुपयोगी हैं । हमारे जीवनमेंसे साधना जाती रही है, असलिअे अैसे स्थानोंमें साधक कहीं ढूँढे नहीं मिलते ।

३४

अूपरीकोटकी चढ़ाओ

अनविंधे मोतीकी कीमत ज़यादा समझी जाती है । शकुन्तलाको देखकर दुष्यन्तको भी ‘अनाविद्धं रत्नम् !’ का स्मरण हो आया था । जमनोत्रीका तीर्थस्थान कुछ-कुछ अिसी कोटिका है । साधारण यात्रियोंको बदरीनारायणकी अपेक्षा केदारनाथका आकर्षण कम होता है, और गंगोत्रीकी अपेक्षा जमनोत्रीका । तिसपर जाते-आते जमनोत्रीका रास्ता बड़ा विकट है । असलिअे शरीर-प्रेमी यात्री अिस तरफ़ आते ही नहीं । फलतः अधरकी जनता भी कम धूर्त होती है — बल्कि यों कहिअे कि बिलकुल भोली । यहाँके पण्डोंमें आप अपनी गरीबी और भिखमंगेपनको छिपानेका लुच्चापन ज़रा भी न पायेंगे । अुनका आहार नितान्त सादा होता है । जब कभी कोओ बीमार पड़ता है तो काली मिर्च, जीरा, तेजपान, लोंग और सोंठ जैसी दवा लेते ही चंगा हो जाता है । यहाँ मैं पहली बार यह अनुमान कर सका कि अपना स्वाद बिगाड़नेके लिअे और अँतड़ियोंको अुम्रभर कष्ट देनेके लिअे मसालेके रूपमें जो चीज़ें हम खाते हैं, असलमें वे गम्भीर बीमारीके समय बतौर दवाके ही बरती जाती थीं । मनुष्यने देखा कि अपचन हो

जानेपर अिस प्रकारकी गरम वनस्पतिसे वह दूर किया जा सकता है । अितना ज्ञान हो जानेपर मनुष्य खानेमें संयम पालने लगे, तो फिर वह मनुष्य ही क्या ? मनुष्य यह बात भूल गया कि अजीर्ण या अपचनसे अुसकी आबरू जाती है, प्रतिष्ठा कम होती है । वह कोअी पशु थोड़े ही है जो प्रकृतिके प्रति सच्चा रहे ? जब अुसे पतनकी स्वतंत्रता है तो पतित हुअे बिना अुसे सन्तोष कहाँ ? मनुष्यने ज़्यादा खाना शुरू किया और साथ ही अपचनकी दवा खानेका नित्य-नियम बना लिया, और यों प्रकृतिसे बैर ठान लिया । अुसे दवाका चसका ला गया । फलतः दवा दवा न रहकर मसाला बन गयी । और जब मसाला खानेपर भी अपचन रहने लगा तो आज मनुष्य-जाति अिस सोचमें पड़ी कि आगे क्या करे ? अधरके पहाड़ी लैंग अभी भी सुधारोंकी बदौलत अितने बिगड़े नहीं हैं । कालीमिर्च, तेजपान और लैंग आज भी अुनके लिअे दवाका काम देते हैं । अितना लिखनेके बाद याद आया कि मेरी यात्रा तो पिछली पीढ़ीमें हुअी । क्या यह संभव है कि आज जमनोत्रीके निकटवर्ती समाजमें सभ्यता और प्रगतिका प्रवेश ही न हुआ हो ?

जमनोत्रीसे हम वापस राणागँव आये, और वहाँसे हमने अूपरी-कोटकी चढ़ाओ चढ़कर अुत्तरकाशीकी ओर जानेका संकल्प किया । वातावरण अूपरीकोटकी बातोंसे भर गया, और अूपरीकोटका माहात्म्य या दीरात्म्य हरअेकके मुँहसे सुनाओ देने लगा । अेक बोला — ‘अरे भाओ, तुम यहाँ कहाँ आये ? अूपरीकोटको लाँघना क्या कोओ आसान बात है ? जो काबुलकी लड़ाओ और अूपरीकोटकी चढ़ाओ जीतता है वही बहादुर है ।’ आगे चलकर अनुभव भी अैसा ही हुआ ।

यहाँ रास्तेमें हमने पहाड़ी लोगोंका धार्मिक नृत्य देखा । अिन लोगोंके चेहरेकी बनावटमें हिन्दुस्तानी और चीनी ढबका मिश्रण होता है । अुनके चेहरेपर स्वास्थ्य नामकी कोओ चीज़ नज़र ही नहीं आती । अुनका मुँह कुछ अैसा लगता है मानो अेक साथ रोने और हँसनेकी तैयारी करके बैठे हों ! ठण्डी हवाके कारण अुन्हें मोटे अुनी कपड़े पहनने पड़ते हैं । पैरोंमें मोटे-मोटे जूते होते हैं । अुनपर अूपरकी तरफ़ अुनी बेलबूटे बने रहते हैं । सारा स्वाँग बड़ा मजेदार मालूम होता है । वे

लोग अेक मन्दिरके सामने नाच रहे थे । अुनमें बूढ़े भी थे और नौजवान भी । कुछ लोगोंने पहाड़ी पत्थरकी पतली तख्तियाँ पीठपर बाँध ली थीं और वे अुसी हालतमें नाच रहे थे । अुनके अुस नाचमें न तो लास्य था और न ताण्डव ही । फिर भी जब कोअी क्रिया किसी निश्चित नियमके अनुसार बार-बार की जाती है, तो उसमेंसे कोई-न-कोई भाव उत्पन्न होता ही है । जब घबराई हुई भैंसें अेकके पीछे अेक दौड़ने लगती हैं, तो अुन्हें देखनेमें जो मज़ा आता है, कुछ वैसा ही मज़ा इस नाचमें भी आ रहा था । पर मैं तो अुस समय यही सोच रहा था कि अिस नृत्यके मूलमें कौनसी धार्मिक भावना निहित है । और अिन पत्थरोंका प्रयोजन क्या ? मैंने सोचा कि दूर-दूरसे अैसे पत्थर लाकर अुनके साथ नाचने और फिर अुन्हें मन्दिरमें चढ़ा देनेमें कोअी खास पुण्य लगता होगा; क्योंकि अुस मन्दिरका छप्पर पत्थरकी अैसी तख्तियोंका ही बना हुआ था । ये लोग पत्थरोंको चौकोन या लम्ब चौकोन बनानेका ज़रा भी यत्न नहीं करते, — जैसे-तैसे अुन्हें छप्परपर बिछा देते हैं; पर अुनमें अितनी कला ज़रूर होती है कि छप्पर किसी जगह ज़रूरतसे ज़्यादा मोटा या बेडौल नहीं होने पाता । और भीतर पानी या बरफ़का डर बिलकुल नहीं रहता ।

अूपरीकोटकी चढ़ाअीके आरम्भमें ही पैर फिसलने लगे । कहीं कहीं हमें अिस बातका सबूत भी देना पड़ा कि असलमें मनुष्य चौपगा जानवर है । गीली जमीनमेंसे बाहर निकली हुअी जड़ें पकड़-पकड़कर हम अूपर चढ़ पाये । यह जानकर कि आजकी चढ़ाअी मुश्किल होगी, बाबाजीने सबेरे हमें अच्छा खासा नाश्ता करा दिया था । नाश्ता कर चुकनेपर हमने चलना शुरू किया । चलना शुरू किया, कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक सच होगा कि हम रूठे हुअे पहाड़से अनुनय करने लगे । हम कुछ आगे बढ़ गये और हमारे कुली बदस्तूर कुछ पीछे रह गये । अूपर कहीं भी मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान न था । जंगलमें कहीं-कहीं अितने सुन्दर फूल खिले थे कि अुन्हें देखकर सहज ही मनमें यह आशा पैदा हो जाती कि पास ही कहीं किसी ऋषिका कोअी आश्रम होगा । केवल जंगल ही जंगल होता तो अेक ही किस्मके फूल चारों ओर दिखाअी देते । परन्तु यहाँ तो यत्र-तत्र भाँति-भाँतिके फूलोंकी सजावट

नज़र आती थी। कौन सोच सकता था कि यहाँ प्रकृतिमें अड़ाअपनके साथ-साथ खिलाड़ीपन भी होगा? मीलों चलनेपर भी मनुष्योंकी बस्ती तो ठीक, मनुष्य प्राणीका भी दर्शन नहीं होता था। हम तीनोंमें एक बाबाजी ही ऐसे थे, जिन्हें रास्ता भूलनेकी कला हस्तगत हो गयी थी। जहाँ हमें बिना चूके ठीक रास्ता मिल जाता, तहाँ बाबाजी अचूक गलत रास्ते जाकर कहीं भटकते रहते। जंगलमेंसे गुज़रते वक़्त भी अक्सर अन्हींके घुटने या कुहनी पेड़ोंसे टकरा जाती।

आखिर हम अपरीकोटके शिखरपर पहुँचे। जिधर देखिये, बरफ़ ही बरफ़। पानीके अभावमें हम अिस बरफ़को ही थोड़ा तोड़-तोड़कर खाते थे। जिस तरह गुलकन्दमें शकरके दाने या रवे होते हैं, अिस पहाड़ी बरफ़में भी बरफ़के वैसे ही दाने पाये जाते हैं। अिस बरफ़को खानेमें मज़ा तो बहुत आता है, पर प्यास बुझाना अिसका काम नहीं।

ऐसी ज़बरदस्त चढ़ाअी चढ़नेके बाद भूख लग आयी, तो अुसमें बेचारी भूखका कसूर क्या? लेकिन वहाँ खानेका प्रबन्ध भी क्या था? पहाड़की चोटीपरसे चाहे जिस दिशामें निगाह दौड़ाअिये, बादरू या कैरासिंह कहीं दीखते ही न थे। धीरजका मेरा बाँध टूट गया। मैंने कहना शुरू किया, 'ये कुली कहाँ गये? क्या हुअे? कहीं फिसलकर ढेर तो नहीं हो गये?' वगैरा-वगैरा। अुनके भाग जानेकी शंका तो हममेंसे किसीको एक क्षणके लिये भी न हुअी। ये पहाड़ी लोग स्वभावसे भगेडू नहीं होते। और जब सरकारी अधिकारीके सामने कोअी अिकरार हो जाता है, तो कोअी भागनेकी हिम्मत भी नहीं करता। अिन लोगोंपर सरकारकी निगरानी लगभग गुलामोंकी-सी होती है।

शिखरपर एक बड़ी किन्तु कुछ ढलती-सी चट्टान है। अिसलिअे अुसकी आड़में वर्षासे बचनेके लिये थोड़ा सहारा-सा मिल सकता है। जिधरके लोग अुसे गुफा कहते हैं। गिरने-गिरनेको हुअी कोअी दीवाल ज़रा एक तरफ़ झुक जाय तो क्या हम अुसे गुफा कह सकते हैं? पर अिस पहाड़पर यही एक गुफा है, जिसके सहारे मनुष्य आकाशके तोपखानेसे बच जानेकी कुछ आशा रख सकता है।

अिस प्रदेशमें अिस ऋतुमें बादलोंका कार्यक्रम बड़ा नियमित होता है । रातको बादल जहाँ तहाँ घाटियोंमें सोते रहते हैं । आठ-नौ बजे जमुहाइयाँ लेते हुए उठते हैं । धीरे-धीरे फिसलते फिसलते — पर फिसलकर नीचे जानेके बदले वे अूपर अुठते हैं, अिसलिअे अुन्हें तो अुछलते-अुछलते कहना चाहिअे न ? — घाटीकी चोटीपर पहुँचते हैं । फिर मन ही मन अुड़ने या न अुड़नेकी अुधेड़-बुनमें अपना बहुत-सा वक्रत बितानेके बाद अन्तमें पंख फड़कड़ानेकी आवाज़ किये बिना ही अुत्तरकी तरफ चले जाते हैं । सभी अुत्तरकी तरफ जाते हैं, मानो सेना अेकत्र करनेका ‘समय’ वहीं हो । वहाँ सब मिलकर लगभग तीन बजे तक रण-नीतिकी मंत्रणा करते रहते हैं । जहाँ तीन-सवातीनका वक्रत हुआ कि दक्षिणपर अुन ही चढ़ाओ शुरू हो जाती है । जहाँ ज़रूरत मालूम होती है वहाँ बीच-बीचमें थोड़े-थोड़े बादल बरस पड़ते हैं, और नीचेकी सृष्टिको चित कर देते हैं । अूपरवाले बादल विजयके आनन्दमें आगे बढ़ते हैं । अूपरीकोट-जैसे बड़े पहाड़पर बरफके छोटे-छोटे कन या ओले गिरानेसे काम कैसे चले ? वहाँ तो नीच और आमके बराबर बड़े-बड़े ओलोंका ही तोपखाना चलाना चाहिअे । ओलोंका नाम सुनते ही यहाँके पहाड़ी लोग भी काँप अुठते हैं । क्योंकि अेक भी बड़ा-सा ओला कनपटीपर बैठ जाय तो आदमी वहाँका वहाँ ढेर हो जाय । हम अपने छाते कुलियोंको दे रखते थे । सारा दिन भीगते रहना तो अेक अिष्टापत्ति ही थी । यों चलनेसे शरीरमें आओी हुआ गर्मी कुछ कम हो जाती थी । जो कसकर अितना चले और जमकर खाये वह बीमार ही क्यों पड़े ? अलवत्ता रातको ओढ़ने-बिछानेके कपड़े सूखे होने चाहियें, नहीं तो अलावकी शरण लेनी पड़ जाय ।

और फिर अिस पहाड़पर कुली भी छाता खोलनेकी हिम्मत क्यों कर करें ? ओलोंसे छातोंकी छलनी तो हमें बनवानी न थी !

हम गुफाके पास पहुँचे और टकटकी लगाकर चारों तरफ देखने लगे । हमारी चर्चाका अन्त हो गया ; लेकिन हमारे कुलियोंको हमपर दया न आओी । अुनमेंसे अेकने भी हमें दर्शन न दिये । तीन बजनेमें थे । अिसलिअे वहाँ रहनेमें भी खैरियत न थी । अितनेमें दूरसे कुछ

यात्री आते दिखायी दिये । थोड़ी देरमें वे नज़दीक आ पहुँचे । हमें अतनी खुशी हुआ मानो भगवान मिल गये हों । हमारी परेशानी जानकर उन बेचारोंने हमें आटा, नमक, तवा, लकड़ियाँ आदि थोड़ा-थोड़ा सब सामान दिया और कहा — “देखो, पकानेमें ज्यादा देर न लगाना । अभी ओले गिरेंगे । हमारी तो यहाँ रुकनेकी हिम्मत नहीं । हमारे बरतन-भँडे आप लोग हमें नीचेके गाँवमें लौटा देंगे तो भी काम चलेगा ।” वे हमारे जवाबके लिये भी न रहे । बाबाजीने रोटियाँ बनायीं । मैंने या स्वामीने बरफ़ कूटकर पानी तैयार किया । नमककी मददसे या सच वृत्तिये तो भेड़िये-जैसी भूखकी मददसे रोटियाँ जैसे-तैसे निगलीं, और हम पहाड़ उतरने लगे । हमें देर हो गयी थी, असलिये जल्दी उतरना पड़ा । यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि पहाड़से उतरते समय हम तिपाये हो जाते थे । उतारमें एक पैरका उतरना पुसा सकता है मगर हाथकी लाठीका टूटना या उसे भूल जाना पुसा नहीं सकता । ज्योंही हम नीचेवाले गाँवके नज़दीक पहुँचे हमें हमारे हितकर्ता यात्री मिले । हमारी फुर्ती देखकर उन्हें ताज्जुब हुआ । उनमेंसे एकने कहा — “हमारे साथकी एक बुढ़िया पैर फिसलनेसे गिरी और अतनी जोरसे लुढ़की कि हमने उसकी आशा ही छोड़ दी थी । लेकिन सौभाग्यसे नीचेकी तरफ़ एक यात्री खड़ा था । उसने बुढ़ियाको लुढ़कते देखा और अपनी लम्बी लाठीसे उसकी महायात्राको रोका ।” वह साँझ सब लोगोंने इसी एक चर्चामें बितायी ।

जिन लोगोंने पहाड़में अड़चनके मौकेपर हमारी मदद की थी और हमपर अतना विश्वास किया था, वे अमीर नहीं थे, बल्कि उन लोगोंमें थे जो अग्रभर मेहनत-मज़दूरी करनेके बाद मुश्किलसे एक यात्राके लायक पैसा बचा पाते हैं । जिन लोगोंके लिये यह यात्रा प्रकृतिका सौंदर्य देखनेकी सैर नहीं, बल्कि सारे जीवनको सार्थक करनेका एक उपयोग-मात्र था । बहुतेरे गरीब बारह-बारह बरसकी कड़ी मज़दूरीके बाद अपनी शादी कर पाते हैं । कभी ऐसे हैं जो तीस-तीस चालीस-चालीस बरस तक आधा पेट खाकर अपने लिये रहनेका घर बना पाते हैं । इसी तरह परमार्थको परम अर्थ माननेवाले ये भक्त सारे जन्मकी कमायी

अिकष्टी करके अैसी यात्रा करने निकलते हैं । सही-सलामत घर लौटे तो भी क्या, और रास्तेमें ही स्वर्गवासी बन गये तो भी क्या ? सार्थकता दोनों ओर सरीखी है । अैसे लोग निःसंकोच दूसरे यात्रियोंकी मदद करते हैं । अुनके अस त्यागपर किसीको कोअी अचरज नहीं होता । मनुष्यके हृदयमें मानवप्रेम, प्राणिप्रेम विद्यमान है, अिसीलिअे आज मानवोंका अस्तित्व बना हुआ है । पुलिस या फौजसे या अुनके हाथों अमलमें आनेवाले क्रायदे-क्रानूनसे मानव-समाज न कभी टिका है, न टिक सकता है ।

जब हम नीचेके गाँवमें पहुँचे तो वहाँका मन्दिर और धर्मशाला दोनों खचाखच भर चुके थे । आँगनमें भी लोग पड़े हुआे थे, आँगनके आसपास दीवाल थी । दीवालसे लगा हुआ अेक चबूतरा था । अुस चबूतरेको खाली देखकर बाबाजीने बड़ी फुरतीसे अपना विछौना वहाँ विछा दिया । परन्तु अितनेमें वहाँ अेक विघ्न अुपस्थित हो गया । गाँवके लोग अेकदम बाबाजीपर बरस पड़े । हम समझ न सके कि वे क्या कह रहे हैं । कारण ध्यानमें आता न था और धीरजसे कोअी बात न करता था । बाबाजी जहाँके तहाँ हक्के-बक्के-से रह गये । बाबाजीके बरतावमें वाँछित परिवर्तन न देखकर गाँववाले और भी झल्लाये । यात्री बैठे सारा हाल देख रहे थे । आखिर अैसा मालूम होने लगा कि बात मारपीट तक पहुँचेगी । सारे दिनकी थकावटके बाद थोड़ेसे मुष्टि-मोदक अुपयोगी तो होते, परन्तु वे हमारे नसीबमें बदे न थे । असलिअे अेक सज्जनने हमें समझाया कि यह चबूतरा महज़ चबूतरा नहीं है, बल्कि पाण्डवोंके बैठनेकी जगह है ! मैंने अपने ढंगसे लोगोंको समझाया कि अगर बाबाजीको असका पता होता तो वे अुन आदमियोंमें हैं जो चबूतरेका तो ठीक हस्तिनापुरके राजपाटका भी लोभ नहीं करते । प्रसंग जानकर मैंने तुरन्त धर्मात्माका अवतार धारण किया और लोगोंको खूब फटकार सुनाअी — जहाँ पाण्डव निवास करते हैं, वहाँ न तुलसीका क्यारा है, न फूल चढ़े हैं, और न छोटे-छोटे पौधोंकी कोअी बाढ़ ही है, यह कैसी लापरवाही ! हमला करने आये हुआे ग्रामीण गरीब गाय-से बनकर अपने बचावमें कहने लगे — “ हम गाँवके गाँवअी ठहरे, हम यह सब क्या जानें ? ”

अस रात मैंने भोजन नहीं किया । सारी यात्रामें मेरे भूखे रहनेका यही अेक अुदाहरण था । मुझे याद पड़ा कि अस दिन मेरी माताका श्राद्ध था । स्वामीने कहा — “ सुबह अुठकर बहुत चलना है, अभी न खाओगे तो काम कैसे चलेगा ? ” मैंने जवाब दिया — “ कल भी अुत्तरकाशी पहुँचकर ही खाऊँगा ! ” यहाँ मंत्रयुक्त श्राद्ध करनेकी सुविधा न थी, न मेरी वैसी श्रद्धा ही थी । सबेरे जल्दी अुठकर हम चले और कोअी दस मील चलकर अुत्तरकाशी पहुँचे ।

३५

अुत्तरकाशी

हिन्दुस्तानके नक्शेपर सरसरी निगाह दौड़ानेपर भी सहज ही यह ध्यानमें आ सकता है कि गंगा नदीका प्रवाह आरम्भमें अुत्तरसे दक्षिणकी तरफ़ और फिर अधिकांशमें पूर्व और दक्षिण दिशामें ही बहता है । अस अितने लम्बे प्रवाहमें यदि किसी स्थानपर अस नदीकी धारा दक्षिणसे अुत्तरकी ओर बहती है, तो वह अेक आश्चर्यका ही विषय है । अस प्रकारकी अुत्तरवाहिनी गंगा तीन स्थानोंमें है । यह तो हम सब जानते ही हैं कि काशी वाराणसीका माहात्म्य असलिअे है कि वहाँ गंगा अुत्तरवाहिनी है । अुसी प्रकार हिमालय पर्वतमें गंगाजीके प्रवाहको दक्षिणसे अुत्तरकी तरफ़ जाता देखकर हमारे पूर्वजोंको वह नितान्त अद्भुत दृश्य काव्यमय प्रतीत हुआ होगा, असिलिअे अुन्होंने अस स्थानका नाम अुत्तरकाशी रख दिया । अेक बार काशी-क्षेत्रके रूपमें अुसे स्वीकार करनेके बाद तो काशीमें जितने मुख्य-मुख्य देवता हैं अुन सबकी वहाँ भी स्थापना करना क्रमप्राप्त ही था । अुत्तरकाशीमें काशीविश्वनाथ हैं, बिन्दुमाधव हैं, मणिकर्णिका हैं, दत्तात्रेय और परशुराम हैं । जो कुछ काशीमें है वह सब छोटे पैमानेपर अुत्तरकाशीमें मिलना ही चाहिअे । (लाचारी है कि अुत्तरकाशीमें बन्दर नहीं । पर वहाँ जंगली गायें बहुत हैं ।)

अुत्तरकाशी दो पहाड़ोंके बीच अेक विशाल घाटीमें बसी हुअी है । गर्मियोंमें वहाँ बहुतसे साधु रहने हैं । और क्यों न रहें ? जो गृहस्थ है, घरसे बँधा हुआ है, वह मनुष्य होते हुअे भी स्थावर बन जाता है । गर्मी हो या जाड़ा, वर्षाऋतु हो या पतझड़ हो, वह अपना स्थान छोड़ नहीं सकता । आजीविकाके कारण भी अुसे अेक ही स्थानमें घिरे रहना पड़ता है । पर साधु तो अनिकेत, अनागरिक ठहरे । वे भला क्यों बारहों महीने अेक ही जगह पड़े रहने लगे ? दीवालीके अुत्सवपर साधु लोग अमृतसर जाने हैं । जाड़ा हृरीकेशकी गरम घाटीमें धिताते हैं और ग्रीष्मऋतु आते ही गिरि-आरोहण करके अुत्तरकाशी पहुँच जाते हैं । दुनियाका अधिक-से-अधिक आनन्द अमीर और फ़क़ीरके लिअे ही है — फ़क़ अितना ही है कि फ़क़ीरको फ़िकर नहीं होती । गर्मियोंमें अुत्तरकाशीकी हवा अत्यन्त आह्लाददायक होती है । हिमालयकी प्राणदायक वायु, पहाड़ी गेहूँका पौष्टिक आहार, और गंगाजीका अमृत जल । यहाँके साधु चार महीनोंमें अितने लालसुख और मस्त बन जाते हैं कि अेक-अेकका शरीर देखते ही बनता है । ये लोग अन्नसत्रकी बनी-बनाअी रसोअी खाते हैं, आपसमें विभिन्न विषयोंकी चर्चा करते हैं, पहाड़ोंमें यथेच्छ घूमते हैं, और आने-जानेवाले यात्रियोंको आशीर्वाद देते हैं । कभी कोअी चटपटी चीज़ खानेकी अिच्छा हुअी, तो आसपासकी भली पर्वतीय स्त्रियोंसे अुसकी भिक्षा भी मिले बिना रहती नहीं ।

अुत्तरकाशीमें कअी साधु चार-पाँच महीनोंके लिअे अपना अेक कालेज भी खोल देते हैं । प्रकाण्ड-से-प्रकाण्ड विद्वान् संन्यासी यहाँ आकर रहते हैं । विरक्त भावसे वेदान्तकी चर्चा करते हैं । श्रद्धालुको परिश्रमपूर्वक सिखाते हैं, और चिरन्तन शान्तिमें जीवन व्यतीत करते हैं । अजायबघरके साथ जो प्राणि-संग्रह होता है, अुसके बाघों और सिंहोंको जिस प्रकार दर्शकोंका अपुद्रव सहना पड़ता है, अुसी प्रकार यहाँके साधुओंको यात्रियोंका अपुद्रव विवशभावसे सहना पड़ता है । “स्वामीजी महाराज, दर्शन दो’; ‘स्वामीजी महाराज, कुछ अपुदेश सुनाओ’; ‘स्वामीजी महाराज, अितना सुखा मेवा खाओ’; ‘स्वामीजी महाराज, मेरी अिस बहूको आशीर्वाद दो’; ‘स्वामीजी महाराज, नज़दीककी अिस धर्मशाला तक चलकर थोड़ी-सी

भिक्षा ग्रहण करो, भोजन करनेवाले बाट हेरते बैठे हैं'।" अिस तरहकी कोअी-न-कोअी हैरानी अुनके पीछे लगी ही रहती है ।

हमने काली कमलीवालेकी बड़ी धर्मशालामें दो दिन मुकाम किया । धर्मशाला ठीक गंगाजीके किनारे है । पानीमें अुतरनेके लिये सुन्दर घाट बना हुआ है । बाज़ार, डाक-घर सब तरहका सुभीता है । नदीमें खूब अच्छी तरह नहाकर मैं कुछ संन्यासियोंसे बातें करने लगा । बाबाजीने यात्राके लिये कुछ आवश्यक चीज़ें खरीदनेकी व्यवस्था की और स्वामीको यहाँ डाक-घर होनेके कारण अितना आनन्द हुआ कि वे खतपर खत लिखते बैठे । सौझको हम अेक मन्दिरमें अेक साधुके दर्शनोको गये । वे अेक विद्वान् और योगीके नाते विख्यात थे । वहीं महाराष्ट्रके अेक दण्डी संन्यासीसे थोड़ी जान-पहचान हुआ । वे पंढरपुरकी तरफ़के थे । अुन्होंने हम लोगोंसे मराठी बोलनेका यथेच्छ आनन्द लूटा । यहाँ स्थायी रूपसे रहनेवाले संन्यासी कैसे होते हैं, अिसकी विस्तृत जानकारी देना भी वे न चूके । अुन्होंने हमें वहाँकी पहाड़ी भाषाके कुछ चुनिन्दा शब्दोंसे परिचित भी कराया । अिन संन्यासीका शरीर दुबल-पतला था । मुँहसे दाँतोंने स्तीफ़ा दे रखा था । फिर भी वे अपने विनोदी, मसखरे और बातूनी स्वभावका और अपनी हास्यरस-पटुताका परिचय देनेमें ज़रा भी न चूके ।

अुत्तरकाशीमें विश्राम करनेके बाद हम भटवाड़ी गये । भटवाड़ीका पुराना नाम भास्करपुरी है । भास्करसे भट कैसे हो गया, सो हमें कोअी समझा न सका । अेक पहियेके रथमें सात घोड़े जोतकर निरन्तर दौड़ लगानेवाले सूर्यनारायण भट अर्थात् बहादुर हैं, वीर हैं अिसमें शक ही क्या ? भटवाड़ीमें देखने लायक कुछ नहीं था । लेकिन चूँकि हमने अपना पैरज़रूरी सामान यहाँकी अेक दुकानमें रखकर गंगोत्रीके लिये प्रस्थान किया था, अिसलिये यह स्थान ध्यानमें रह गया । गंगोत्रीसे लौटकर भटवाड़ीके रास्ते ही केदारनाथ जाना होता है ।

जैसे ही हम भटवाड़ी छोड़कर आगे बढ़े, सृष्टिने अेकाअेक नितान्त रमणीय स्वरूप धारण कर लिया । अँचे-अँचे पेड़, और लम्बी-लम्बी परन्तु नीचेको झुकी हुई अुनकी डालियाँ; नदीका पाट, और अुसमें

निरन्तर स्नान करनेवाले ऋषितुल्य गोलमटोल पत्थर; सुगन्धित हवा — सभी चीजें सुहावनी और मनभावनी थीं । मुझे कुछ-कुछ याद है कि यहाँसे सत्यनारायण जाते समय हमें अेक बार गंगाजी पार करनी पड़ी थीं । यहाँ पास ही अेक बड़ा प्रपात है । स्वामी और बाबाजीने अुसका सविस्तर वर्णन सुनाया । जाते समय मेरा ध्यान जाने कदाँ चरने चला गया था कि मैं अुसे देख न पाया । लौटते समय भी अुसे देखनेकी बात याद नहीं पड़ती । स्वामीने अुसका वर्णन अितने अुत्साहके साथ किया, कि मुझे वैसे सुन्दर दृश्य देखनेका मौका प्यो देनेके लिये मुँह लटकाकर बैठना पड़ा ।

सत्यनारायणमें अेक पण्डेसे थोड़ी बात-चीत हुअी । अुसने पूछा — “आप लोग कहाँसे आते है ?” हमने कहा — “बम्बअीसे ।” अितनी दूर आनेके बाद अिससे अधिक सूक्ष्म स्थल-निर्देश करनेमें कोअी सार न था । अुसके लिये बम्बअी और बेलगाँव दोनों अेक-से थे । बम्बअीका नाम सुनते ही अुसने पूछा — “वहींसे, जहाँ व्यंकटेश्वर छापखाना है ?” मैंने कहा — “जी हाँ, वहीं से ।” बम्बअीमें दूसरा ऐसा है ही क्या, जिसकी कीर्त्ति यहाँ पहाड़ तक पहुँचे ? मैं व्यंकटेश्वर छापखानेवाले शहरसे आया हूँ यह सुनकर अुसने तुरन्त नम्रतापूर्वक कहा — “वहाँसे मेरे लिये अेक ‘शनि माहात्म्य’ भेजेंगे ?” मैंने मंजूर कर लिया । अुसका नाम और गाँव अपनी नोट बुकमें लिख लिया, और जहाँ तक मुझे याद है, छह या आठ महीने बाद शनि-माहात्म्यकी अेक प्रति कहींसे अुसके पतेपर भेज दी । मेरा खयाल है कि अुस पुस्तकके पहुँचनेके बाद फिर शनि महाराजने अुस पण्डेको किसी प्रकारकी पीड़ा न पहुँचाअी होगी !

सत्यनारायणसे झरा आगे बढ़नेपर ‘गंगानाणी’ नामक अेक चट्टी आअी । यहाँ हमने अेक वृद्ध साधुकी कीर्त्ति सुनी । अिसलिये गंगाजीके अुस पार वहाँ पहुँचे जहाँ गरम पानीका अेक कुण्ड था । झरनेमेंसे चूनेके जो सूक्ष्मकण निकलते हैं अुनके अेक-दूसरेपर जम जानेसे वहाँ अेक सुन्दरसा बमीठा बना हुआ देखा । हिमालयके कुछ प्रवाहोंकी यह अेक खासियत है । अगर पानीमें जड़ों और पत्तोंवाली अेकाध डाली गिर जाय तो धीरे धीरे पानी अुसपर असर करना शुरू कर देता है । पत्ते ज्यो-ज्यो गलते

जाते हैं, त्यों-त्यों अनुपर पानीका असर बढ़ता जाता है । पत्ते और अनुके साथ जुड़े काठके सूक्ष्म कण जैसे-जैसे घुलते जाते हैं, वैसे-वैसे चूनेके सूक्ष्म कण वहाँ उसी आकारमें जम जाते हैं । कोअी छह महीनोंमें उस सारी डालका पुनर्जन्म-सा हो जाता है, और वनस्पतिकी जगह देखनेमें सगमरमर-जैसी नाजूक लेकिन काफ़ी मजबूत अंक डाली तैयार हो जाती है । उसकी कारीगरी देखकर तो ग्रीमके शिल्पकार भी अवाक् ही रह जायँ । सिवा उसकी शकलके असल डालीका और कोअी रूप बाक़ी नहीं रहता । यदि आत्माके अस्तित्वको न मानकर भी पुनर्जन्ममें विश्वासवाले बुद्ध भगवान्‌का ध्यान अिस पर्वतीय चमत्कारकी ओर गया होता, तो दीपकका दृष्टान्त देनेके बदले उन्होंने अिस खनिज, जलज डालीका ही दृष्टान्त दिया होता । (अंक बार लाहौरमें अंक सज्जनके घर अिसी तरहसे बना हुआ अखरोटका अंक फल देखा था । परन्तु उसमें चूनेके बदले लोहेका चूरा था और अिसलिअे वह वजनमें काफ़ी भारी मालूम होता था ।)

यहाँके वृद्ध साधुने स्वामीका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया । जबतक स्वामी उसके साथ बातें करनेमें लगे रहे, मैं चूनेके उस बमीठको देखनेमें रूक रहा । लौटनेपर स्वामीने कहा — “ यह साधु यहाँ तीस सालसे रहता है । ” मुझे अनुकी अिस बातपर सन्देह करनेका कोअी कारण न मिला । फिर भी मनमें विचार आया कि हिमालयमें यात्राके रास्तेपर कअी साधु अिसी तरफ झोंपड़ियाँ बाँधकर रहते हैं । वे आसपासके पहाड़ी लोगोंसे अपने विषयमें बड़ी बड़ी बातें फैला देनेको कहते हैं, और अिस मेहनतके बदले अपनी कमाअीमें अनुका भी कुछ हिस्सा रख लेते हैं । यह भी अैसा ही अंक साधु न होगा, अिसका प्रमाण क्या ? अगर बात अैसी न थी तो ये लोग हमसे आग्रहपूर्वक यह क्यों कहते थे कि पुलके उस पार अुण्ण कुण्डके समीप अंक बड़े भारी साधु रहते हैं ? आप अनुके दर्शनोंके लिअे ज़रूर चलिअे । अंकने तो यहाँ तक कह डाला कि उसके दादा कहा करते थे कि अन्होंने अपने छुटपनमें भी अिन साधुको यहीं रहते देखा था । साधु महाराजकी अुम्र जितनी अनु दिनों लगती थी अुतनी ही आज भी लगती है । जिस प्रकार समाचार-पत्रोंमें छपनेवाली कुछ घटनाओंके वर्णन सदा अंक-से होते हैं, उसी

प्रकार जंगलमें रहनेवाले योगियोंके विषयमें अिस तरहकी बातें सब जगह अेक ही रूपमें सुनी जाती हैं । कोअी कहेगा कि रोज़ नअी-नअी बातें सुननेकी अपेक्षा अेक सर्वमान्य वर्णन सुननेमें अधिक सुविधा नहीं है ? जिस तरह रेलवे लाइनपर तमाम स्टेशनोंकी बनावट अेक-सी होती है, अुसी तरह साधुओंके चमत्कार भी प्रायः अेक-से होते हैं ।

नीचेवाली गंगानाणीसे लगा हुआ अेक छोटा-सा प्रपात है । वहाँ पानी वेगसे गिर रहा था, फिर भी हम अुसमें नहानेके अपने लोभको रोक न सके । हिम्मत करके ज्यों ही हम प्रपातके नीचे पहुँचे तो पानीकी टॉकियोंकी चोटें सिरपर तड़ातड़ बरसने लगीं । स्वामीको पाठशालाके अपने दिन याद आ गये । “ नहीं गुरुजी, मारिये नहीं, फिर अैसा कभी न करूँगा । ” अिस तरह वे हँसते-हँसते चिरोरी करने लगे । अुस समयसे हमने अपनी बात-चीतमें अुस प्रपातका नाम ‘ नहीं गुरुजी प्रपात ’ रख दिया ।

वहाँसे आगेका प्रदेश खास गंगोत्रीके आसपासका प्रदेश कहा जा सकता है । रास्तेमें लकड़ीका बना हुआ अेक घर देखा । अिस तरफ़ सरकारी बँगले और निजी घर काठके पट्टियोंके बने होते हैं । अुनमें चीड़के गोंदकी धूपकी-सी सुगन्ध सर्वत्र फैली रहती है; क्योंकि ये पट्टिये चीड़ या देवदारके बड़े-से-बड़े तने चीरकर ही तैयार किये जाते हैं ।

अिसी प्रदेशमें मैंने पहले-पहल बनगाय देखी । बनगायको यहाँ याक अथवा शब्बू कहते हैं । अिस बनगायका मालिक भोटिया अपनी गायकी अपेक्षा ज़रा भी सभ्य नहीं दिखाअी देता । अन्तर केवल अितना ही है कि गायें आगे-आगे चलती हैं और ये भोटिये अनुयायी बनकर अुनके पीछे-पीछे चलते हैं । बनगायें देखनेमें बहुत भली होती हैं । अुनके सींग कुछ आगेको निकले होते हैं । सींगोंके बीचसे होकर माथेपर बालोंका अेक गुच्छा-सा लटकता रहता है । अिनका अैसा ही चित्र मेरी दृष्टिमें समा गया है । यहाँ अिन बनगायोंका घी बहुत सस्ता मिलता है । परन्तु कभी-कभी अुसमें बनगायोंके बाल मिले होते हैं । अिसलिअे गरम करके छाने बिना अुसे अुपयोगमें लानेकी अिच्छा नहीं होती । अिस प्रदेशके आलू भी काफ़ी बड़े और स्वादिष्ट होते हैं । अिधर गेहूँकी रोटी और आलूकी तरकारी ही कअी दिनों तक हमारी खुराक रही ।

गंगोत्री

बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और जमनोत्री अिन चार धामोंमें हरअेककी अपनी अपनी विशेषता है । बदरीनारायण अपने वैभवसे हमें आकर्षित करते हैं । केदारनाथके वातावरणमें वैराग्य विशेष रूपसे पाया जाता है । जमनोत्रीकी भव्यता हमारे हृदयपर अमिट छाप डालती है । और गंगोत्री तो हमें अपनी पवित्रतामें विलकुल ही डुबो देती है ।

गंगोत्री जाते हुअे स्वामीने रास्तेमें पड़े अेक साँपको अपनी लम्बी लकड़ीसे अुठाकर नीचेकी घाटीमें फेंक दिया । वह घबराया हुआ साँप हवामें अपने शरीरको अँठता हुआ नीचेको गिर रहा था । अुस वक़्त वह छुटपनमें बाज़ारसे खरीदे हुअे हरे साँप-सा दिखाअी देता था । अुस समय मेरे मनमें कुछ अैसे ही विचार आये । परन्तु गंगोत्री पहुँचते ही अिस तरहके सारे विचार काफ़ूर हो गये । अब विचार-क्षेत्रमें प्राचीन राजर्षि और महर्षि प्रविष्ट होने लगे । भारत-सम्राट भगीरथ और धर्म-सम्राट श्री शंकराचार्यका स्मरण तो बिना हुअे रहता कैसे ? महाराज भगीरथको अुत्तराधिकारमें यह अेक संकल्प प्राप्त हुआ था कि पूर्वभारतके अंगव्रंगादि समतल-प्रदेशपर पानीकी विपुलता पैदा करके करोड़ों मनुष्योंको करोड़ों वर्षों तक अन्नदान किस प्रकार कराया जाय । अिसी संकल्पका सेवन करता हुआ राजा भगीरथ अिस पहाड़ीपर मारा-मारा फिरता और हिमालयके प्रवाहोंकी पैमाअिश करता था । आज अिनमेंसे कअी पहाड़ियाँ माताके सिद्धपीठके रूपमें प्रख्यात हैं । अिन सिद्धपीठोंपर की हुअी किसीकी भी तपस्या आज तक ब्यर्थ नहीं हुअी ।

और जब शंकराचार्यने चारों तरफ़ दिग्विजय करके दक्षिणके धर्मनिष्ठ, संस्कार-सम्पन्न, ब्राह्मण कुटुम्बोंको यहाँ लाकर बसाया, अुस समय अुनके मनमें क्या-क्या संकल्प रहे होंगे ? हिमालयके अिन शिखरोंपरसे दक्षिण और अुत्तर दोनों दिशाओंमें, और भारत व तिब्बत दोनों देशोंमें, धर्म-प्रवाह प्रवाहित कर अद्वैतके जीवन-सिद्धान्तकी और सवैक्यके हृदय-धर्मकी लहर

फैला देनेका संकल्प उन्होंने भी यहाँ रहकर किया होगा । अन्हींके पूर्व अवतारस्वरूप गौतम बुद्धने जो धर्म-प्रेरणा प्रचारित की थी, उसकी लहरें हिमालयके उस पार शंकराचार्यके समयसे पहले ही पहुँच चुकी थीं । शंकराचार्यने बुद्धके उपदेशपर आस्तिक्यका पुट देकर उसे राष्ट्रीय बनाया था । शंकराचार्यको प्रछन्न बौद्ध कहकर उनके विरोधियोंने उनकी निन्दा करनेके बदले वास्तवमें उनके कार्यकी परम्परा और महता ही बतलाई है । गंगोत्रीमें गंगामैयाका मन्दिर अतना छोटा है, मानो किसी तपःपूत ऋषिकी आद्य-प्रेरणा या धर्म-स्फुरणा हो !

मुझे हिमालयमें शक्तिरूपिणी जगन्माताकी अुपासना करनी थी । वहाँ रहनेवाले एक बंगाली साधुसे मैंने अुपासनाकी विधि पूछी । जहाँ तक मुझे स्मरण है, उस साधुका नाम श्यामभारती या श्यामाभारती ऐसा कुछ था । उसने मुझसे मेरा अुद्देश्य पूछ लिया, और तुरन्त जवाब दिया — “भाअी, तुम मेरे शिष्य नहीं हो । भला, मैं तुम्हें वह विधि कैसे बतलाऊँ ? तुम अपने गुरुसे ही पूछो ।” कुछ लोगोंको अिस जवाबमें साम्प्रदायिक संकीर्णताकी बू आयेगी । मुझे वैसा न लगा । मुझे मालूम था कि हमारे धर्ममें गुरु-परम्पराके द्वारा ही निष्ठा और अेकाग्रताका परिपोष हुआ है । विविधता जिसका सनातन स्वरूप है, अैसे अिस संसारमें स्वधर्म-निष्ठाका तत्त्व न हो, तो एक भी संघ काशी नहीं पहुँच पाये । जिस प्रकार कौटुम्बिक जीवनमें निष्ठा ही प्राणरूप है, अुसी प्रकार धार्मिक जीवनमें निष्ठाका अपना खास महत्त्व है । मुझे अिस बातका ध्यान था, अिसलिअे अुस संन्यासीके जवाबसे संतोष ही हुआ ।

तीर्थक्षेत्रका नियम है कि वहाँ खाली पेट जाओ और वहाँसे भरे पेट निकलो । हम भी अिस नियमका विधिवत् पालन करते थे ।

धधकते हुअे अंगारोंपरसे चलनेमें मनुष्यकी जैसी कसौटी होती है, वैसी ही यहाँ पिघली हुअी बरफ़के पानीमें नहाते समय होती है । फिर भी गंगोत्री पहुँचकर वहाँ विना नहाये रहना सम्भव कैसे था ? कॉलेजके एक साथीने ‘बाथ’ अर्थात् स्नानकी एक विनोदी परिभाषा बतलाई थी ‘सकल गात्राद्रीकरणं बाथः’ । नहानेका शरीरशुद्धिसे अथवा मलापहरणसे कोअी सम्बन्ध नहीं है । समूचा शरीर भिगो लेनेसे स्नान

सम्पन्न हो जाता है। हम वहाँ इस परिभाषाके अनुसार ही नहाये और पानीमेंसे जीवित बाहर निकले। अवरक और अत्यन्त महीन बालूके कारण पानी गँदला था। जिस जगह मैं नहाया वहाँ पानी बहुत गहरा नहीं था, इसलिये मुझे सिर डुबानेके लिये पानीमें डुबकी लगानी पड़ी। मुझे क्या पता कि मेरे सिरके पास ही पानीमें एक प्राचीन गोल पत्थर ध्यानस्थ बैठा है! हम दोनोंके मध्ये प्रेमसे और सख्तीसे एक-दूसरेके साथ टकराये। आवाज़ भी हुई, लेकिन सिरके भीतर वेदना पहुँचनेके लायक चैतन्य कहाँ रह गया था? मेरा शरीर बधिर हो गया था। मैं उसी अवस्थामें दौड़ता हुआ पानीसे बाहर निकला और धूनीके पास जाकर हाथ तपानेके बाद ही गीले कपड़े निचोड़ सका। दूसरे दिन जब मध्येपर उस ध्यानस्थ मित्रकी छोटी-सी प्रतिकृति अुठी हुई दिखायी दी, तभी इस बातका प्रदर्शन हुआ कि मेरा और उसका मिलन कितना प्रेमपूर्ण हुआ था!

यहाँ हम तीन दिन ठहरे। दुर्गा सप्तशती, गीता, तुकारामके अभंग, रामदासका मनोबोध और अीश-कठ आदि उपनिषदोंके पठनमें ही हमारा समय बीता। यहाँसे गोमुख सिर्फ बारह या अठारह मील है। वहाँ जाने न-जानेके बारेमें हमारे बीच बहुत-कुछ चर्चा हुई। कुछ पहले आये होते, तो गंगाजीके जमे हुअे पाटपरसे ही सुगमतापूर्वक गोमुख पहुँच जाते। जनश्रुति तो ऐसी है कि गोमुखमें आज भी आकाशसे गंगाजी गिरती हैं। शायद वहाँ नित्य होनेवाली रिम-झिम रिम-झिम वर्षाको ही यात्री इस रूपमें समझ लेते होंगे। अन्यथा वहाँ तो अखण्ड बरफ़का खजाना ही है, और कुछ नहीं। पण्डे लोग कहने लगे, “यदि कुछ कुलियोंको कुल्हाड़ी और लकड़ियोंके साथ ले लिया जाय, तो नदीके किनारे-किनारे गोमुख तक जाया जा सकता है। अधर अधरसे आकर गंगाजीमें मिलनेवाले छोटे-छोटे प्रवाह रास्ता काटें, तो लकड़ीके काम चलाओ पुल बनाकर आगे जा सकते हैं। लौटते समय ये पुल अपनी जगहपर होंगे ही, इसका कोअी ठिकाना नहीं। इसलिये दोहरी तैयारी रखनी पड़ती है।” पण्डोंने हमें बतलाया कि गंगोत्रीसे गोमुख तककी भूमि अितनी पवित्र है कि यात्रीको वहाँ मल-मूत्र विसर्जन किये बिना ही हो अगना चाहिये।

शंकराचार्यकी ऐसी ही आशा है । हम अपने साथ टेहरीके हाकिमकी सफारिश ले गये थे । उसका एक विचित्र परिणाम हुआ । हमें नाराज़ करते पण्डोंको डर लगता था, लेकिन साथ ही वे हमसे विशेष द्रव्य पानेकी आशा भी नहीं रख सकते थे । असलिये अपूर अपूरसे तो वे यह जतलाते थे कि उनमें पूरा अतृप्तता है, वे खुद हमारे लिये सारी सुविधायें कर देनेको तैयार हैं; पर साथ ही, सारी बातें इस तरह हमारे सामने रखते थे कि आगे जानेकी हमें अच्छा न हो । मुझे शाकुन्तलका वह प्रसंग याद आया, जहाँ मृगया-प्रेमी दुष्यन्तके विरुद्ध सेनापति और विद्रुपकने आपसमें सलाह की थी । बहुत मोच-विचारके बाद स्वामीने आगे जानेका विचार छोड़ देनेका सुझाव रखा । मुझे वह अखरा नहीं । उस समय तक जो कुछ देख लिया था, वही अतना अधिक भव्य, विविध और विशाल था कि और नये दृश्य देखनेकी खास उत्सुकता रही नहीं थी । जानेका फैसला होता तो हर तरहके कष्ट और संकट झेलनेके लिये मैं तत्पर था । परन्तु ऐसा न लगा कि जाना न हुआ तो जीवनके किसी बड़े भारी लाभसे वंचित रह जाना होगा । चित्तमें कोई विषाद न रहा । यदि मनुष्य शास्त्र-शुद्ध अुदासीनताका विकास कर ले, तो वह योगीकी 'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।' स्थितिको स्थूल रूपसे अवश्य दिखा सकता है ।

गोमुख न गया, असका तो मुझे जरा भी दुःख न हुआ । परन्तु गंगोत्रीको छोड़ते समय चित्तवृत्ति स्वस्थ कैसे रहती ? जिस तरह घरसे कॉलेजके लिये विदा होते समय हृदय भर आता था, वैसा ही गंगोत्री छोड़ते समय हुआ । न जाने कितने — शायद अनगिनत — हिन्दू पूर्वज भावभक्तिसे यहाँ आये होंगे, और गंगामैयासे स्थायी शान्ति तथा पवित्रताका प्रसाद पाकर लौटे होंगे ! और उनमेंसे कवियोंने तो यहाँ आनेपर फिर वापस जानेका विचार ही छोड़ दिया होगा । सचमुच गंगाजी भारतवासियोंकी मैया ही है, और उनकी गोदमें हरएकको जीवनकी शान्ति मिलती ही है ।

बुढ़ा केदार

गंगोत्रीसे हमने गंगाजलका अक लोटा भर लिया । पण्डोंने उसे चपड़ेकी मुहर लगाकर हमें यात्राका सुफल दिया । हम लौटे । रास्तेमें प्रत्येक यात्रीके हाथमें गंगाजलका अक अक लोटा था ही । यह पवित्र जल अनेक प्रान्तोंके अनेक घरों और झोपड़ोंमें पहुँचेगा । पश्चात्तापसे जलते हुअे कअी पापियोंको यह जल परमात्माकी क्षमाका आश्वासन देगा । मृत्यु-शय्यापर पड़े हुअे कअी वृद्धोंको यह जल मरण-कालकी शान्ति प्रदान करेगा ।

और कुछ साधु तो यहाँके गंगाजलको सेतुबन्ध रामेश्वर तक पहुँचाकर और रामेश्वरकी बालू गंगोत्रीमें डालकर सारे भारतवर्षको धर्मबन्धनसे उसी प्रकार बुन डालते हैं, जिस प्रकार हम निवारसे खाट बुनते हैं । चार धामोंकी यात्रा हमारी धार्मिक बुनावट है । अस प्रकार देश और समाज अक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जाते हैं ।

वापस भटवाड़ी आकर हमने केदारका रास्ता लिया । यह रास्ता हिमालयमें भी अत्यन्त जंगली और भयानक माना जाता है । बीस-बीस मील तक किसो गाँव या मनुष्यके दर्शन नहीं होते । वृक्ष अितने घने और ऊँचे हैं कि दोपहरमें भी वहाँ क़रीब-क़रीब अँधेरा-सा रहता है । बारिशके कारण नीचेकी ज़मीन कुछ भीगी हुआ होती है । असलिये ज़मीनपर पेड़ोंकी जड़ोंका अक जाल-सा बिछा हुआ दिखायी देता है । रातके समय ये जड़ें जानकी गाहक सिद्ध होती हैं । क्योंकि अनिमें पैर अुलझते ही मनुष्य ठोकर खा जाता है । परन्तु अैसे अरण्यमें रातके समय कोअी जायेगा ही क्यों ? अगर पहाड़की बेंडी चढ़ाअीमें अनि जड़ोंका सहारा न मिलता, तो कहीं-कहीं तो आगे चढ़ना ही असम्भव हो जाता । बीच-बीचमें पड़े हुअे सूखे पत्तोंके ढेर अस जंगलको और भी भयावना बना देते हैं । किसी-किसी स्थानपर, जहाँ चढ़ाअी सख्त नहीं होती और झाड़-झंखाड़ भी अुतने ज़यादा नहीं होते, बड़े रमणीय दृश्य देखनेको मिलते हैं ।

जहाँ तक नज़र दौड़ाअये रंग-विरंगे फूल ही फूल दिखाभी देते हैं ।
 ऐसा मालूम होता था, मानो किसी शौकीन मनुष्यके बँगलेके बगीचेमें
 घूम रहे हों; और यह कि ज़रा आगे बढ़नेपर उसका बँगला भी नज़र
 आयेगा । पर सबेरेसे शाम तक सारे दिनमें कहीं न तो गाँव मिलता था
 न मकान, और न मनुष्य या जानवर ही । निर्जनता कितनी भीषण हो
 सकती है, इसकी कुछ कल्पना यहीं आती । निर्जन प्रदेशमें विविध
 रंगोंवाले फूलोंका यह भूमि-भाग किसी अलौकिक परिस्तान-जैसा मालूम
 होता था ।

जहाँ मनुष्यका मुँह तक देखना दूर था, वहाँ ठीक रास्ता किससे
 पृच्छते ? संकटमें सृष्टि पैदा होती है । हमने देखा कि इस रास्तेसे जाते
 हुआ यात्रियोंने अपने फटे हुआ जूते अधर-अधर फेंके हैं । अगर पाव
 घण्टे या आध घण्टे तक बीचमें कहीं फटे हुआ जूते न मिले, तो तुरन्त
 शक होता था कि ज़रूर रास्ता भूल गये ! जंगलके यात्री हाथमें कुल्हाड़ी
 लेकर पेड़ोंके तनोंपर उसके निशान बनाते चलते हैं, ताकि वे फिर उसी
 रास्ते लौट सकें । हमारी युक्ति इससे भी बढ़कर थी । क्योंकि हमें
 उसी रास्तेका अनुसरण करना था, जिससे हमसे पहलेके यात्री गये थे ।
 आगे चलकर जब हमारे जूते विलकुल घिस गये, तो स्वामीने एक दिन
 अपने एक जूतेको रास्तेमें रखसत दी और उसकी जगह किसी दूसरे
 अच्छे-से लावारिस जूतेसे काम लिया । दो-चार दिनके बाद जब वह दूसरा
 जूता भी अपने साथीके विरहसे व्याकुल हो उठा, तो उसे भी हिमालयमें
 रहनेका पुण्य प्रदान करके स्वामीने उसके बदलेमें रास्तेसे दूसरा एक
 बेजोड़ जोड़ा उठाकर पहन लिया । ये दोनों जूते एक ही बनावट या
 एक ही प्रान्तके तो कैसे हो सकते थे ?

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।

समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः ॥

शामको हम छुआचट्टीमें पहुँचे । इसी रास्तेपर, मगर याद
 नहीं पड़ता कि कहाँसे, स्वामी और बाबाजी आगे निकल गये थे । मैं
 अकेला पीछे रह गया । अँधेरा होने लगा । मैं इस चिन्तामें था कि

अब रास्ता कैसे मिलेगा, अतनेमें कुछ यात्री पीछेसे आये। ऐसे स्थानमें यों अचानक मनुष्यके दर्शन पाकर कितना आनन्द होता है, इसकी कल्पना बिना अनुभवके सम्भव नहीं। हम अपनी तत्काल गद्दी हुआी राष्ट्रभाषामें बातें करते जा रहे थे। अतनेमें अकाअक अक आदमी चिल्ला अुठा — “अरे भालू, भालू, भालू !” मैं चकित-सा होकर यह देखने लगा कि ऐसे जंगलमें रीछ कहाँसे आया ? परन्तु सब लोग चिल्ला-चिल्ल कर भालूके पीछे दौड़ने लगे। फलतः मैं ‘अुस भालू’ के दर्शनसे वंचित ही रहा। जब हम अपनी चट्टीमें पहुँचे, तो बाबाने हमारे लिअे हल्दी डालकर गरम दूध तैयार रखा था, क्योंकि अुस दिन मेरा गला साफ़ नहीं था, मुझे सर्दी हानेका डर था। यात्रामें अिस तरहके सादे अणाय काफ़ी गुणकारी सिद्ध होते हैं।

गंगोत्रीसे केदार जानेवाले रास्तेपर वृद्ध केदार अथवा वृद्धा केदार पड़ता है। अेक बड़ा-सा अुतार अुतरकर साँझको हम वहाँ पहुँचे। रास्ता अितना खराब था और बारिशने हमको अिस क्रदर हैरान किया था कि मुकामपर पहुँचनेके बाद मैंने तो मन्दिर जानेसे अिन्कार कर दिया। अपने मनको यह कहकर समझा लिया कि साथियोंका भगवानके दर्शन कर लेना काफ़ी है। यहाँकी धर्मशालामें अुत्तरकी तरफ़के कुछ महाराष्ट्रीय हमें मिले। अेक वृद्धा बोलनेमें बड़ी संस्कारी मालूम हुआी। अुसने हमसे कअी प्रश्न पूछे। स्वामी-जैसा जवान छोकरा माँ-बापको छोड़कर और सगे सम्बन्धियोंको भूलकर, अिस तरह जंगल-जंगल भटकता है, यह देख वृद्धाका हृदय भर आया, और अुसने मुक्त कण्ठसे सदन किया। ‘अरे, तुम लोग कैसे निष्ठुर हो ! तुम्हारे माँ-बाप पर क्या गुजरती होगी ? तुम्हारे भाअी-बहनको कैसे अुदासी-सी लगती होगी ? ऐसे जंगलोंमें अपनी कायाको निचोड़कर आखिर तुम्हें मिलेगा क्या ?’ ऐसे अनेक सवाल अुस बेचारीने पूछे।

अपना अेक हमेशाका अनुभव भी यहीं सुना दूँ। हमारे देशमें व्यर्थकी कुतूहल वृत्ति बहुत है। चाहे पैदल चलते हों या रेलगाड़ीमें, ज्यों ही किसीका साथ हुआ, अेक-दूसरेकी सारी कुल-कथा पूछे बिना हमें चैन नहीं पड़ता। और, कहनेवाला भी विस्तारपूर्वक कहते नहीं थकता, मानो जनम-जनमका कोअी साथी मिल गया हो ! मेरे चश्मेसे लोगोंको सहज ही यह अनुमान होता कि मैं कोअी पढ़ा-लिखा आदमी हूँ, अिसलिअे

लोग प्रायः पूछते — “कहाँ तक पढ़े हो ?” अगर कह दूँ कि “कॉलेजकी पढ़ाई खतम कर चुका हूँ”, तो फिर क्या पूछना था ? “तुमने नौकरी क्यों नहीं की ? वकील होनेकी तैयारी क्यों नहीं की ? अंग्रेजी पढ़नेपर भी तीर्थ-यात्रामें श्रद्धा कैसे बनी रही ?” आदि-आदि सारी बातें पूछ ली जातीं । बादमें सवाल होता — “घरमें कौन-कौन हैं ?” भाँजियोंकी बात करूँ, तो फिर हरअेक क्या करता है, इसकी तफ़सील पेश करनी होती । ‘ब्याह हुआ है या नहीं ?’ यह तो कुतूहलका मुख्य प्रश्न होता । यदि ‘नहीं’ कहूँ, तो पूछते — “यह वैराग्य छुटपनसे ही था, या इसका कोअी खास कारण हुआ ?” और यदि कहूँ कि “विवाहित हूँ,” तो ज़रूर सवाल होता कि — “स्त्री जीवित है या नहीं ?” अगर सही उत्तर देकर कहता हूँ कि “जीवित है”, तो अनेक असुविधाजनक प्रश्नोंकी झड़ी लग जाती, और स्त्रीके जीते जी पुरुषको साधु होनेका अधिकार है या नहीं, इसपर अेक लम्बा शास्त्रार्थ छिड़ जाता । हर राज़ इस तरहका अिक्रार करते रहनेकी मेरी तैयारी न थी । और अपने रखे व्यवहारसे मनुष्यका दिल तोड़ देना यात्रामें अच्छा नहीं लगता । इसलिये मैंने हिम्मत करके झूठ बोलनेका निश्चय किया । किसीके ज़्यादा कुछ पूछने से पहले ही मैं ठण्डी साँस लेकर कह देता — “स्त्री बड़ी अच्छी थी, लेकिन वह जाती रही, इसलिये बच्चे भाँजीको सौंपकर मैं इस वनवास का सेवन कर रहा हूँ ।” मैं जानता हूँ कि अैसे असत्य कथनके लिये कानूनमें कोअी सज़ा नहीं है, लेकिन धर्मशास्त्र अितनी आसानीसे माफ़ करेगा ही, इसका मुझे विश्वास नहीं है ।

लोगोंकी अैसी अतिरिक्त जिज्ञासासे अकुलानेके कारण मैं स्वयं भी किसीसे अधिक प्रश्न पूछनेसे डरता हूँ । क्योंकि मैं सोचता हूँ, कहीं यह भी मेरी तरह तंग आकर झूठ बोलने लगे तो उसका पाप मेरे मत्थे चढ़ेगा । कभी-कभी जब कोअी बहुत सारे प्रश्न पूछने लगता है, तो मैं दिक्र आकर कह देता हूँ — “भाँजी, अब बहुत हो गया । अगर अधिक पूछोगे, तो फिर झूठा जवाब दे दूँगा ।” झूठ बोलनेकी अपेक्षा झूठ बोलनेका डर दिखाना अधिक अच्छा अुपाय है । बादमें सच्चा जवाब देनेपर भी पूछनेवालेको विश्वास तो होगा ही नहीं ।

यदि कोअी मुझसे पूछे कि मार्गमें मिलनेवाला बेचारा अेकाध यात्री निःस्वार्थ भावसे, और मानव-सहज समभावसे कुछ सवाल पूछता है तो उसमें बुराअी क्या है ? तो मेरे पास असका कोअी जवाब नहीं । यात्रियोंके दस-पाँच सवालोक़ा जवाब देते देते तंग आ जानेवाला मैं आज सारी यात्राका अितना लम्बा-चौड़ा वर्णन कैसे लिखने लगा, यह प्रश्न मेरे मनमें अुठता है । लेकिन असका भी कोअी जवाब मेरे पास नहीं ।

मालूम होता है कि साहित्य और जीवनमें कट्टर बैर है । सेकण्ड क्लासमें बैठा हुआ अंग्रेज़ अपने पास बैठे दूसरे यात्रीसे बातचीत करके उसकी जीवन-कथा जाननेके बदले रुपया-दो-रुपया खर्च कर अेकाध अपन्यास या कहानी पढ़नेमें समय बिताना पसन्द करता है । आखिर अपन्यासमें भी तो कोअी काल्पनिक जीवन कथा ही होती है । यात्राका वर्णन मैं अपनी सुविधासे लिखता हूँ । पर जब कोअी सवाल पूछता है, तो मुझे बन्धनमें पड़ना होता है । और, जब अेक ही सवाल कअी लोग बार-बार पूछते हैं, तब तो धीरजका बाँध टूट जाता है । फिर भी, हमें भूलना न चाहिये कि निरक्षर समाजमें साहित्य और शिक्षाकी बहुत-सी आवश्यकता सम्भाषणसे ही पूरी होती है ।

अुसी धर्मशालामें दूसरे दिन बूढ़े केदारका अेक ब्राह्मण हमसे मिलने आया । हमें पढ़ा-लिखा पाकर वह हमसे अपने लड़केकी परीक्षा लिवानेके लिये अुसे अपने साथ ले आया । लड़का कोअी चौदह-पन्द्रह सालका था । पिताने कहा — “ आजकल यह तर्क-संग्रह पढ़ रहा है । ” कॉलेजमें मैंने अिण्टरमें तर्कशास्त्र पढ़ा था । असलिअे अस चौदह-पन्द्रह वर्षके लड़केको तर्क सीखते देख मुझे आश्चर्य हुआ । मैंने अुससे अेक सहज प्रश्न पूछा । प्रश्न सुनते ही लड़केने अुस प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाला समुच्चा प्रकरण मुखाग्र सुना दिया । बादमें अुसी प्रकरणकी टीका भी वह चटसे बोल गया । जिस तरह कोअी शास्त्री समझता है, अुसी तरह अुचित स्थानपर रुककर, शब्दोंका सम्बन्ध-सा बतलाते हुअे, वैसे ही लहजेमें अुसने अपनी बात कही । लेकिन बेचारा अुसमेंसे अेक ‘ब्रह्माक्षर’ भी समझता न था । मैंने अुस पितामें कहा — “ तर्क तो बुद्धिका विषय है । व्याकरणसे भी कठिन है । व्याकरणका सम्बन्ध भाषासे है, जब कि तर्क तो

विचारशुद्धिका विषय है। इसमें कोरे रटनसे कैसे काम चलेगा ? ” पिताने भोले भावसे जवाब दिया — “ यदि इस अनुभवमें रट लिया जाय, तो बड़ेपनमें तकलीफ़ कम होगी, और भूल होनेका अँदेशा तो ज़रा भी न रहेगा । ”

शिक्षण-शास्त्रपर बहुत कुछ सोचनेपर भी यह निर्णय नहीं हो पाया कि रटनेकी प्रथा बिल्कुल अुठा देने लायक है। हाँ, यह सच है कि रटन्त विद्याका दुरुपयोग बहुत होता है। लेकिन यदि उसका उचित रूपसे अपुयोग हो, तो उसके कारण बुद्धिके विकासमें रुकावट नहीं होनी चाहिये। जब छापखाने नहीं थे, और सब-कुछ लिखकर उसकी रक्षा करनेकी मेहनतसे बचनेका सवाल अेक भारी सवाल था, उस समय यदि स्वावलम्बी मनुष्य अपने अध्ययनकी पूँजीको नित्य ताज़ा और तैयार रखनेके लिये बहुत-कुछ कण्ठाग्र कर लेता था, तो इसमें आश्चर्यकी कोअी बात न थी, बल्कि इसीमें शक्तिका संग्रह था। आज भी यह लाभ छोड़ देने योग्य नहीं है।

दूसरे दिन हम अेकाध मील ही गये होंगे कि पहले दिनकी बारिशके कारण लथपथ मेरे जूतेने हड़ताल कर दी। हड़ताल ही नहीं, अिस्तीफ़ा तक दे दिया। मैंने अपने साथ अहमदाबादी जूतोंकी अेक जोड़ी ज़्यादा रख ली थी। अब तककी यात्रामें वह मुझपर सवार होकर चलती रही। अब मैं उसपर सवार हुआ। लेकिन वे जूने मेरे छोटे पैरोंके लिये भी ओछे निकले। अुन्हें पहनकर चलनेमें मेरे पैरोंकी वैसी ही दुर्दशा होनी शुरू हुअी, जैसी चीन देशमें वहाँकी ललनाओंके पैरोंकी होती है। इसलिये मैं अुन जूतोंको पहले पानीमें अच्छी तरह भिगो लेता और फिर पहनता। भीगा हुआ चमड़ा दीन बनकर मेरे पैरका आकार ग्रहण कर लिया करता। लेकिन ज़रा सूखते ही वह दुगना व़ैर भँजाने लगता। सौ-सवा-सौ मील तक अैसी ही हैरानी व परेशानी रही। मेरा दुःख जानकर स्वामीने अपने पासके दक्षिणी जूते मुझे दिये। वे लाल जूते जंगलमें शोभा देते, और यात्रियोंका ध्यान आकर्षित करते थे। अुनकी सामनेवाली गोल बाजू तो ठोकरके लिये अेक अकसीर दवा ही थी। परन्तु हिमालयके रास्तेपर यह जूता पैरमें ठहरे कैसे ! अथवा अधिक ठीक भाषामें कहूँ, तब तो

कहना होगा कि जूतेमें पैर कैसे ठहरें ! पैर घिसता गया, और तलुआमें छाले पड़ गये । अंक भी जूता पहना नहीं जाता था । अगर नंगे पैर चलता, तो रास्तेपर नहा-धोकर तैयार पड़े हुअे कंकर-पत्थर बिच्छूके डंककी तरह अपना प्रताप दिखलाये बिना मानते न थे ।

रास्ते भर पैरके दर्दका ही ध्यान रहता था । अैसे जंगलमें आरामके लिअे कहीं ठहरनेका खयाल आता, तो कैसे आता ? जैसे-तैसे आगे बढ़ते रहे । परन्तु रास्तेमें क्या-क्या देखा, असका कोअी होंश न रहा ।

३८

भोटचट्टी

अेक जगह सधेरे ज्योंही आगेके लिअे खाना हुअे, सामने शामके मुकामकी चट्टी नज़र आयी । मनमें शंका अुठी — अितनीसी दूरीके लिअे अेक पूरा दिन कैसे लग जायगा ? मैंने कहा — “ अरे, अस सामनेवाले पहाड़के शिखरपर जो मचान-सा कुछ दिखाअी देता है, वहाँ तक पहुँचनेमें देर ही कितनी लगेगी ! क्या अस छोटी-सी चट्टाअीसे घबराकर हम पूरा अेक दिन असमें बिता देंगे ? ” लेकिन मैं तो मनके लड़्डू खा रहा था । चट्टाअी सीधी होती, तो भी यनीमत थी । हाँफते-हाँफते वहाँ पहुँच सकते थे । लेकिन यहाँ तो सारा रास्ता आरेकी धारकी तरह चट्टाव और अुतारसे भरा था । चढ़ते-चढ़ते दम फूलने लगता, और अुतरते-अुतरते घुटने भर आते । असका दुःख तो था ही । लेकिन जब जितना चढ़ते, अुतना ही फिर अुतरनेकी नौबत आती, तो अितनी सारी मेहनतके अकारथ जानेकी मानसिक वेदना यात्राके सारे मज़ेको किरकिरा कर देती थी । जहाँ तक मुझे स्मरण है, अुस दिन हमने नौ पहाड़ियाँ पादाक्रान्त कीं और अुतनी ही घाटियाँ लाँचीं । अन्त-अन्तमें तो हमें यह सन्देह-सा होने लगा कि मुकाम आयेगा भी या नहीं । बड़ी मुसीबतोंके बाद अूपर पहुँचे । चट्टीवाली झोंपड़ीअी अँचाअी अन्दर खड़े रहने लायक

नहीं थी। जिस तरह जानवर गुफा में प्रवेश करते हैं, उसी तरह झोंपड़ी के भीतर जाना होता था। फर्श बिल्कुल भीगी हुई थी। हमारे साथ एक मोमकण्ड था। मेरे पास घास की अपनी एक चटाई थी। अिनपर ज्यों-त्यों करके हमने रात काटी। यहाँ की यात्रा में शाक तो आलू का ही हो सकता है। पर आज हमें वह भी न मिला। जंगल में कुछ छोटे-छोटे टूटों पर घुआँके डण्डलों-जैसे डण्डल उग रहे थे। लेकिन अुनके छोर पर पत्ते न थे। बकरे के सींग की तरह अुनके छोर शंखाकृति हो जाते थे। मैंने कुछ पहाड़ियों को अिन डण्डलों का साग बनाकर खाते देखा था। अिसल्लिअे मैं आसपास घूम-घूमकर अेक-दो सुट्टी डण्डल ब्रीन लाया। मुझे विश्वास था कि बाबा .खुश होंगे; लेकिन अुन्होंने अुन्हें पकाने से अिन्कार कर दिया। बाबा रामदासी सम्प्रदाय के 'दास-बोध' की सिखावन के अनुसार चलने वाले जो ठहरे ! अुन्होंने कहा — "अनजाना फल या सागपात कदापि न खाना चाहिये।" और अपने अिस कथन के समर्थन में 'दास-बोध' की अेक अुक्ति जोड़ दी। अब भला मेरा क्या चल सकता था ! मैंने अुन डण्डलों को जमीन पर चक्राकार जमाकर अुनसे कभी तरह की आकृतियाँ बनायीं, और अिस प्रकार जीभ से नहीं, तो आँख से ही अपने पुरुषार्थ का रस चखा।

अेक रात को हम भोटचट्टी पहुँचे। वहाँ बेहद भीड़ थी। डर था कि कहीं रात को बगैर आसरे के मैदान में न सोना पड़े। लेकिन आखिर हमें जगह मिल गयी। अिसी जगह दो पहाड़ी आदमियों की अेक साझे की दुकान थी। अेक साथ व्यापार करने की विश्वासपूर्ण अुदारता तो अुनमें थी; लेकिन अुसके लिये आवश्यक गणित का ज्ञान न था। अिसल्लिअे दुकान में अेक साथी जितना माल लाता, दूसरा भी अुतना ही ला देता और किसी ग्राहक को माल देते ही जो दाम आते, अुन्हें दोनों उसी क्षण बराबर-बराबर बाँट लेते। और, जब तक बँटवारे का यह हिसाब न हो लेता, तब तक नये ग्राहक की सुध को भी क्यों लेने लगा ! अिन दोनों में से अेक कुछ होशियार था। हिसाब के सुभीते के लिये वह अपने ग्राहक से थोड़ा ज़्यादा या कम माल लेने को कहता, और अगर ग्राहक न मानता, तो अुसे सौदा ही न मिलता। यों, ढाँची दुकानों वाली

चट्टीमें जब एक दुकानदार नाराज़ हो जाता, तो यात्रीकी असुविधाका पार न रहता ।

रात हुआ, और आकाशमें तारे चमकने लगे । कभी दिनों बाद निरभ्र आकाशका आनन्द मिला । आजके आकाशकी नीलिमा कुछ और ही थी । अतना स्वच्छ और अतना गहरा नीला आकाश सहज ही देखनेको नहीं मिलता । आगे चलकर द्वाराहाटके रास्तेपर शामके वक्रत ऐसा ही आकाश देखनेको मिला था । लेकिन वहाँ तो बादमें मूसलधार वर्षाने सारा दृश्य बिगाड़ दिया था । यहाँ तारे सारी रात नीली ज़मीनपर हीरोँकी तरह चमकते रहे । यह आनन्द अकेले कैसे लूटा जाता ! मैं स्वामी और बाबा दोनोंको बाहर निकाल लाया । देर तक हम आकाशकी ही बातें करने रहे । अन्ती बीच चट्टीमें कुछ शोर सुनायी दिया । स्वामीने जाकर पृष्ठताछ की । यात्रियोंमेंसे किसी भारवाड़ीकी बुढ़िया चिढ़कर और रूठकर चट्टीसे जंगलमें चली गयी थी । क्रोधके सामने विवेककी हार हमेशा होती है, परन्तु आज तो डरकी भी हार हुआ थी । उस बेचारेको बुढ़ियाके जानेका दुःख था या अपनी अिज़्ज़त जानेका, सो कौन कह सकता है ! दो पीढ़ियोंके बीचके मतभेदकी भी कभी-कभी ऐसी ही दुर्दशा हुआ करती है । बुढ़ियाकी खोज किये बिना ही हम दूसरे दिन बड़े सबेरे उठकर आगे बढ़ गये ।

केदारका रास्ता यानी पवालीकी चढ़ाओ । रामचन्द्रजीके सैनिकों-जैसे पहाड़ी भी असि चढ़ाओके सामने हार जाते थे । 'क़ाबुलकी लड़ाओ और पवालीकी चढ़ाओ' नामक एक कहावतमें यहाँके लोगोंने अपना कष्ट प्रकट किया है । कहावतोंमें भी स्थानिक पाठान्तर होते ही हैं ।

हमने सौंस फुलाकर रोज़की तरह 'अथातो धर्मजिज्ञासा' का नित्य मंत्र पढ़कर चढ़ना शुरू किया ।

पवाली और त्रिजुगी नारायण

रास्तेमें अेक जगह बहुत बारिश हुअी थी । अिसलिअे हमने सूर्यास्तसे पहले ही अेक चट्टीमें ठहरनेका विचार किया । अिस चट्टीमें बैठके जैसी बेलोंकी बड़ी-बड़ी टोकनियाँ बनाकर रखी थीं । ये नितान्त जंगली समझे जानेवाले लोग जब बरतन, टोकनियाँ या अिसी तरहकी और कोअी नित्यके अुपयोगकी चीजें बनाते हैं, तो यह सोचकर आश्चर्य हुअे बिना नहीं रहता कि ये अुनमें अितनी कला कहाँसे ले आते हैं । हम अपने दिस्तर वगैरा लगाकर रसोअी बनानेके स्थानका विचार कर ही रहे थे कि अितनेमें बारिश रुक गयी, और सोने-सी सुहावनी धूप निकल आयी । जयद्रथ-वधके दिन जैसी हालत अर्जुनकी हुअी थी, वैसी ही अुस दिन हमारी भी हुअी । अितनी धूप — अितना दिन बाक्की रहते भी यदि हम ठहर गये, तो हमारी शान ही क्या रही ? तुरन्त सामान बटोरकर चलने लगे । कुली तो बेचारे हमेशा ही भुन-भुनाते रहते हैं । अुनकी शिकायत कौन सुनने लगा ?

शक्तिके समझे जानेवाले बहुतसे काम युक्तिके ही होते हैं । खास तगड़े जवाँमर्द जहाँ पीसते-पीसते थक जाते हैं, वहाँ बूढ़ी औरतें बरसों अुनसे दुगना काम करती रहती हैं । पानीमें तैरनेके लिअे शक्तिकी ज़रूरत तो होती ही है, परन्तु शक्तिसे भी अधिक तो युक्ति ही अुपयोगी ठहरती है । पहाड़ चढ़नेकी भी यही बात है । आदमी यदि जल्दी न करे, और साँसकी ताल सँभालता रहे, तो वह आसानीसे नहीं थकेगा । अँटुपर बैठनेवाला यदि अपना शरीर ढीला रखकर अँटकी चालके साथ ताल न जमाये, तो शाम तक अुसका शरीर दर्द करने लगेगा । पहाड़की चढ़ाअीमें भी शरीर कड़ा रखनेसे काम नहीं चलता । अगर यात्री घुटने, कमर और पीठ मुक्त स्थितिमें रख सके, और हरअेक कदममें लचीलापन रखना सीख ले, तो सुबहसे शाम तक चलकर भी अुसे ज़्यादा थकावट

मालूम न होगी । यहाँ यह कह देना चाहिये कि यह फलश्रुति बहुत मोटे — चरबीवाले — लोगोंके लिये नहीं है ।

अस तरह हिमालयकी कठिन-से-कठिन चढ़ाई चढ़ जानेपर हमें विश्वास हो गया कि यह तपस्या व्यर्थ नहीं है । ऊपर पहुँचकर जो दृश्य देखा, उसे मैं अस जीवनमें भूल नहीं सकता । अनगिनत हिमाच्छादित शिखरोंकी अक महान परिषद् अर्ध-वर्तुलाकार रचनामें विराजित थी, मानो वेदकालीन ऋषियोंकी कोअी महासभा बैठी हो । यहाँसे अधिक नहीं तो कम-से-कम पचास मीलका दृश्य तो दिखाई ही देता था । और जिधर देखिये दूर-दूर तक श्वेत शिखर अनन्तताका सूचन करते नज़र आते थे । यह सफ़ेद बरफ़ अस प्रकार बिछी थी, मानो त्रिकालातीत हो । बरफ़ ज्यों-ज्यों बासी होती जाती है, त्यों-त्यों उसपर हाथी दाँतके-से पीलेपनकी प्रतिष्ठा जमती जाती है और जब उसपर कहीं कहीं नयी कपूर-सी सफ़ेद बरफ़ पड़ती है, तो वह ऐसी शोभती है जैसे किसी वृद्धाकी गोदमें बैठा हुआ बालक ।

मैं ज्यों-ज्यों टकटकी बाँधकर यह सारा दृश्य देखने लगा, त्यों-त्यों उसका अनुमाद मेरे मस्तिष्कमें पैठने लगा; और वह समृचा दृश्य पहाड़ियोंके हिलोरेते हुआ महासागरके समान मालूम होने लगा । अगर अस तरह की अक भी पहाड़ी हमारे समतल प्रदेशमें आकर बसे, तो चारण और कवि बड़े गर्वके साथ निरन्तर उसकी प्रशंसा करते रहें । लेकिन अन पहाड़ियोंको कोअी पूछता तक नहीं । जिस प्रकार हिन्दुस्तानके सन्तोंकी कोअी गिनती नहीं, उसी प्रकार हिमालयकी अन पहाड़ियोंकी भी कोअी गिनती नहीं ।

अखण्ड हिमप्रदेशका अर्थ है, कालके परिवर्तनका पराभव । बारहों महीने यहाँकी शोभा ज्योंकी त्यों बनी रहती है । लेकिन अस शोभामें भी प्रतिक्षण लावण्य पूरनेका कार्य सवितानारायणकी किरणें करती रहती हैं । किसी पुण्य पुरुषके सहवाससे जिस तरह आसपासके सारे समाजके धर्मनिष्ठ बन जानेका भास होता है, उसी तरह सुबहकी बालकिरणोंके फैलते ही समस्त शिखरोंके अनुरक्त होनेका दृश्य उपस्थित हो ही जाता

है। कभी कभी सारे शिखर गेरुआ रंग धारण कर दशनामी* अखाड़ा जमाते हैं।

पवालीसे जल्दी-जल्दी उतरकर हम त्रिजुगी नारायण पहुँचे। मानो स्वर्गसे उतरकर मृत्युलोकमें आये। और, स्वर्गके सारे पुण्य धो डालनेके अद्देश्यसे ही आभी हुआ। वर्षादि रास्तेभर झड़ी-सी लगाकर हमारे सारे अत्साहको धो डाला। अन्त अन्तमें तो हम रास्ता छोड़कर सीधे ही उतरने लगे। लेकिन अिससे भी आखिर समयकी बचत तो नहीं हुई।

त्रिजुगी नारायणमें नारायणका प्राचीन मन्दिर है। अिस मन्दिरकी अग्नि पारसियोंके आतिशवेहरामकी तरह सतजुगसे आज तक बराबर जलती आभी है। जब हिमालयकी पुत्री पार्वती देवाश्विदेव महादेवसे ब्याही गयी थी, तब विवाहके होमके लिये अिम अग्निका आधान किया गया था। तबसे आज तक यह अग्नि त्रिलकुल बुझी नहीं है!

यहाँ रातको एक साधु 'मेरा सब कुछ लुट गया' कहकर जोरसे रोने और चिल्लाने लगा। सारी धर्मशाला हैरान हो उठी। जाँच-पड़तालके बाद मालूम हुआ कि यह सब बहाना भर था। किसी दूसरे साधुको संकटमें डालनेके लिये उसने आधी रातकी शान्तिमें यह स्वाँग रचा था। साधु ही जो ठहरे!

त्रिजुगी नारायणसे नीचे उतर हम केदारकी मुख्य सड़कपर आये। वहाँसे मन्दाकिनीके किनारे-किनारे चलते हुअे गौरीकुण्ड पहुँचे। यहाँ गरम पानीके झरने हैं।

जमनोत्री और बदगीनारायणके पास तो ठेठ तीर्थस्थानमें ही गरम पानीके झरने हैं, जब कि गंगोत्रीसे केदारनाथ जाते समय तीर्थस्थानके कुछ अिस ओर रास्तेपर गरम पानीके झरने पड़ते हैं। गंगोत्रीके लिये गंगनाणी और केदारके लिये गौरीकुण्ड। गौरीकुण्डका पानी स्वच्छ नहीं था, अिसलिये हमने उसमें नहानेका विचार छोड़ दिया। गौरीकुण्डसे आगेका रास्ता अपनी विकट चढ़ाईके लिये प्रख्यात है।

* संन्यासियोंमें गिरो, पुगी, भारती, सरस्वती, अरण्य, तीर्थ, आश्रम, वगैरा कुल दस फ़िरके होते हैं, जिन्हें दशनामी कहते हैं।

वह चढ़ाओ चढ़कर हम केदारनाथके नज़दीक पहुँचे। रास्तेमें एक मोड़को पार करते ही दूरपर केदारनाथका शिखर दिखाओ देने लगा। हरएक यात्रीने अपनी कायाको ज़मीनपर फेंककर साष्टांग प्रणिपातपूर्वक जयघोष किया — ‘जय केदारनाथकी जय; जय केदारप्रभुकी जय’।

मन्दिरकी मूर्तिके दर्शनोंकी अपेक्षा शिखरके दर्शनोंकी अुमंग ही विशेष होती है।

४०

केदारनाथ

केदारनाथके मन्दिरकी लोकप्रियता बदरीनारायणसे कुछ कम तो है ही। इसीलिये यहाँका मन्दिर अधिक प्राचीन, अधिक भव्य और तपस्वी-सा मालूम होता है। मन्दिरके अग्रभागमें बना यूनानी शैलीके छप्परका त्रिकोन (जिसे अंग्रेज़ीमें ‘गेबल’ कहते हैं) ध्यान खींचता है। टेहरीके हेडमास्टरने कहा था कि यहाँके पण्डोंके पास शंकराचार्यकी जो वंशावली है, उससे यह सिद्ध हो सकता है कि यहाँका मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। लेकिन मन्दिरका स्वरूप ही उसकी प्राचीनताका यथेष्ट प्रमाण है। फिर यहाँ यूनानी शैली कहाँसे आयी? या कि यूनानी लोगोंने अपनी शैली यहाँसे ली? इस शैलीको अपनी तो कहा ही नहीं जा सकता। यदि यह हमारी होती तो इसके अनेक प्राचीन नमूने अनेक रूपोंमें दिखाओ देते। काश्मीरमें पन्दरेथान नामकी एक जगह है। उसकी स्थापत्य-शैलीके विषयमें ऐसी ही शंका अुठती है। यदि अशोकका राज-महल औरानी शैलीका था, तो केदारनाथमें यूनानी शैलीके आनेपर आश्चर्य क्यों हो? हम यह क्यों मानें कि हमारे समर्थ पूर्वज परायी कलासे घृणा करते थे? जब निर्धन लोग कहींसे कुछ अधार लाकर पहनते हैं, तो उससे उनकी गरीबी ही ज़्यादा स्पष्ट होती है; लेकिन जब बलवान कहींसे कुछ अधार लेते हैं, तो ऐसा मालूम होता है मानो वे खुद ही उपकार कर रहे हों!

केदारनाथके मन्दिरके पास कुछ कुण्डोंमें लम्बे-लम्बे लँगोटीनुमा कायज्ञ पड़े हुअे दिखायी दिये । कुछ कायज्ञ कपड़ेकी चिन्दियोंपर चिपकाये हुअे थे । उनमेंसे अकको बाहर निकालकर देखा, तो वह किसीकी जन्मपत्री निकली । पृष्ठताछ करनेपर पता चला कि बहुतसे बृद्ध यात्री केदारकी यात्रा करके कृतकृत्य होनेपर यहाँ अपनी जन्मपत्रीका विसर्जन कर देते हैं । जिन दर्शनोंकी उत्कण्ठा बरसोंसे लगी थी, केदारनाथके वे दर्शन हो चुके; जीवनका सारा पाप धुल गया, नवग्रहोंने अपना-अपना प्रभाव लौटा लिया, अब इस जन्मपत्रीमें देखना क्या है, जो कायज्ञका यह चिथड़ा अब सहेजा जाय ?

केदारप्रभुके दर्शनोंके बाद भी मनुष्यको जीवनकी अभिलाषाने छोड़ा कहाँ है कि वह यहाँ अपने जीवनका ही विसर्जन कर सकता ? जब जीवनका मोह नहीं छूटता, तो जीवनकी प्रतिनिधिभृत जन्मपत्री छोड़कर ही सन्तोष माना जाता है । पर्याय धर्मकी भी बलिहारी है । अिब्राहीमसे पुत्रकी बलिके बदले अक बकरेकी बलि लेकर ही उसके भगवानने सन्तोष माना था । गयाजी जाकर कामक्रोधादि षड्रिपुओंका त्याग करनेके बदले कोअी न रुचनेवाला शाक या फल छोड़कर ही यात्री अपनी यात्रा सफल करते हैं । नहानेकी अिह्छतसे बचनेके लिये पहाड़ी ब्राह्मणोंने पानीकी पाँच बूँदोंकी 'पंचस्नानी'का आविष्कार किया । और, आजकलके सभ्य राष्ट्र भी शत्रुके हाथमें न आनेपर उसके चित्रको चौराहेपर जलाकर अपनी क्रोधवृत्तिको सन्तुष्ट करते हैं । बेचारे मनु भगवानने आरम्भमें मानव-जातिसे कह रखा है कि मुख्य धर्मके पालनकी शक्ति होते हुअे भी जे मनुष्य पर्याय धर्म अथवा आपद्धर्मसे सन्तोष मानता है, उसे परलोकमें उस क्रियाका फल नहीं मिलता ।

हिमालयमें स्थित हमारे ये सारे तीर्थस्थान दस-दस हजार फुटकी ऊँचायीपर होते हुअे भी चिरहिम-प्रदेशकी तलहटीमें ही बसे हुअे हैं । असिलिये यहाँ जिधर देखो, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ नज़र आते हैं । हम मानव अिन घाटियोंकी गोदमें अितने नन्हे दिखायी देते हैं कि हमें बालककी अपुमा भी शोभा नहीं देती ।

महाभारतमें केदारनाथका वर्णन सुन्दर ढंगसे हुआ है। जब पाण्डव वनवासमें थे, तब मध्यम पाण्डव अर्जुन अस्त्र-प्राप्तिके लिये घूमता-भटकता जिस तरफ़ आया था। और जब भीम दिव्य कमल लानेके लिये निकला, तो वह भी यहाँ तक आया था। रामदासस्वामीको हनुमानजीके दर्शन भी शायद इसी प्रदेशमें हुअे होंगे। और जब अपनी जीवनयात्राकी समाप्तिपर पाण्डवोंने महाप्रस्थान किया था, तब भी वे यहीं आये थे। वे वृद्ध पाण्डव और उनकी साथिन मानिनी द्रौपदी इसी भूमिपर विषण्ण चित्तसे विचरे होंगे। यह विचार कि जिन पहाड़ोंको आज मैं देख रहा हूँ, वही पहाड़ अर्जुनोंने भी देखे थे, — हमें पाण्डवकालके साथ जोड़ देता है। और महाप्रस्थानका स्मरण होते ही धर्मराजके उस अमीमानदार कुत्तेका स्मरण हुअे बिना कैसे रह सकता है? अन्द्रके स्वर्गमें आजकलके होटलोंकी तरह कुत्तोंके लिये प्रवेश नहीं था। अन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा — “अस मैले-कुचैले जानवरको निकाल दे; तुझे अब पुण्यलोक मिला है।” धर्मराज बोला — ‘आप कहें, तो मैं लौट जाऊँ, लेकिन अस अमीमानदारका त्याग मुझसे न होगा। **स्वर्गसुखार्थ अकार्या न करि न सोइनि मो सुकार्याते** — (स्वर्गसुखके लिये भी मैं सत्कार्य छोड़कर अकार्य नहीं करूँगा)।

जब हम केदारनाथके मन्दिरमें पहुँचे, तो वहाँ लगातार शंखध्वनि सुनकर हमारी चित्तवृत्ति सहसा उत्तेजित हो गयी। दूसरे दिन सबेरे हमने देखा कि यहाँकी मूर्ति तो एक बड़ा खुरदरा पाषाणमात्र है। यह एक अलग बात है कि कभी-कभी जमानोंके यात्रियोंकी अखंड धाराने अपने स्नेहसे इस पाषाणको चिकना बना दिया है। जो आता है वही शिवलिंगसे अपनी देह भिड़ाकर उसे छातीसे लगाता है।

केदारप्रभुके दर्शन कर चुकनेकी मस्ती न हो, तो कोई यात्री अंक रातके लिये भी यहाँकी ठण्डको सह न सके।

हजारों वर्षोंसे एककी एक श्रद्धा ही भारतवासियोंको प्रतिवर्ष यहाँ ले आती है। भारतवर्षके इतिहास और पुराणोंमें जितने पुरुष प्रख्यात हैं, उनमेंसे कभी इसी जगह आकर और इस शिवलिंगको आलिंगन देकर धन्य-धन्य हुअे होंगे। साधारण कोटिके असंख्य लोगोंने उन

सबकी प्रणालिकामें अपना स्थान ग्रहण करके अपने तुच्छ जीवनको भी गौरवान्वित किया होगा । जिसने इस स्थानको पसन्द किया और जिसने सबसे पहले अपनी भक्तिसे इसे सींचा, उस व्यक्तिकी विभूति कितनी बड़ी रही होगी ! अपने उस अज्ञान भक्त ऋषि और भारतीय पूर्वजको केदारनाथ प्रभुके साथ ही हमारे अखण्ड वन्दन पहुँचे । *

सबेरे धूप चढ़नेके बाद कुछ देर करके हम मन्दाकिनीपर स्नानके लिये गये । नदीकी धारामें पत्थर अतने अधिक थे कि नहानेकी सुविधाका विचार हो ही नहीं सकता था । और वहाँ नहानेवाले भी बहुत आये थे । इसलिये ऐकान्तका जो आनन्द होता है, वह भी वहाँ नहीं मिला । ऐकान्तकी अिच्छा जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही विचित्र है । ऐकान्तके लिये हम निर्जन स्थान खोजते हैं । मनमें कहते हैं, कैसा निर्जन स्थान है ! उस समय हमें यह खयाल नहीं रहता कि हमारी उपस्थितिके कारण ही उस स्थानकी निर्जनता मिट गयी है । क्या यह अिच्छा करना उचित है, धर्म्य है कि अमुक स्थानमें अकेला मैं ही रहूँ, और दूसरा कोअी न रहे ?

तिसपर भी धर्मात्मा ही खास तौरपर निर्जन स्थानोंकी खोज करते हैं । नहीं; सिर्फ धर्मात्मा ही नहीं । एक साधुने कहा था — “रोगी, भोगी और योगी तीनों शान्त, निर्जन स्थान खोजते हैं ।” तो भी तीनोंकी आतुरतामें कितना अन्तर होता है ?

हिमालयमें अितनी दूर आनेपर जिस क्षण जहाँ ऐकान्तकी अिच्छा हो, उसी वक्त चारों तरफ़ जन-समर्द बना रहे, तो वह कितना बुरा मालूम होता है ?

अब तो सिर्फ बदरीनारायणकी ही एक यात्रा और रह गयी । यहाँसे बदरीनारायण बहुत दूर नहीं है । केदार-बदरीके दरमियान केवल एक ही बड़ा पहाड़ खड़ा है । पहाड़ लाँघनेकी सुविधा हो, तो दोनोंके बीच पाँच मीलका भी अन्तर नहीं है । लेकिन इस अँचे पहाड़को लाँघना ही मुश्किल है । वह निरन्तर बरफ़से ढँका रहता है । फलतः लोगोंको आनेके रास्तेसे वापस जाकर और बड़ा चक्कर खाकर, कअी पहाड़ बचाकर नौ दिनकी यात्राके बाद बदरीनारायण पहुँचना पड़ता है । इसपरसे यात्रियोंमें कहावत पड़ गयी है, नौ दिन चले ढाअी कोस ।

एक दन्तकथाके अनुसार प्राचीन कालमें यह पहाड़ बीचमें नहीं था । एक ही पुजारी दोनों जगह एक ही आरतीसे अिकद्री पूजा कर सकता था । यह बात चाहे जितनी रोचक हो, तो भी मानने लायक नहीं है । दन्तकथाओंके मूलमें कभी-कभी ऐतिहासिक तत्त्व होता है, लेकिन कभी-कभी केवल लोकमानसकी काव्य-कल्पना ही होती है ।

‘ढाओ कोसवाली’ इस बातको सुननेके बाद मनमें विचार आता है कि आधुनिक मनुष्यको नौ दिनका यह चक्कर बचानेके लिये ग्वंडाला घाटकी तरह सुरंगें ही बनानेकी सखेगी ।

कहते हैं, अिटली या स्विट्ज़र्लैंडमें इस तरहकी सुरंगें बनी हैं । जब सुरंगका रास्ता बनेगा, तो बिजलीकी बत्तियाँ भी आ ही जायँगी । बिजलीके पीछे-पीछे होटल भी आवेंगे, और फिर उनके साथ धर्म विरोधी असंख्य चीजें आ सकती हैं । काश्मीरका तो यही हाल हो रहा है । क्या एक हिमालयको भी हम आधुनिकताके हमलेसे नहीं बचा सकते ?

४१

अुखीमठ और तुंगनाथ

सुमेरूके शिखर और केदारके मन्दिरको प्रणाम करके हम लोट पड़े । नालाचट्टीतक सीधे रास्ते जाकर वहाँसे हमने अुखीमठका रास्ता पकड़ा । यह प्रदेश मुझे विशेष आकर्षक मालूम हुआ, क्योंकि यहाँकी कुछ पहाड़ियाँ महाराष्ट्रकी पहाड़ियों-जैसी दिखायी दीं ।

जिस तरह आजकल दिल्लीके राजपुरुष गर्मियोंमें शिमला जाते हैं, उसी तरह जाड़ोंमें केदारनाथ प्रभु नीचे उतरकर अुखीमठ आते हैं । जाड़ोंमें केदारनाथकी सारी घाटी बरफसे ढँक जाती है । ग्रीष्म ऋतु आनेपर पुजारी फावड़े कुदालियाँ लेकर अुखीमठसे केदार जाते हैं, और बरफ काट-काटकर वहाँके रास्तेको साफ कर देते हैं । पुजारी कहते हैं कि शीतकालके आरम्भमें मन्दिर बन्द करते समय वे मन्दिरमें जो दिया जलता छोड़ आते हैं, वही गर्मियों तक जलता रहता है । इस तरहकी बातोंको

हम सच न मानें, तो भी अनिका जिक्र किये बिना रहा नहीं जाता । मनुष्यको क्या-क्या प्रिय है, और उसकी कल्पनायें कहाँ-कहाँ तक दौड़ती हैं, सो जाननेभरके लिये अनि बातोंका उपयोग होता है । कभी बार अिस तरहकी कल्पनाओंमें ही आगेके बहुतसे आविष्कारोंकी जड़ होती है । अिसलिये मनुष्यकी मुरादके नाते ऐसी मान्यताओंका लोप कभी होने ही न देना चाहिये ।

अुखीमठमें अेक बड़ा बाज़ार है । याद नहीं क्यों वहाँ हमने चार या आठ आने देकर अेक नारियल खरीदा था । यहाँके बाज़ारमें कभी नारियल दुकानसे मन्दिरमें और मन्दिरसे दुकानमें लगातार चक्कर काटा करते हैं । बाज़ारमें सिक्कोंके जैसे ही चक्करको बचानेके लिये जिस तरह कागज़के नोट चलाये जाते हैं, अुसी तरह यहाँ मन्दिरमें भी कागज़के नारियल चलाये जायँ, तो क्या बुरा है ! नारियलकी तरह वे भीतरसे सड़ेंगे तो नहीं !

जहाँ तक मुझे याद है, बंगाली साधु माधवानन्द अुखीमठ तक ही हमारे साथ था । यहाँ अुसे भंग पिलानेवाले कोअी दूसरे साधु मिल गये, अिसीलिये वह गहरी छानकर अुसके नशेमें चूर हमसे मिलने आया था । अुसकी मुद्रा प्रसन्न नहीं मालूम होती थी । आँखें ऐसी दिखायी देती थीं, मानो पित्तप्रकोप हो गया हो । अब हम अपनी यात्राके राजमार्गपर आ गये थे । गंगोत्री-जमनोत्रीके रास्तेपर सुविधायें कम और जोखिम ज़्यादा है । वहाँ माधवानन्दको हमारे संगकी बहुत ज़रूरत थी । अब वह नहीं रही । और फिर हमारे साथ पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस मील रोज़ चलकर वह थक गया था । अब अुससे और अधिक चला नहीं जा सकता था । अुसने कहा — “अब मैं थोड़ा आराम करूँगा । अगर आराम न किया, तो डर है कि यहीं ढेर हो जाऊँ । ” हमने सन्तोषपूर्वक अुसे बिदा दी । यहाँकी धर्मशालामें अेक डाक्टरने हमें कुछ पत्ते दिखलाये । महाराष्ट्रमें जिसे ‘घोड़ेके पैर’ कहते हैं, अुभी क्रिस्मकी अेक बेलके वे सूखे पत्ते थे । अुन्हें हाथमें लेते ही अुनकी बुकनी बन जाती थी । लेकिन अुन्हींको जब पानीमें डाला गया, तो थोड़े ही वक़्तमें वे फिर ताज़ा पत्तोंकी तरह हरे हो गये । डाक्टरने हमसे आग्रहपूर्वक कहा कि वहाँसे

थोड़ी दूरपर एक साधु रहता है। जो भी कोअी उससे मिलने जाता है, उसे वह पत्थर मारता है, और गालियाँ देता है। लेकिन दर्शन करके आनेवालेको चमत्कार दिखे बिना नहीं रहता। कोअी न कोअी लाभ तो होता ही है। हमें न तो गालियोंकी चाह थी, और न पत्थरोंकी, और न चमत्कार और लाभकी लालसा थी। असलिअे हमने दर्शनोंकी अच्छा नहीं की। हम आगे बढ़ गये।

अब हमें तुंगनाथकी चढ़ाअी चढ़नी थी। अब तक हम कअी चढ़ाअियाँ चढ़ चुके थे। असलिअे तुंगनाथकी चढ़ाअीके लिअे हम तैयार न हों, सो बात नहीं। परन्तु उस दिन हवामें जो कुहरा छाया हुआ था, उसके लिअे हम सचमुच तैयार न थे। सबेरे हम बहुत बढ़िया चले, पर मार्गमें एक भी बढ़िया चीज देखनेको न मिली। क्षीरसागरमें मछलियोंकी तरह हम तुंगनाथकी चढ़ाअी चढ़ रहे थे। बीच-बीचमें रुककर हम अपने चारों तरफ देखते कि कहींसे भाग्य खुलते हैं? ठेठ चोटीपर पहुँचनेके बाद बादल कुछ छितराये। अूपरका भाग स्पष्ट हुआ। परन्तु शिखरके आसपास, हमारे पैरोंके नीचे, अब भी दूर-दूरतक बादल घिरे थे। बादलोंसे भी अूपर अुठकर नीचेके बादलोंपर नज़र डालनेमें जो आनन्द आता है, और जैसे गौरवका अनुभव होता है, कमसे कम उसीके लिअे हरअेकको यहाँ आना चाहिअे। सिंहगढ़, दार्जिलिंग, आबू आदि स्थानोंपर अस तरहकी शोभा कअी लोगोंने देखी होगी। उस वक़्त अैसा जान पड़ता है, मानो हम अस पृथ्वीके नहीं, बल्कि बादलोंपर विराजमान गंधर्व नगरीके निवासी हैं, और हमेशा अिसी तरह अूपर ही रहेंगे। अेकबार अिसी तरहकी अेक दूसरी यात्रामें मैं दोपहरको अेक पहाड़ लँघ रहा था। वहाँ कुहरेके कारण पैरोंके नीचे, दूर तक अेक विशाल अिन्द्रधनुष फैला हुआ दिखाअी दिया। अैसा लगा मानो अेक रंगीन किनारवाला भव्य आसन बिछा है, और मैं उसपर बैठा हूँ। अैसे स्थानपर सेंतमेंतमें अितना वैभव अनुभव करके मनुष्यका दिमाग हमेशाके लिअे फिर जाय, तो ताज्जुब नहीं। और यह भी नहीं कि अैसे अुदाहरण पाये न जाते हों। जिसका सिर थोड़ी देरके लिअे फिरता है, वह कवि कहलाता है। मगर जिसका सिर सदाके लिअे फिर जाता है, उसे

पागल या दीवाना कहते हैं । ज्योंही हम तुंगनाथसे नीचे अुतरे, हमारा बैरी कुहरा भी अुपरसे तितर-बितर हो गया । हम जब अुपर थे तभी वह तशरीफ़ ले जाता, तो क्या हम अुसे शाप दे देते ? नीचेकी मंगलचट्टीसे तुंगनाथका शिखर बहुत भव्य दिवाली दिया । हम कितनी भव्य, रमणीय अुँचाई तक पहुँच गये थे, अिसकी वास्तविक कल्पना हमें नीचे अुतरने पर ही हो सकी ! वहाँसे हम आगे बढ़े । स्वामी हमारे आगे थे । बाबा और मैं बहुत पीछे रह गये । सौँझ हो गयी, अँधेरा होने आया, और वर्षाने भी जी भरकर अपना प्रसाद चखाया । अिसीलिअे मैं रुक गया । स्वामीका पता लगाया । वे आगे चले गये थे । मैंने बाबाके आनेकी बाट देखी और हमने अेक आदमीके साथ ओढ़ने-बिछानेका और दूसरा कुछ सामान आगे गोपेश्वर भेज दिया । हम वहीं रह गये । हमारी सारी यात्रामें यही अेक रात अैसी थी, जब हम तीनोंका संग छूटा था ।

जब दूसरे दिन सबेरे हम गोपेश्वर पहुँचे, तो देखा कि स्वामी वहाँके बृद्ध महन्तसे बातें कर रहे थे । ये महन्त असलमें दक्षिणी थे, लेकिन यहाँ रहते रहते पहाड़ी बन गये थे । टूटी-फूटी मराठी बोल लेते थे । ‘रानांत’* की जगह ‘राणात’ कहते थे । अुन्होंने हमारी आवभगत की । स्वामीने अुनके साथकी अपनी बातचीतका सार हमें कह सुनाया । मालूम हुआ कि भगिनी निवेदिता यहाँ आयी थीं । बादमें हम अुनसे बिदा होकर लालसाँगाकी तरफ़ गये । वहाँसे आगे बदरीनारायणका रास्ता पड़ता है ।

लालसाँगा यानी लाल पुल । अिस गाँवका असल नाम चमोली है । परन्तु यात्रियोंके लिअे यहाँ अलकनन्दापर जो पुल बना है, अुसके रंगपरसे अिस स्थानका नाम लालसाँगा पड़ गया है । यहाँ बाज़ार, तारघर, वयैरा सुविधाओंके सिवा, अेक शफ़ाखाना (अस्पताल) भी है । लालसाँगासे आगेकी यात्रामें ज़यादा मजा नहीं आता । यात्रियोंका अैसा ताँता देखनेको मिलता है, मानो चींटियोंकी कतार चली हो । रास्तेमें गरुड़चट्टी पड़ी । वहाँ दोपहरमें अच्छी गहरी नींद आयी । अिसीलिअे

* रानांत = जंगलमें ।

अस चट्टीका नाम याद रह गया है । पिछली रातको हमें मुश्किलसे थोड़ी नोंद मिली थी । यदि दोपहरमें अस तरह सोने नहीं पाते, तो शायद बीमार पड़ जाते । याद पड़ता है कि यहीं हमने बिच्छू नामका भयानक पौदा देखा था । पिछले दिनों हम अतने चल चुके थे कि अब थकावट मालूम होने लगी थी । शामको हम जोशीमठ पहुँचे । जिस प्रकार केदारप्रभुकी शीतकालीन राजधानी है अुखीमठ, अुसी प्रकार बदरीनारायणकी है जोशीमठ ।

४२

बदरीधाम

अपनी दिग्विजयके बाद श्री आदिशंकराचार्यने हिन्दूधर्मके लिअे अेक सुन्दर व्यवस्था बना दी । जैसे अीसाअी धर्मके लिअे सन्त पॉल हैं, अुसी तरह बड़े पैमानेपर हिन्दू धर्मके लिअे भी वेदव्यास और भगवान शंकर हैं । अनि विभूतियोंके हृदयोंमें बड़े-बड़े खण्ड (महाद्वीप) समा सकते हैं । और अनिकी दृष्टि तो सुदूर सदियों तक पहुँचती है । विश्वास, वाग्वैभव और व्यवस्था ही मानो अनिका शरीर है । शंकराचार्यने अपनी व्यवस्थाको कायम और सजीव बनाये रखनेके लिअे भारतवर्षके चार सिरोंपर चार मठ क्कायम किये — द्दारिका, शृंगेरी, पुरी, और ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) । अस धर्मसम्राटने अनि चारों जगहोंमें अपने ब्रह्मचारी नियुक्त किये — मानो अशोकके राजुक (वाअिसराय) हों !

अुत्तरमें ज्योतिर्मठ स्थापित करके वहाँ दक्षिणकी तरफके कटर धर्मनिष्ठ ब्रह्मचारियोंको बुलाया और नियुक्त किया ।

हिन्दुस्तानसे बौद्धधर्म अुत्तरकी ओर तिब्बत और चीनकी तरफ गया । अुसके मंगोलियन संस्कार फिर अस देशमें न आने पावें, कहा जाता है कि असी अेक अुद्देश्यसे यह अेक नाका यहाँ क्कायम किया गया था । प्राचीन संस्कृतिमें व्यापारकी दृष्टि, सैनिक दृष्टि और धर्मकी दृष्टि तीनोंको अेकत्र करके थाने क्कायम किये जाते थे ।

जाइयें प्रभु बदरीनारायण स्वयं जोशीमठ आकर रहते हैं। अिस-
लिअे यहाँ भी पण्डों और यात्रियोंकी खासी भीड़ रहती है। यहाँके कारीगर
तौबे और चाँदीकी चद्दरोपर बदरीनारायणका चित्र शुभारकर बेचते हैं; वे
कायज़पर छपी तसवीरें भी रखते हैं। यहाँका बाज़ार अिस प्रदेशका
अेक बड़ा बाज़ार कहा जा सकता है।

जोशीमठमें हमें अेक मद्रासी ब्रह्मचारी मिला। वह अंग्रेजीमें बोल
सकता था। अुससे जोशीमठके ब्रह्मचारी, महन्त और अुनके वंशविस्तारकी
काफ़ी जानकारी हमें मिली। यात्रियोंकी अन्धी दान वृत्तिमेंसे अिन महन्तोंको
मुफ्तकी कितनी आमदनी होती है और अुसका किस तरह विनियोग
होता है, अिसके विषयमें भी अुसने हमें बहुत कुछ बतलाया। अुसकी
बातोंसे हमें पता चला कि वह बहुत-सी अन्दरकी बातें भी जानता था।
हिन्दू समाजको साधारण समझदारी सिखाने और कअी तरहकी गंदगी
दूर करनेके लिअे अब किसी ज़बरदस्त शिक्षा-विशारद शंकराचार्यका
अवतीर्ण होना ज़रूरी है। जोशीमठके मन्दिरके चारों कोनोंपर चार छोटे-
छोटे मन्दिर हैं। अिन मन्दिरोंकी मूर्तियाँ प्रमाणशुद्ध और रुपहली लगीं।
अिनमेंसे अेक मन्दिरमें शंकर और पार्वती भीलके वेशमें खड़े हैं। यह
मूर्ति देखकर मैं तो मुग्ध हो गया।

जोशीमठसे अुतरकर हम अलकनन्दा और धवलगंगाके संगमपर
विष्णुप्रयाग पहुँचे। जब पहाड़ी नदियाँ परस्पर मिलती हैं, तो मतवाली
हो अुठती हैं। वहाँ देर तक बैठे रहना भी खतरनाक होता है। आश्चर्य
नहीं कि अुस मस्तीमें गोता लगाकर आदमी बह जाय। वहाँसे आगेकी
दो-तीन चट्टियाँ पार करके हम हनुमान चट्टी पहुँचे। वहाँ प्राचीन कालमें
अेक बड़ा भारी याग (यज्ञ) हुआ था। परन्तु वहाँ बिना स्के हम
आगे बदरीनारायणकी तरफ़ चले। रास्तेमें अेक नदी जमकर बरफ़ हो
गयी थी। अुसे पार करना आसान न था। पैरों तलेकी बरफ़ ठोस है
या तरल, सो जाननेके लिअे हम अपनी लकड़ीकी नोक बरफ़पर बड़े
झोरसे मारते। अक्सर नदीकी अूपरी सतह तो जम जाती है, पर भीतर
ठण्ढा पानी बहता रहता है। अगर अूपरकी तह टूट जाय और आदमी
भीतर गिर पड़े, तो वह ठण्ढे पानीके प्रवाहरूपी अुस तलधरमें बहे बिना

न रहे ! फिर उसके लिये बचनेका कोई अुपाय ही नहीं । अपरकी बहाड़ीपरसे लुढ़क-लुढ़क कर कभी पत्थर बर्फके पटपर आ गिरे थे । पत्थरोंके भारसे बरफ पिघलती तथा पतली होती है । फिर अेक अैसा क्षण आता है, जब बरफसे पत्थरका बोझ नहीं सहा जाता । हुब्ब ! और बस, समझिये कि पत्थरने जल-समाधि ले ली । अिस तरहकी कुछ जल-समाधियाँ देखकर हम चेत गये थे । कहते हैं कि अेक बार कोई धनवान मनुष्य चार कहाँरोंकी झंपानमें बैठकर जा रहा था । अितनेमें अेकाअेक नीचेकी बरफ पिघल गयी बस, वह झंपान और वे पाँचों प्राणी वहीं प्रवाहमें गिरकर ठण्डे हो गये । अुनके लिये ठण्डी सफेद क़ब्र तो तैयार ही थी ।

मुझे कुछ कुछ याद पड़ता है कि या तो केदारके रास्ते या बदरी-नारायणके रास्तेपर हमें नदीके किनारे चलते-चलते कहींपर बरफका अेक बड़ा-सा प्राकृतिक रूपसे बना हुआ पुल मिला था । नीचेकी तरफ झूलते पुलकी तरह बरफकी अेक गोल कमान बन गयी थी ।

*

*

*

दर्शन हुअे ! आखिर बदरीनारायणके शिखरके दर्शन हुअे । आनन्द ! आनन्द ! 'उरसा, शिरसा, दृष्टया, वचसा, मनसा, तथा पद्भ्यां, कराभ्यां, जानुभ्यां' हमने साष्टांग प्रणिपात किया ! मनुष्य कितना ही क्यों न थका हो, क्या वह अिस आखिरी फासलेको पार करनेमें देर लगा सकता है ! हम तो हवाअी गेंदकी तरह हलके होकर दौड़ने लगे । भीगे कपड़ोंसे पुरीमें प्रवेश किया । अुतारेपर जाकर कपड़े सुखाये और साँझकी आरती तथा राजभोग देखने जा पहुँचे । बाबा लोगोंका घंटी बजानेका अपना अेक खास ढंग होता है । कमर कसकस कर दो आदमी घंटी बजाते हैं, और असमान ताल बराबर साधते हैं । यह ताल अिन्हें कैसे सूझा, अिसपर आश्चर्य हुअे बिना नहीं रहता । घण्टानादके आमन्त्रणके अुत्तरमें हम मन्दिर पहुँचे । लोगोंकी भीड़ अितनी थी, मानों छत्तेपर मधुमक्खियाँ हों ! अुस वक्त मनमें क्या क्या आया, कौन-कौनसे भाव अुमड़े, अपने शब्दोंमें अिसकी कल्पना देनेकी अपेक्षा अुसे स्वामी आनन्दकी भाषामें यहाँ टाँक दूँ, तो मनको कुछ सन्तोष होगा—

“हम अठकर अतावलीसे मन्दिरमें गये । साक्षात् नारायणके द्वार पर — भगवानके चरणोंमें — लोगोंकी भीड़का पृष्ठना ही क्या था ? सारी बदरीपुरी वहीं अुमड़कर आ गयी थी । अैसा अभागा कौन हो सकता है, जो पुरीमें रहकर भी राजभोगके दर्शन न करे ! हमने ज्यों त्यों करके दर्शन किये । मन्दिरके भीतर दूरपर मूर्तिके पास अनेक दीपोंकी दीप-माला जगमगा रही थी । दर्शन करके हम गद्गद हुअे । कृतकृत्य हुअे । सगेसम्बन्धी, स्नेही, आत्मीय, सबका यहाँ स्मरण हुआ । कअी दिनोंसे जिसकी धुन लगी हुअी थी, जिसके लिअे महीनों जंगलों और पहाड़ोंमें मारे-मारे फिरना हमने खुशीसे कबूल किया था, अुसे अन्तमें प्राप्त हुआ देख आँखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे । जीवन सफल हुआ । अुस समय धन्यताका अनुभव कर नारायणके द्वारपर कअी लोग कृतकृत्य और पावन होकर, ‘तेरे चरणोंमें अेक बार सदाके लिअे स्थान दे दे, नारायण’, ‘अिसी क्षण तेरे दरवाजेपर आश्रय दे’, ‘अब तेरी शरणमें आनेके बाद, फिर अुस असार जगत्में मत भेज, प्रभो’, ‘मुझे अुबार ले’, ‘अिस जगत्मेंसे निकालकर अपने चरणोंके पास अक्षय्य शान्ति दे’, ‘धन्य हो गया हूँ नारायण, अब मृत्यु दे’, आदि अनेक प्रकारसे प्रार्थना कर भगवानको मना रहे थे ! नारायणके द्वारपर, साक्षात् नारायणके सम्मुख अुपस्थित होनेपर भी किस अभागे प्राणीके मनमें अिस असार संसारकी भ्रान्ति रह सकती है, या अुसके लिअे यत्किञ्चित् भी मोह रह सकता है ?

“मन्दिरके बाहर नारायणका प्रसाद (भात) बँट रहा था । मगर वहाँ अितनी करारी भीड़ थी कि लाख कोशिश करनेपर भी हम भीतर नहीं घुस पाये । आखिर अेक यात्रीसे थोड़ासा प्रसाद माँगकर, बड़े प्रेमसे कृतकृत्य होकर खाया । यहाँ नारायणके द्वारपर राजा-रंक अेक हैं, गरीब-अमीर अेक हैं, ब्राह्मण-शूद्र अेक हैं, पापी-पुण्यवान् अेक हैं, सुखी-दुःखी अेक हैं, रोगी-कोढ़ी, ढेढ़-चमार, शूद्र-अतिशूद्र, चाँडाल-पतित, अूँच-नीच, काले-गोरे, वैष्णव-शैव, संन्यासी-त्यागी, शाक्त-वैरागी, छोटे-बड़े, बालक-स्त्री, सभी अेक हैं । यहाँ न भेद है, न जाति है, न संप्रदाय या पंथ है, न तेरा-मेरा है; यहाँ न द्वैत है, न द्वेष है, न वाद है, न टंटा है; यहाँ न सनातनी है, न समाजी है; यहाँ न सुधारक है; न

अुद्धारक है, न पूर्व है, न पश्चिम है; यहाँ सभी अेक हैं, क्योंकि आज सारे भाभीबन्द फिर अेक ही पितासे मिलनेके लिअे विदेशसे लौटे हैं । यहाँ किसीका दरजा बड़ा नहीं । कोअी भी तिनकेके समान नहीं, कोअी तुच्छ नहीं । अहंकारसे नाहक फूले हुअे लोगोका मद यहाँ नारायणके दरवाजे पर अुतर जाता है । जो छोटे हैं, अुन्हें नारायण अपने हाथसे अूपर अुठाकर, पावन करके, सबकी पंगतमें बैठा देंगे । यहाँ अितना छोटा या अितना पापी भी कोअी नहीं, जिसपर नारायणकी दृष्टि न पड़े —

‘अिक नदिया अिक नार कहावै मैलो नीर भयो

जब मिल गये तब अेक बरन भये गंगा नाम पर्यो’ ।

“अिस पतित-पावनके द्वारपर कौन पावन न होगा ? साक्षात् नारायणकी पावन दृष्टि पड़नेके बाद भी नीच-अूँच, अच्छा-बुरा, पापी-पुण्यवानके शूद्र भेदभावका मैल किस तरह रहेगा ? और यह अभेद, यह अद्वैत, यह प्रेम, यह अेकात्मभाव, यह बंधुभाव अिस समय यहाँ बड़े-बड़े ज्ञानियोंसे लेकर ठेठ गँवार तक सबकी समझमें आता है । अमीरसे लेकर निपट गरीब, अपढ़, अनाड़ी यात्री तक, सब विना किसी संकोचके, बड़े प्रेमसे, अेक दूसरेसे नारायणका प्रसाद माँगकर और आपसमें बाँट कर खाते हैं, सो यों ही नहीं । अिसलिअे अेक बार बोलो “श्री बदरी विशालकी जय !” “जय श्री बदरी विशालकी जय !”

२

आज मुझे अन्तिम श्राद्ध करना था । यदि सिद्धपुर और गयामें माता-पिताका श्राद्ध किया जाय, तो माता-पिता तृप्त हो जाते हैं । लेकिन अगर मनुष्य बदरीनारायणमें ब्रह्मकपालकी शिलापर बैठकर श्राद्ध करे, तो अुसके सभी पूर्वज अेक साथ मोक्ष पाते हैं । शास्त्रोंमें यह स्पष्ट लिखा है कि यहाँ श्राद्ध करनेके अपरान्त यदि मनुष्य फिर श्राद्ध करे, तो मोक्षको गये हुअे पूर्वज नरकमें पड़ते हैं । यहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य पितरोंके ऋणसे सदाके लिअे मुक्त होता है । अनेक यात्रायें करता-करता मनुष्य हिमालयकी यह अाखिरी यात्रा करता है, अिसलिअे अुसके सारे अैहिक बन्धन छूट जाने चाहिये । फिर अपने ही कुटुंबसे चिपटे रहनेकी संकीर्णता अुसमें रहनी ही न चाहिये । जहाँ मानसिक आसक्ति छूटी कि धार्मिक

ऋण भी चुक ही गया । श्राद्ध करना होता है, सो अपनी कोमल और प्रेमल स्मृतिमें रहनेवाले पूर्वजोंका । हृदयकी ग्रंथि खुलते ही अपने माने हुअे सगेसम्बन्धियोंका भी बन्धन टूट जाता है । फिर यह लगावट दुबारा नहीं लगायी जाती । जो सबका हो गया, उसके लिअे अपने और परायेका भेद क्यों रहे ? भगवानके चरणोंमें आकर भी यदि मनुष्य ऐसी संकीर्णता रखे, तो समझिये कि वह वैसा ही बना है । वह और उसकी स्मृति दोनों नरकको न जावें तो और क्या हो ? नरक यानी संकीर्णता । तुकारामने कहा है —

‘आधी होता मुक्त । स्वयें झाला बद्ध ।

धेअुनीयां छंद । माझें माझें ।’*

सबेरे अुठकर, नहा-धाकर, लोटेमें चावल लेकर मैं मन्दिर पहुँचा । बदरीनारायणमें नहानेका कष्ट नहीं है । गरम पानीके बड़े-बड़े कुण्ड हैं । लोग जितने चाहें, नहायें, और जितना नहाना हो, नहायें । लोटा और चावल पुजारीके हवाले कर दिये । उसने कुण्डके चूल्हेपर दूसरे असंख्य लोटोंके साथ मेरा लोटा भी चढ़ा दिया । दर्शन करके लौटा, तब तक लोटेमें चावल चुड़कर भात तैयार हो गया था । बदरीनारायणको उसका भोग लगानेके बाद, लोटा मुझे वापस मिला । उसे लेकर मैं अपने पुरोहितके साथ ब्रह्मकपालकी विशाल शिलापर पहुँचा और मैंने श्राद्ध किया । यहाँके पण्डोंकी परेशानीको मैं खूब जानता था । अेक संस्कृतको छोड़कर और किसीसे अुनका बैर न था । अिसलिअे मैंने खुद ही श्राद्धके मंत्र याद कर लिअे थे । मृत पूर्वजोंके नाम भी अुनके सगे-सम्बन्धियों सहित कण्ठ कर लिअे थे । मैंने सबके नामसे यहाँ श्राद्ध किया, और अेक कुल-धर्मकी सांगता सिद्ध कर चुकनेका सन्तोष लेकर लौटा । कितनी कृतार्थता थी ! जैसे मैं अिस दुनियामें था ही नहीं ! वहाँसे सीधा वापस मन्दिरमें आया । घर जाकर भोजन करनेसे पहले मुझे फिर अेक बार नारायणके दर्शन करने थे । दरवाज़ेपर भीड़ बढ़ती जाती थी । अितने लोग अितनी भीड़ लगाकर खड़े हों, अेक-दूसरेका धक्का अेक-दूसरेको लगाना

* अर्थ—पहले मुक्त था । फिर ‘मेरे,’ ‘मेरे’की धुनमें पड़कर स्वतः बद्ध हुआ ।

हो, और फिर भी किसीका मिज़ाज बिगड़ता हो, सो बात न थी। सभी भक्तिके अनुमादमें चूर थे। हरएक आँखसे एक-दूसरेके प्रति सद्भाव टपकता था।

अस भीड़में एक मारवाड़ी युवती एक छोटी-सी थालीमें बादाम, शकर, किसमिस, चन्दन, कपूर आदि अनेक पूजाद्रव्य लिये, प्रवेश खोजती थी। अितनेमें किसीका धक्का लगा। हाथमेंसे थाली गिर पड़ी। थालीके गिरते ही एक क्षणके लिअे वह सन्न हो गयी, मानो छातीमें तीर भोंक दिया हो! दूसरे ही क्षण वह रो पड़ी। और क्यों न रोती? क्या असने शकरका एक एक दाना बीन-बीन कर पसंद नहीं किया था? एक एक बादाम अच्छा पुष्ट देखकर लिया नहीं था? अपने हाथों चन्दन घिस-घिस कर उसका लेप नहीं बनाया था? “यह सब बदरी-नारायणको चढ़ाऊँगी” अिस संकल्पके साथ सारी सामग्री एकत्र करके और असे अपने प्राणोंकी तरह सहेजकर वह यहाँ तक लायी थी। अस पूजाद्रव्यके पीछे कितना ध्यान, कितनी भक्ति, कितना आनन्द सन्निहित था! धन्यताके क्षणमें ही वह हाथसे गिरकर भगवानके द्वार पर बिखर जाय, अिससे बड़ी विपत्ति और क्या हो सकती है? कितना असका दुःख था! कैसा विलाप! मेरा हृदय रो पड़ा। मैं पास गया। अस बालिकाकी भक्तिके आगे मेरा माथा झुका। मैंने कहा—

“बहन, यह वृथा शोक क्यों करती हो? क्या अिसलिअे कि पुजारीके हाथों यह भोग भीतर नहीं पहुँच पाया? तुम भूल करती हो। यहाँका एक एक पत्थर पवित्र है, पावन है। और भगवानके द्वारपर जड़े ये फ़र्शके पत्थर! कौन जानता है कितने संत-महंत, साधु-सत्पुरुषोंके चरण स्पर्शसे ये सब पुनीत हुअे होंगे! भगवान तुम्हारे भोगको पुजारीके हाथों स्वीकारना नहीं चाहते थे। अुन्हें वह तुम्हारे हाथों ही लेना था। अिस-लिअे अैसा हुआ। तुम्हें अपनी भक्तिपर विश्वास होना चाहिअे।” अैसी कअी बातें मैंने अससे कहीं। बाला श्रद्धाकी दृष्टिसे मेरी तरफ़ देखती ही रही।

बिखरे हुअे बादामों और शकरके दानोंको बटोरकर अुन्हें भगवानके प्रसादकी तरह असे देते हुअे मैंने कहा— “जाओ बहन, अब सुखसे

भर जाओ । भगवानकी कृपाके विषयमें मनमें शंका न रखना । ” भोली बाला ! मैंने जो कुछ कहा, सो सब उसने सुना, श्रद्धापूर्वक माना । आँसु पोंछ लिये, और ‘जय बदरी विशालकी जय’, कहकर वहाँसे चली गयी । वह गयी, लेकिन मुझे भक्तिकी दीक्षा देती गयी । नारी-हृदयमें कितनी श्रद्धा होती है, कितनी भक्ति होती है, कितनी उत्कटता होती है, इसका मुझे दर्शन कराती गयी । मुझे बदरीनारायणके दर्शन मूर्तिकी अपेक्षा इस भोली मारवाड़ी बालामें विशेष हुअे ।

४३

वापसीमें

बदरीनारायणसे कुछ यात्री वसुधारा जाते हैं । वहाँ अपरसे एक झरना गिरता है । कहा जाता है कि जो पुण्यवान होते हैं, अर्न्तर्हि माथेपर उसकी धारा गिरती है । यदि कोई पापी हो, तो धारा एक तरफ़ गिरेगी, उसके माथेपर नहीं । वसुधारा जानेका विचार हमने छोड़ दिया, क्योंकि हमारे कुलियोंकी नीयत आगे जानेकी न थी । वे अब जल्दी घर जानेके लिये अतुल्य थे । हम लौट पड़े । रास्तेमें देखा कभी लोग बदरीनारायणका भात धूपमें सुखा रहे थे । यह सुखाया हुआ भात वे लोग यहाँसे घर ले जायेंगे । बंगाली बंगाल ले जावेंगे, पंजाबी पंजाब, मारवाड़ी अपनी मरुभूमिमें ले जाकर खायेंगे और कट्टर व कर्मठ महाराष्ट्रीय भी अपने घर ले जाकर और सारे सगे-सम्बन्धियोंको बाँटकर खायेंगे । मद्रासियोंके — ठेठ रामेश्वर तकके मद्रासियोंके — घर भी यह भात पहुँचेगा । जैसे शालिग्राम पत्थर नहीं समझा जाता, जेनेअू सूत नहीं समझा जाता, उसी प्रकार यह भात अन्न नहीं समझा जाता । यह तो प्रत्यक्ष प्रभुका प्रसाद है । यह हमारी काया पवित्र करता है । किसी भी कारणसे यह प्रसाद अपवित्र नहीं होता । यह अग्निकी तरह पवित्र है । हम यह प्रसाद लेकर लौटें ।

रास्तेमें जहाँ तहाँ बिच्छूके छुरमुट दिखायी देते थे। मराठीमें इस पौदेको 'खाजकुआ' कहते हैं। कोआ 'खाजकोली' भी कहते हैं। इसके पत्ते शरीरसे रगड़ खाते ही बड़ी खुजली और जलन पैदा करते हैं।

एक वैष्णव भक्त तुलसीके पौदेको प्रणाम कर रहा था। एक पादरीने यह देखा। उसने तुलसीके पत्ते हाथमें लिये और मसल डाले। भक्त भी पहुँचा हुआ था। वह सहज भावसे कुछ आगे गया और बिच्छूके पौदेको साष्टांग प्रणाम करके बोला — "हमारा यह देव तुलसीसे भी बड़ा है।" दुबारा प्रयोग करके देखनेपर पादरी साहबको भी इस बातकी प्रतीति हुई। अधरके पहाड़ीने हमें यह किस्सा हँस-हँसकर सुनाया। इस तरहके चुटकुले सभी प्रान्तोंमें सुने जाते हैं। अगर पादरी न हो, तो दूसरा कोआ विधर्मी या नास्तिक हो सकता है। किस्सेका काम तो किसी भी आदमीसे चल जाता है।

हम लालसाँगा पार करके मिलचीड़ी आये। यहाँ टेहरी राजकी सीमा खतम होती है। कुलियोंके अक्ररार यहीं तकके होते हैं। कैरासिंह और बादरू दोनों अपना पूरा वेतन पाकर गद्गद हो गये और हमें छोड़कर लौटे। बिदा होते समय वे हमसे कहने लगे — "आप लोग अितनी तेज़ीसे चले कि हमारे दिन बचे, आधा खर्च भी बचा। लेकिन चलते-चलते दम निकल गया। अब घर जाकर खूब दूध-घी खायेंगे और अगले साल बोझ ढोनेके कामसे छुट्टी लेंगे।" जिस दिन हम मुकाम करते, उस दिन उनका आधा खर्च हमपर पड़ता था। गेहूँके आटेके बदले यदि हम उन्हें दाल-चावलकी खिचड़ी दे देते, तो वह उनके लिये बड़ी नियामत हो जाती थी। खिचड़ी देकर दस मील ज़्यादा चला लेनेपर भी वे अुज़ नहीं करते थे। हमने एक नया कुली किया। वह था तो सीधा, लेकिन भोलेपनमें बातें बहुत करता था। जिस तरह साधु लोग अपने विषयमें बात करते वक्त 'मैं' कहनेके बदले 'यह शरीर' कहा करते हैं, उसी तरह हमारा कुली भी, जब उसे अपने बारेमें कुछ कहना होता, तो 'मेरे प्राण'से ही बात शुरू करता था : 'मेरे प्राण थक गये हैं', 'मेरे प्राणोंको नींद चाहिये', 'मेरे प्राण अंधेरेमें जानेकी हिम्मत नहीं करते' वगैरा वगैरा !

मिलचौड़ीसे आगे चलते ही गणभी आया । वहाँ एक दुकानके पिछवाड़ेवाले लम्बे और सँकरे दालानमें हम सो रहे थे । थके हुअे शरीरको नींदकी एक झपकी मुझिलसे मिल पायी थी कि अितनेमें पड़ोसमें गाना शुरू हो गया । बहुतसे पहाड़ी जमा हुअे थे । आवाज़ परसे हमने अन्दाज़ किया कि कोअी लड़का गा रहा है । उसका गला अच्छा था । तान भी मधुर थी । थोड़ी देर तक नींदमें गानेकी मिठास मिल गयी, और मैं प्रसन्न हुआ । लेकिन गाना एक कड़ीसे आगे बढ़ता ही न था । आध घंटा हुआ, पौन घंटा हुआ, एक घंटा हुआ, दो घंटे हो गये ! मगर बस वहीकी वही कड़ी चल रही थी । मैं अुकता गया, तंग आ गया, बेचैन हो गया । वह कड़ी मगजमें घुसी, माथा घूमने लगा । परन्तु गाना कुछ भी किये सकता ही न था । वहाँ फरिषाद भी किससे करता ? आखिर थककर कब सो गया, भगवान ही जाने । जो संगीत शुरूमें मधुर लगा, वही बादमें अितना अरुचिकर हो गया, यह देखकर मनमें विचार आया कि स्वर्गके देव भी एक ही से भोग पुनः पुनः भोगकर मेरी तरह ही अुकता अुठते होंगे और मृत्युके लिअे तरसते होंगे । मुझे तुकारामका एक अभंग याद आया :

स्वर्गांचे अमर अिच्छिताती देवा ।

मृत्युलोकीं व्हावा जन्म आम्हां ॥*

अमरत्व यानी, जैसा कि स्वामी दयानन्दने कहा है, कभी समाप्त न होनेवाली आजन्म सज़ा । मैं कोअी स्वर्गका देव न था, जो मृत्युके लिअे तरसता । मेरे लिअे तो बस, यही ज़रूरी था कि सबेरा हो और मैं गणभीसे आगे रवाना होऊँ ।

यहाँ रास्तेमें अच्छा आटा नहीं मिलता । उसमें चक्कीकी बालू मिली होती ही है । नतीजा यह हुआ कि मेरा पेट बिगड़ गया । मुझे बुखार आने लगा । लेकिन यहाँ रुकनेसे काम थोड़े ही बननेवाला था । चाहे बुखार हो, चाहे न हो, चलना तो पड़ेगा ही । रास्तेमें काठके बरतनमें जमाया हुआ कच्चे दूधका दही मिलता था । वह दही

* (अर्थ — स्वर्गके देव अिच्छा करते हैं कि हे अीश्वर, हमें मृत्युलोकमें जन्म चाहिये ।)

मैं दिल खोलकर खाता था । दहीसे मुझे नुकसान नहीं हुआ । अल्ट्रे, पेटके मरोड़ोंके लिअे वह अकसीर दवाके समान सिद्ध हुआ ।

४४

‘द्वाराहाट’

अेक दिन बिलकुल शाम हो जानेपर हम अेक पहाड़की तलहटीमें जा पहुँचे । रास्तेमें पानी बहुत बरसा । मैं भीग गया था । अेक आदमीके यहाँ कभड़े सुखाने ठहर गया, और पिछड़ गया । दुकानदारने कहा — “तुम्हारे दो साथी आगे द्वाराहाट गये हैं और तुम्हें वहाँ पहुँचनेको कह गये हैं । ” दुकानदारसे सन्देशा सुना और आकाशकी तरफ़ देखा । अैसा सुन्दर आकाश ववचित् ही देखनेको मिलता है । अँधेरा बढ़ता चला । मैं सोचने लगा कि आगे जाऊँ या न जाऊँ ? मनने तय किया कि अँधेरेमें जानेसे अेक रात यहाँ रह जाना ही अच्छा है । लेकिन दूसरे ही क्षण धुन सवार हुआ कि चला चलूँ । अेक रातका अनुभव मिलेगा । दुकानदारको अचम्भेमें डालकर मैं अुस रातमें आगे बढ़ चला ।

पूनोंकी रात थी । लेकिन अँधेरा अितना था कि अमावसकी रातमें भी क्या होता ? आकाश काले सियाह मेघोंसे घिरा हुआ था । रास्ता बराबर सूझता न था । दोपहरकी बारिशके कारण रास्ता बीच-बीचमें धुल भी गया था, और छोटे-बड़े गड्ढे बन गये थे । रास्तेमें कभी बार गिरा, लड़खड़ाया, घुटना मोच खा गया । ओड़ी हुआ शालको मेरी अपेक्षा कटीले झाड़ोंपर ही दया आने लगी, और वह वहीं रह जानेकी बात करने लगी । अुसे मनाकर साथ लिया और आगे चला । ज्यों-ज्यों वक्त जाता था, त्यों-त्यों पछतावा होता था कि पीछे रह जाता, तो कितना अच्छा होता ! बहुत चलनेके बाद दिलमें विचार आया कि जितना चलकर आया हूँ, वह अन्तर अधिक है या आगे बचा हुआ अन्तर अधिक है ? लौटनेकी सोचूँ

और आगेका रहा हुआ अन्तर दो फर्लांगका ही हो, तो बेवकूफ ही न बन्द ! आगे चलता जाता था, और फिर हिसाब लगाता जाता था । मेरी घड़ी अण्टीमें बँधी थी, लेकिन रातके वक्त उसमें क्या दिखायी देता ? अन्तमें बुद्धिमानी सूझी कि विचारकी घड़ी बन्द कर दूँ, और चुपचाप चलता चढ़ूँ । धीरज खुटनेसे पहले जंगल ही खुट गया, और मैं द्वाराहाट पहुँचा ।

द्वाराहाटमें बाजार लगता है । लेकिन रातके नौ-साढ़ेनौ बज गये थे । सारा गाँव सो रहा था । अब बाबा और स्वामीकी कहाँ तलाश की जाय ? किसीका दरवाज़ा खटखटाऊँ और वह मुझे दुतकार दे तो ? और मान लो कि न भी दुतकारे, तो उससे क्या पूछूँ ? हमारे बाबा कहाँ हैं ? स्वामी कहाँ हैं ? बर्डस्वर्थकी ‘ अीडियट बॉय ’ नामक कविता याद आयी । मूर्ख मॉने लड़केको गधेपर बैठाकर आधी रातको डॉक्टरके पास भेजा । गधा और बेवकूफ लड़का दोनों जंगलमें ‘ ठण्ठी धूप ’ की सैर करने गये । आग्विर मूर्ख माता उन्हें खोजने निकली । शहरमें जाकर डॉक्टरसे पूछा — “ डॉक्टर, डॉक्टर, व्हेर अिज़ माअी जॉनी ? ” (डॉक्टर, डॉक्टर, मेरा जॉनी कहाँ है ?) बेचारा डॉक्टर उस पागल मॉके दुलारे जॉनीको कहाँसे जाने ? नींद खराब होनेके कारण वह चिढ़ गया, और बड़बड़ाता हुआ सो गया । यदि मैं घर घर बाबा और स्वामीकी तलाश करता, तो मेरी भी यही दशा होती । अन्तमें अेक अपाय सुझा । मैं बड़ी गम्भीर और अँची आवाज़में अपनिषदोंके उन मन्त्रोंको, जो मुझे सुखाग्र थे, गाता हुआ घूमने लगा ।

जब बिजली चमकती थी तो कुछ दिखायी पड़ जाता था, लेकिन बादमें अँधेरा दुगना हो जाता था । अेक रास्तेके छोरपर पहुँचा तो वहाँ समतल और चिकनी ज़मीन दिखायी दी, मानो रेत ही बिछी हो । सोचा, टेनिस कोर्ट यहाँ कैसा ? शायद अधरसे होकर मेरा रास्ता आगे जाता होगा । लेकिन मुझे शक हुआ । अेक पत्थर अुठाकर टेनिस कोर्टपर फेंका । पत्थरने रिपोर्ट दी कि यहाँ पानी है, और तुरन्त जलसमाधि ले ली । उस परोपकारी पत्थरको घन्यवाद । मैंने दाहिनी तरफ़का रास्ता लिया और फिर गश्त लगाना शुरू कर दिया । थोड़ा

आगे जाते ही अक दुकानकी अटारीकी छोटी-सी खिड़की खुली । स्वामीने पुकारा — “काका ?” मैंने पूछा — “आनंद ?” और लालटेन लेकर स्वामी तुरन्त नीचे आये । बाबाने रसोआ बनाकर रखी थी । अन्होंने बड़े प्रेमसे, छलछलाती आँखोंसे मुझे भोजन कराया । अतने अँधेरेमें मैं कैसे आ सका, यही सबकी चर्चाका अक बड़ा भारी विषय बन गया । प्रेमकी बातोंका कभी अन्त आता है ? थके हुअे शरीरने तकाज़ा न किया होता, तो हमारी बातें खतम होनेसे पहले रात ही खतम हुअी होती । सबेरे ‘टेनिस कोर्ट’ जैसे अुस तालाबके दर्शन किये । तालाबपर लाल-हरी अंजीरी काअी जमी हुअी थी ।

हम आगे चले । अब रास्ता थोड़ा रह गया था । नीचे घाटीकी राह चलते, तो असह्य बफारेसे भुन जाते । असलिये हमने भी पहाड़ी लोगोंकी तरह पहाड़ियोंकी चोटियोंपर जैसा भी कुछ रास्ता मिला, अुसीसे जाना पसन्द किया । बारबार चढ़ना-अुतरना पड़े तो परवाह नहीं, लेकिन घाटीकी भट्टीसे तो बचना ही चाहिये । आखिर अलमोड़ा आया । वहाँके परिचित स्थान भी नये-नयेसे मालूम होने लगे । हमने डेढ़-दो महीनेमें कितना क्रीमती अनुभव प्राप्त किया था, कितने विचार विकसित किये थे, कितनी भव्यताका आकण्ठ पान किया था ! दृष्टि बिलकुल नअी हो गअी थी । अब अुसे पुराने दृश्य भी नये लगाने लगे, तो असमें आश्चर्य ही क्या ?

अक यात्रा पूरी हुअी । अक संकल्प सफल हुअा । लेकिन असिमेंसे अमरनाथकी यात्राकी अक फुनगी निकली, जो हमें चैनसे बैठने नहीं देती थी । बाबा और मैं स्वामीसे बिदा लेकर फिर हरिद्वारकी ओर चले । हमें स्वयंभू महादेव अमरनाथके दर्शन करने थे । काश्मीरका भूस्वर्ग देखना था । सृष्टि अनन्त है, दिशा और काल अनन्त है, कार्य-कारण भाव अनन्त है, मूल परब्रह्म अनन्त है, तो मनुष्यकी वासना, अुसके संकल्प और अुसकी योजनाओंका भी अन्त कैसे हो ?

फलश्रुति

‘रोचनार्था फलश्रुतिः’ । किसी भी वस्तुकी तरफ मनुष्यके चित्तको ललचानेके लिये जो सच्चे-झूठे लाभ बतलाये जाते हैं, वे फलश्रुति हैं । बच्चोंको सच्चे लाभ बतलाये जायँ, तो वे उनको निगाहमें नहीं जँचते । इसलिये उन्हें रुचिकर होनेवाले सच्चे या झूठे लाभ बतलानेका हमारे यहाँ अथवा यों कह लीजिये कि दुनियाके सभी देशोंमें, बहुत पुराना रिवाज है । इससे सत्यका कितना अपमान होता है, इसका विचार कोअी करता ही नहीं । और अकबार असत्य बोलनेका निश्चय करनेपर फिर उसमें मर्यादा क्यों रखी जाय ? असत्यकी मात्रा नशीली चीज़की तरह बढ़ती ही जाती है । परन्तु इसीमें असत्यकी दवा भी है । हमारी धार्मिक विधियों और व्रतोंमें फलश्रुतिकी मानो होड़-सी चल रही है । आजके अशितहारबाज़ जैसी निर्लज्जतासे झूठका बाज़ार गरम करते हैं, अतनी ही निर्लज्जता हम पुरानी फलश्रुतियोंमें देख सकते हैं । ‘पुत्रार्थी लभते पुत्रम् । धनार्थी लभते धनम् ।’ आदिकी मालिका जहाँ आरम्भ हुआ कि फिर उसका अन्त आता ही नहीं । ‘भुक्ति मुक्ति च विन्दति’ तक पहुँचे बिना कैसे रहा जाय ?

अस टंगसे यदि हिमालय-यात्राकी एक फलश्रुति लिखनी हो, तो मुझे कहना चाहिये कि जो कोअी यह यात्रा करेगा, उसे कम-से-कम सौ शतायुषी पुत्र होंगे, उसका घर सुवर्णका होगा, मनचाही शादियाँ करनेपर भी वह जवानका जवान ही रहेगा, स्वर्गकी अप्सराओं, हिमालयके सिद्ध, गन्धर्व और सनकुमारादि निवृत्तिशाली ब्रह्मचारी एक ही समय सम्मिलित रूपसे उसपर प्रसन्न होंगे । ऐसी फलश्रुतिसे मनुष्यकी कैसी दुर्दशा होगी, इसका विचार करना हमारा काम नहीं ।

यदि यात्राकी अतनी फलश्रुति है, तो यात्रा-वर्णनकी फलश्रुति इससे भी बढ़कर होनी चाहिये । जो कोअी यह यात्रा-वर्णन पढ़ेगा, उसे अर्थ-लाभ होगा । जो इस वर्णन-ग्रंथको अपने संग्रहमें रखेगा,

असके घर चोर नहीं आयेंगे । जो कोअी यह पुस्तक मोल लेकर ब्राह्मणों और विद्यार्थियोंको — और आजके जमानेमें हरिजनोंको — मुफ्त देगा, असपर ग्रंथकार आचार्य और असके प्रकाशक सदा सन्तुष्ट रहेंगे । प्रवास किये बिना ही असुं यात्राका फल मिलेगा, अत्यादि, अत्यादि ।

अगर लालचके साथ भय न जोड़ा जाय, तो काम अधूरा माना जायगा । असलिअे, जो कोअी अस पुस्तककी बुराअी करेगा, असके वचनोंपर मनमें सन्देह करेगा, असुं यह होगा, वह होगा । और अपरकी फलश्रुतिके विषयमें जो शंका करेगा, वह तो कम-से-कम चार कल्पतक रौरव नरकमें सड़ता रहेगा । और जो कोअी अस यात्रा-वर्णनको पढ़कर फलश्रुतिके अध्यायको छोड़ देगा, 'वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम अेव ह्युदाहृतः' ।

हिन्दू धर्मपर फलश्रुतिने जितना अत्याचार किया है, अतना शायद नास्तिकताने भी न किया होगा ।

परन्तु मुझे अपनी यात्राकी फलश्रुति अससे बिलकुल भिन्न रीतिसे देनी है । मुझे यह बतलाना है कि अस यात्रासे मुझे कौनसा लाभ हुआ, और जो कोअी अस प्रकारकी यात्रा करेगा, असुं प्रत्यक्ष क्या-क्या लाभ हो सकते हैं । अतना हुआ कि मेरा काम पूरा हो गया ।

शुरूमें ही मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिअे कि अस तरहकी यात्राके लिअे जो तैयारी पहलेसे करनी चाहिअे, वह मैंने नहीं की थी । पूर्व तैयारीके बिना किये गये काम कम-से-कम फल देते हैं । शिक्षा जीवनकी पूर्व तैयारी ही है । असलिअे शिक्षाशास्त्रीको तो हर बातमें पूरीपूरी पूर्व तैयारी करनेका खयाल रहना ही चाहिअे । लेकिन आजकलके शिक्षाशास्त्री दूसरोंको जो शिक्षा देते हैं, असुं अपने जीवनमें लानेकी परवाह नहीं करते । मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने अपने जीवनमें किसी भी अवसरपर ठीक ठीक पूर्व तैयारी की हो । असलिअे मैं अस यात्राकी फलश्रुतिमें क्या कहूँ ?

हिमालयकी यात्रा अथवा अुत्तरकी किसी भी यात्रापर जानेवालेको हिन्दी भाषाका कामचलाअू ज्ञान तो होना ही चाहिअे । मेरे पास यह ज्ञान नहीं था । जिस प्रदेशकी यात्रा कर रहे हों, असके स्थानिक अितिहास

और स्थानिक भूगोलकी साधारण जानकारी तो यात्रीको होनी ही चाहिये । मुझे वह भी नहीं थी । यात्राके लिये खाना होते समय तीर्थक्षेत्रका माहात्म्य, जैसा भी मिले, पढ़ जाना चाहिये । अन्यथा मनुष्य यात्राके आधे काव्यको खो बैठेगा । पूर्व तैयारीके नाते मेरे पास उत्साहकी पूँजी यथेष्ट थी । शरीर दुबला-पतला लेकिन कष्ट-सहिष्णु था । बरबाद करनेके लिये समयकी कमी न थी । बिना किसी अुद्देश्यके जीवन वितानेकी मानसिक तैयारी भी थी । मुझे रसोअी बनाना आता था । पानीमें तैरना आता था, और अकेले-अकेले मनोराज्यमें मग्न होना भी आता था । प्रकृतिके साथ अेकरूप होने जितनी मनोवृत्ति बन चुकी थी, और यह श्रद्धा थी कि निष्पाप प्रवृत्तिका कोअी सार्विक फल ही मिलेगा । और, दूसरी बड़ी-से-बड़ी तैयारी थी प्रेमी मित्रोंका साथ ।

वेदान्तके ग्रन्थोंमें कहा है कि भक्तोंमें दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं, विल्लीके बच्चोंकी और बन्दरके बच्चोंकी । विल्लीका बच्चा सभी तरह निराधार होता है : आँखें मीँचकर पड़ा रहता है और मनमें कहता है कि मेरी माँ आयेगी और मुझे उठाकर ले जायगी । लेकिन बँदरीका बच्चा भरसक स्वावलम्बी होता है । मेरी माँ कहाँ है, संकट किस तरफसे आ सकता है, आदि बातोंका वह खुद ही ध्यान रखता है, और संकटके समय झट जाकर माँसे चिपट जाता है । मनुष्यमें ये दोनों तरहकी वृत्तियाँ होती हैं । मुझमें भी ये दोनों वृत्तियाँ अुचित मात्रामें थीं, असलिये अिसे भी पूर्व तैयारीका अेक अंग माननेमें हर्ज़ नहीं ।

जब कोअी हिन्दू हिमालयकी यात्रा करने निकलता है, तो अुसमें अुसका मुख्य अुद्देश्य धार्मिक ही हो सकता है । हम हिमालयका दूसरी दृष्टिसे विचार ही नहीं कर सकते । परन्तु धार्मिक हेतुके मानी क्या हैं ? हिन्दू समाजमें यह धारणा तो होती ही है कि हम पैदल चलें । पवित्र मानी जानेवाली भूमिपर हमारे शरीरका भार पड़ा, असलिये हम पावन तो हो ही गये ! यदि अैसा न होता, तो अन्ये और बहरे यात्रा करने न जाते । जब कोअी यूरोपनिवासी यात्रा करता है, तो वह अपने साथ सुख-सुविधाके जितने साधन ले सकता है, ले लेता है । वह शरीरका वजन,

शरीरकी शक्ति और शरीरका आनन्द बढ़ानेका प्रयत्न सर्व प्रथम करता है। फोटो खींचने और चित्र बनानेकी सामग्री साथ रखकर वह अपने संस्कारोंको स्थायी रूप देनेकी कोशिश करता है। आड़ा-टेढ़ा जितना घूमा जा सके, घूमकर जो दूसरोंने न देखा या जाना हो, उसीको प्राप्त करके किसी न किसी बातकी सर्व प्रथम गवेषणा करनेका वह प्रयत्न करता है। धार्मिक यात्रामें हम जितने कष्ट उठाते हैं, उतना ही यात्राका पुण्य बढ़ता है। भोगविलासकी बदौलत या आलसीकी बदौलत शरीरपर जो जड़ता चढ़ जाती है, उसे निकाल फेंकना भी एक धार्मिक साधना मानी गयी है। मेरी समझमें हमारे लोगोंने यात्राओंमें तितिक्षाका तत्त्व दाखिल करके उन्हें बहुत अँचा उठा दिया है। यदि यात्रियोंमें तितिक्षा वृत्ति न हो, तोपोलालसा न हो, तो यात्राके धाम पवित्र नहीं रह सकते। और उस दशामें अनु-अनु तीर्थस्थानोंका प्राकृतिक सौंदर्य भी फीका पड़े बिना नहीं रह सकता। कष्ट झेलनेसे, स्वेच्छापूर्वक तरह तरहकी असुविधायें सहनेसे, मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक भूख खिलती है, और जीवनका आनन्द सात्विक एवं विशुद्ध बनता है। विलासिता और कलामें बैर होनेसे तितिक्षाके द्वारा ही मनुष्य रसास्वादकी शक्तिका विकास और संवर्धन कर सकता है। जो अमुक प्रकारसे तपस्वी होता है, वही कलारसिक हो सकता है।

धार्मिक लाभोंमें दूसरा बड़ा लाभ है, सत्पुरुषोंके दर्शन। जैसे अुदाहरण विरले हैं कि किसी तीर्थका माहात्म्य देखकर सत्पुरुष वहाँ जा बसे हों। प्रकृतिकी भव्यता देखकर या किसी प्रसंग विशेषकी पवित्रतासे प्रभावित होकर कोअी सत्पुरुष वहाँ बस जाता है, और बादमें वह स्थान तीर्थकी पदवी प्राप्त करता है। यदि अनेक सत्पुरुष अेक ही स्थानको दीर्घकालके लिअे पसन्द करें, अथवा कोअी प्रभावशाली व्यक्ति किसी स्थानके माहात्म्यको बढ़ावा दे दे, तो तुरन्त ही वह अेक बड़ा तीर्थस्थान माना जाने लगता है। फिर वहाँ साधुसन्त, तपस्वी और मुनियोंका आना-जाना जारी रहता है। हरअेक तीर्थके साथ जो-जो घटनायें जुड़ जाती हैं, वे सब यात्रियोंके मुँहमें जीवित रहती हैं। असलिअे ऐसे स्थानोंमें धर्मजीवन और धर्मरहस्य अनायास ही जाग्रत रहता है।

वादमें ये स्थान सहज ही धार्मिक विचारका विनिमय करनेवाले सम्मेलन स्थान जैसे बन जाते हैं ।

लोगोंकी धार्मिक वृत्तिके कारण यहाँ अखण्ड रूपसे ज्ञानके सत्र चलते रहनेकी सुविधायें उपस्थित हो जाती हैं । और फिर यहाँ धर्म-विचारोंकी परख भी भलीभाँति होने लगती है । अनेक लोगोंके विचार आमने-सामने एक-दूसरेसे टकराते हैं और उसमेंसे अत्युच्च समन्वयकी दृष्टि भी विकसित होती है ।

बड़े बड़े तीर्थस्थानोंमें मैंने ये चारों लाभ देखे हैं ।

सच्चे यात्री अक्सर यात्रामें ब्रह्मचर्यका पालन करते ही हैं; वे यथासम्भव झूठ नहीं बोलते, न किसीको धोखा देते हैं । यह भी एक बड़ा भारी धार्मिक लाभ ही समझा जाना चाहिये । यदि मनुष्यने एक बार शुद्ध जीवनका आनन्द चख लिया, तो उसे ऐसा लगने लगता है कि आगे भी ऐसा ही जीवन बिताना पड़े तो अच्छा हो । और कभी-कभी मनुष्य उस संकल्पको दृढ़ भी कर लेता है । यात्राके कारण धार्मिक धारणाओं, भावनाओं, रीत-रिवाजों और उनके काव्यका भण्डार तो मनुष्यके हृदयमें बढ़ता ही है । यही नहीं, बल्कि इस सबके मूलस्वरूप उसके विचार भी अधिकाधिक सुदार होते जाते हैं । जब मद्रासी ब्राह्मण काश्मीर जाता है, और काश्मीरका पण्डित महाराष्ट्रमें पहुँचता है, तो यह देखकर कि कट्टर धार्मिक माने जानेवाले लोगोंमें भी कितना फरक होता है, मनुष्यका मन चाहे जैसे हेरफेरके लिये तैयार हो जाता है । और यह सुदारता ही शिक्षाका बड़े-से-बड़ा फल है ।

शिक्षाके मुख्य क्षेत्र दो हैं : एक मानसशास्त्र और दूसरा समाजशास्त्र । यदि मनुष्य दोनों दिशाओंमें दूर तक जा सका, तो वह शिक्षित है ही । मनुष्य अपने भीतर पैठकर, अन्तर्मुख होकर, अपने आपको जाँच-परख कर मानसशास्त्रमें डुबकी लगाता है; जब कि अपने आसपासका निरीक्षण करके, दूर तकके कार्य-कारण-भावकी जाँच करके और साधारण मनुष्य किस किस तरहका बर्ताव करते हैं, इसका लेखा लगाकर वह समाजशास्त्रकी रचना करता है । भीतर पैठकर वह अन्तर्यामीको पहचान सकता है और बाहर सब तरफ घूमकर वह विराट्

पुरुषका आकलन कर सकता है। अन्तर्यामीकी पहचान अध्यात्मशास्त्र है, और विराट् पुरुषका परिचय सृष्टिशास्त्र। दोनोंके मेलसे धर्मशास्त्र बनता है। इस धर्मशास्त्रका परिशीलन ही यथार्थ शिक्षा है।

यात्राका सद्यः फलदायी लाभ तो प्रकृतिकी लीलाके दर्शन हैं। ऊँचे-ऊँचे पर्वत और नीची घाटियाँ, चौड़ी नदियाँ और उनसे भी चौड़े पुलिन, सब तरफ़ अग़े हुए पेड़ और उनके ऊपर-नीचे आश्रय लेनेवाले पशु-पक्षी — यह सब एक महान काव्य है। जहाँ पहाड़-पर्वत न हों, और जमीन सब तरफ़ विलकुल सीधी-समतल हो, वहाँ भी ऋतुके अनुरूप सौन्दर्य देखनेको मिलता है। कभी-कभी जहाँ पानीकी एक ढ़ँद नहीं होती, वहाँ भी कोरे जल-प्रवाह धूपमें दौड़ते हुए हरिणोंको धोखा देकर मार डालते हैं। लेकिन इसके कारण मृगजलकी शोभा कम नहीं होती। और अगर हवामें सचमुच नमी हो, तो अकाश अन्द्रधनुष अचूक रूपसे अपना प्रभाव दिखाता ही है।

और यदि समुद्रने दर्शन दिये, तो ज्वारभाटारूपी उसका श्वासोच्छ्वास हमारा ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहता। यदि हमारी साँससे हमारा रक्त शुद्ध होता है, तो समुद्रके इस ज्वारभाटेसे क्या शुद्ध होता होगा, इस आशयकी कल्पनायें अठे बिना कैसे रहेंगी? और जब समुद्रकी तितलियाँ (पतवारवाले जहाज़) लहरों पर डोलती हैं, तो एक ऐसी उत्कण्ठा जाग्रत होती है कि बस अब लहरोंमेंसे फूल खिल उठेंगे। और जिस प्रकार लहरोंके कारण समुद्रमें पानीका हृदय ऊँचा-नीचा होता है, उसी प्रकार कभी-कभी ज़मीनपर भी वैसे ही दृश्य स्थिर रूपमें दीख पड़ते हैं।

सूर्योदय और सूर्यास्त तो नित्य-नूतन कवित्वकी अनन्तता है। अिन अुभय संध्याओंकी शोभा देशानुरूप बदलती है, ऋतु अनुरूप बदलती है, क्षण-क्षणमें बदलती है, और बादलोंकी सनकके अनुसार भी बदलती है।

और बादल? बादल तो अनन्त आकाशके चिरप्रवासी यात्री हैं। आकाश कभी बदलता नहीं, और बादल एक क्षण को भी स्थिर रहते नहीं। अिन दो जनोंकी जोड़ीके चंगुलमें पँसे हुए बेचारे सूर्यको नित्य नयी

भूमिकाका अभिनय करना पड़ता है। पृथ्वी — बहुरत्ना वसुधरा — अपना कितना ही वैभव क्यों न दिखाये, वह थोड़ा ही है, ये बादल हमेशा यह सिद्ध करनेकी फ़िक्रमें रहते हैं। यदि कोई अिन बादलोंसे स्पर्धा करना चाहता होगा, तो वे होंगे हिमालयकी बरफ़के ढेर। परन्तु हिमालय पर्वतसे भी बड़े बड़े पर्वत चाहे जहाँ खड़े करके ये बादल हिमालयके, बल्कि पृथ्वीके गर्वका हरण करते हैं। अन्तर अितना ही है कि पहाड़ोंपर छोटे-बड़े असंख्य वृक्ष उगते हैं, जब कि बादलोंपर तो दूसरे बादल ही उगते हैं।

यात्री कितना ही घुमक्कड़ और विरक्त क्यों न हो, फिर भी उसे अपने पेटको तो साथ ही लिये-लिये घूमना पड़ता है। असलिअे जब दो पहरकी भूखका समय होता है, तो उसे अतिथिशील झोंपड़ीका काव्य सबसे अधिक आकर्षक लगता है। यों भी गाँवोंकी झोंपड़ियाँ आकर्षक तो होती ही हैं। झोंपड़े, मवेशियोंके कोठे, खेती और भौँति-भौँतिकी क्रियायें, जुलाहा, कुम्हार, सुनार, बढ़ाई, लुहार आदि कारीगरोंके फैले हुए धन्ये, सभी अलग-अलग और मिलकर अेक बड़ा काव्य बनता है। नदीका काव्य अेक प्रकारका और उसपर बने पुलका काव्य दूसरे ही प्रकारका होता है।

यों यात्रामें निकलनेवाला मनुष्य जिस प्रकार प्रकृतिकी विविध रंगोंवाली लीला देख सकता है, उसी प्रकार उसे विविध भौतिके लोगोंके दर्शन भी होते हैं। हर जगहकी भाषा अलग, रिवाज़ अलग, मकानोंकी बनावट अलग, पोशाक अलग। अस भेदके मूलमें क्या-क्या सहूलियतें हैं, किन आदर्शोंका परिपोष हुआ है, यदि मनुष्य असकी खोज करे तो उसे क्रीमती शिक्षण मिले बिना न रहे। और ज्यों-ज्यों वह गहराअीमें जाता है, त्यों-त्यों उस विविधताकी जड़में उसे अेक सार्वभौम अेकताकी प्रतीति होती है, और यह देखकर अेक विशेष आनन्द प्राप्त होता है कि अेक ही मनुष्य हृदय कितने प्रकारसे विकसित होता है। लोकजीवन यानी मनुष्य-जातिकी मोटी बुद्धिकी सूक्ष्मता। प्रकृतिके बदलते ही मनुष्यको बरबस अपनी आदतें बदलनी होती हैं। मनुष्यके विचार करनेसे अिनकार कर देनेपर भी

रोज़-रोज़की टक्करें उसे किसी-न-किसी दिन तनिक विचार करनेको बाध्य करती हैं, और जो काम बुद्धि नहीं करती वह काल कर डालता है। इस तरह दीर्घकालकी सफ़ाओंके कारण जो मनुष्य जीवन बना है, उसकी स्वाभाविक मोहकता आँखोंमें समाप्त बिना नहीं रहती।

और चूँकि यह सब लोक-स्वभावमें यथार्थरूपसे आ चुका है, इसलिये लोग इसमें एक तरहका स्वास्थ्य भी अनुभव करते हैं। जिस तरह अचानक आयी हुयी अमीरी मनुष्यको अटपटी लगती है, वैसा इस संस्कृतिमें नहीं होता। इसलिये इस सादगीमें असाधारण गौरव रहता है। और इस सारी लोकसंस्कृतिके नये नये प्रकारोंको अनेके स्वाभाविक वातावरणमें जाकर जाँचने-पड़तालनेसे जो शिक्षा मिलती है, उसका मूल्य कौन आँक सकता है ?

हमारे देशमें लिखित रूपमें जितना इतिहास संकलित नहीं है, उतना हमारे जीवनमें है। इसलिये यात्रा पर्यटनमें इतिहास-दर्शन भी होता ही है। और फिर हिमालयका प्रदेश तो भारतवर्षका प्रांतदेश ठहरा। यहाँ संस्कृति और क्रान्तिकी न जाने कितनी लहरें आकर शान्त हुयी होंगी। कुरुपाँचालोंकी संस्कृतिसे लेकर कर्नल यंग हस्वैडके आक्रमणसे बढ़ हुयी तिब्बतियोंकी आजकी संस्कृति तक सारी चीजोंकी भनक यहाँ एक साथ सुननेका मिलती है। इस तरफ़ हमारा ध्यान दिलाकर भगिनी निवेदिताने हिन्दू समाजका बड़ा उपकार किया है।

भू-रचनाकी दृष्टिसे और भूस्तरशास्त्रकी दृष्टिसे भी हिमालयकी यात्रामें बहुत-सी जानकारी मिलती है। यदि हिमालय रास्तेमें आड़ा न पड़ा होता, तो रूस और चीनकी ठण्डी हवाओं और वहाँकी कठोर संस्कृति, दोनोंके हमले हमपर हुये होते। यदि गंगा नदी न होती, तो जैसे हमारी आजकी सारी शान-शौकत न होती, वैसे ही यदि हिमालय न होता, तो हिमालय जैसी अचुंग आर्यसंस्कृति भी यहाँ कभी पनप न पाती।

देशकी आत्मा और देशका विराट् स्वरूप, दोनोंका एक ही साथ दर्शन करनेके लिये यात्रा ही एकमात्र अमोघ साधन है।

